



# चांदनी भीतर की

हम चाँदनी से परिचित हैं। आकाश में चाँद को देखते हैं, उसकी चाँदनी धरती पर चमकती है। मनुष्य शांति, शीतलता एवं प्रकाश सबका एक साथ अनुभव करता है। अनजाना है चिदाकाश, अनजाना है—चाँद और अनजानी है चाँदनी, इसलिए कि ये सब भीतर हैं। भीतर में जो है, उसे देखने की खिड़कियां बंद हैं, दरवाजे भी बंद हैं। यदि हम इन्द्रियों की दिशा बदलें, उनकी बहिर्मुखता को अन्तर्मुखता में बदल दें, मन की चंचलता पर कोई अंकुश लगा पाएं, खिड़कियां खुलती-सी नजर आएगी।

हरिकेशबल की खिड़कियां खुल चुकी थी इसलिए उसे यह कहने का अधिकार मिला—तपस्या श्रेष्ठ है, जाति श्रेष्ठ नहीं।

भृगुपुरोहित के पुत्रों ने भीतर में झांका, तभी उन्होंने कहा—पिता ! आत्मा अमूर्त है, उसे इन्द्रियों द्वारा नहीं देखा जा सकता।

भीतर की ज्योति विशद हुई और महारानी कमलावती बोल उठी—नरदेव ! केवल धर्म ही त्राण है, अन्य कोई त्राण नहीं है।

अनाथ मुनि ने भीतर की ज्योत्सना में झांक कर सम्राट् श्रेणिक से कहा—मगध के अधिपति श्रेणिक ! तुम स्वयं अनाथ होकर मेरे नाथ कैसे बनोगे ?

अर्हत् अरिष्टनेमि की अतीन्द्रिय चेतना जागृत थी। बाड़ों और पिंजरों में कैद किए हुए पशुओं और पक्षियों का स्वर उन कानों से सुना, जो दूसरों का अमंगल कर मंगल गीत सुनने को तैयार नहीं थे।

ये सारे स्वर साक्ष्य हैं भीतर की चाँदनी के। इनको सुनने के लिए अपेक्षित है, भीतर की चाँदनी जागे।

# चांदनी भीतर की

युवाचार्य महाप्रज्ञ

**जैन विश्व भारती प्रकाशन**

प्रज्ञापर्व प्रवचनमाला - ७

संदर्भ : योगक्षेम वर्ष

सान्निध्य एवं प्रेरणा :  
आचार्य श्री तुलसी

प्रवचनकार :  
युवाचार्य महाप्रज्ञ

आधार-सूत्र  
उत्तराध्ययन

मुख्य संपादक :  
मुनि दुलहराज

संपादक :  
मुनि धनंजय कुमार

© तुलसी अध्यात्म नीडम्  
जैन विश्व भारती,  
लाडनूँ (राज०)

संस्करण : १९६२

सौजन्य : स्व० पूज्य दादाजी श्री जयचन्दलालजी एवं  
पिता श्री चम्पालालजी बोरड़ की स्मृति में  
द्वारा : सहसकरन बोरड़ (दिल्ली -- लाडनूँ)

संकलन सौजन्य : प्रज्ञापर्व समारोह समिति  
अमृत वाणी, जैन विश्व भारती

मूल्य : पच्चीस रुपये

प्रकाशक : जैन विश्व भारती, लाडनूँ (राज.)

मुद्रक : जे० के० आफसेट प्रिन्टर्स, नांगलोई, दिल्ली-४१

**CHANDNI BHITAR KI**

**Yuvacharya Mahaprajna**

**Rs. 25.00**

## आशीर्वचन

योगक्षेम वर्ष का अपूर्व अवसर। प्रज्ञा जागरण और व्यक्तित्व निर्माण का महान् लक्ष्य। लक्ष्य की पूर्ति के बहुआयामी साधन--प्रवचन, प्रशिक्षण और प्रयोग। प्रवचन के प्रत्येक विषय का पूर्व निर्धारण। अध्यात्म और विज्ञान को एक साथ समझने और जीने की अभीप्सा। समस्या एक ही थी--प्रशिक्षु व्यक्तियों के विभिन्न स्तर। एक ओर अध्यात्म तथा विज्ञान का क, ख, ग नहीं जानने वाले, दूसरी ओर अध्यात्म के गूढ रहस्यों के जिज्ञासु। दोनों प्रकार के श्रोताओं को उनकी क्षमता के अनुरूप लाभान्वित करना कठिन प्रतीत हो रहा था। चिंतन यहीं आकर अटक रहा था कि उनको किस शैली में कैसी सामग्री परोसी जाए ? नए तथ्यों को नई रोशनी में देखने की जितनी प्रासंगिकता होती है, परम्परित मूल्यों की नए परिवेश में प्रस्तुति उतनी ही आवश्यक है।

न्यायशास्त्र का अध्ययन करते समय देहली दीपक न्याय और डमरुक मणि न्याय के बारे में पढ़ा था। दहलीज पर रखा हुआ दीपक कक्ष के भीतर और बाहर को एक साथ आलोकित कर देता है। डमरु का एक ही मनका उसे दोनों ओर से बजा देता है। इसी प्रकार वक्तृत्व कला में कुशल वाग्मी अपनी प्रवचनधाराओं से जनसाधारण और विद्वान्-दोनों को अभिष्णात कर सकते हैं, यदि उनमें पूरी ग्रहणशीलता हो।

योगक्षेम वर्ष की पहली उपलब्धि है--प्रवचन की ऐसी शैली का अविष्कार, जो न सरल है और न जटिल है। जिसमें उच्चस्तरीय ज्ञान की न्यूनता नहीं है और प्राथमिक ज्ञान का अभाव नहीं है। जो निश्चय का स्पर्श करने वाली है तो व्यवहार के शिखर को छूने वाली भी है। इस शैली को आविष्कृत या स्वीकृत करने का श्रेय है 'युवाचार्य महाप्रज्ञ' को।

योगक्षेम वर्ष की प्रवचनमाला उक्त वैशिष्ट्य से अनुप्राणित है। जैन आगमों के आधार पर समायोजित यह प्रवचनमाला वैज्ञानिक व्याख्या के कारण सहज गम्य और आकर्षक बन गई है। इसमें शाश्वत और सामयिक सत्त्यों का अद्भुत समावेश है।

इसकी उपयोगिता योगक्षेम वर्ष के बाद भी रहेगी, इस बात को ध्यान में रखकर प्रज्ञापर्व सभारोह समिति ने महाप्रज्ञ के प्रवचनों को जनार्पित करने का संकल्प संजोया।  
**चांदनी भीतर की** उसका सातवां पुष्प है।

जिन लोगों ने प्रवचन सुने हैं और जिन्होंने नहीं सुने हैं, उन सबको योगक्षेम यात्रा का यह पाथेय आत्म-दर्शन की प्रेरणा देता रहेगा और उनकी चेतना के बंद द्वारों को खोलकर प्रकाश से भर देगा, ऐसा विश्वास है।

२१ अगस्त, १९६२  
जैन विश्व भारती,  
लाडनूँ (राज०)

आचार्य तुलसी



## प्रस्तुति

चांद आकाश के अंचल को छूता है, चांदनी भूमि के तल को छूने लग जाती है। तमस् ऊपर भी है, नीचे भी है। बाहर भी है और भीतर भी। सबसे जटिल है भीतर का तमस्। उसे मिटाने के लिए उस चंद्रमा की आवश्यकता है, जिसका शब्दांकन आचार्य मानतुंग ने किया है--

*नित्योदयं दलितमोहमहान्धकारं,  
गम्यं न राहु वदनस्य न वारिदानाम्।  
विभ्राजते तव मुखाब्जमनल्पकान्तिः,  
विद्योतयज्जगदपूर्वशशांकबिम्बम्॥*

जो सदा उदित रहे, मोह के महा अंधकार का विदलन करे, जिसे राहु ग्रस न सके, जिसे बादल आवृत न कर सके और जो विश्व को अपूर्व प्रकाश दे। ऐसा चन्द्रमा है अध्यात्म।

अध्यात्म की चांदनी भीतर की चांदनी है। वह न बाहर से आती है और न किसी के द्वारा प्रद्योतित की जाती है। उसका प्रस्फुटन भीतर में ही होता है और स्वयं के द्वारा ही होता है।

अनेकान्त का दर्शन केवल उपादान को ही सब कुछ नहीं मानता। उसमें निमित्त का भी अवकाश है। जिसका जितना मूल्य उसकी उतनी स्वीकृति। न किसी का अधिक मूल्य और न किसी की अधिक स्वीकृति। प्रस्तुत ग्रंथ का स्वाध्याय एक उद्दीपन है। जिनके भीतर चांदनी प्रगटी, उसे देखकर अपने भीतर चांदनी को प्रगट करने की भावना जागती है।

हम चांदनी से परिचित हैं। आकाश में चांद को देखते हैं, उसकी चांदनी धरती पर चमकती है। मनुष्य शांति, शीतलता एवं प्रकाश--सबका एक साथ अनुभव करता है। अनजाना है चिदाकाश, अनजाना है--चांद और अनजानी है चांदनी, इसलिए कि ये सब भीतर हैं। भीतर में जो है, उसे देखने की खिड़कियां बंद हैं, दरवाजे भी बंद हैं। यदि हम इन्द्रियों की दिशा बदलें, उनकी बहिर्मुखता को अन्तर्मुखता में बदल दें,

मन की चंचलता पर कोई अंकुश लगा पाएँ, खिड़कियाँ खुलती-सी नजर आएगी।

हरिकेशबल की खिड़कियाँ खुल चुकी थी इसलिए उसे यह कहने का अधिकार मिला—तपस्या श्रेष्ठ है, जाति श्रेष्ठ नहीं है।

भृगु पुरोहित के पुत्रों ने भीतर में झाँका, तभी उन्होंने कहा—पिता ! आत्मा अमूर्त है, उसे इन्द्रियों द्वारा नहीं देखा जा सकता।

भीतर की ज्योति विशद हुई और महारानी कमलावती बोल उठी—नरदेव ! केवल धर्म ही त्राण है, अन्य कोई त्राण नहीं है।

गर्दभाति अंतर के आलोक से आलोकित थे। उनकी एक आलोक-रश्मि प्रस्फुटित हुई और अंतःस्वर गूँज उठा—राजन् ! तुम्हें अभय देता हूँ। तुम भी सब जीवों को अभय दो।

मृगापुत्र के अंतश्चक्षु उद्घाटित हो गए थे। कितना अमोल है उनका यह बोल—मैं इस अशाश्वत शरीर में आनंद नहीं पा रहा हूँ, जो एक दिन विलग हो जाएगा। मुझे उस शाश्वत की खोज करनी है, जो सतत मेरे साथ रहे।

अनाथ मुनि ने भीतर की ज्योत्स्ना में झाँक कर सम्राट् श्रेणिक से कहा—मगध के अधिपति श्रेणिक ! तुम स्वयं अनाथ होकर मेरे नाथ कैसे बनोगे ?

समुद्रपाल ने बंदी बने हुए चोर को देखा और भीतर की खिड़कियाँ एक साथ एक झटके में खुल गईं। संबोधि ने उनका वरण कर लिया।

अर्हत् अरिष्टनेभि की अतीन्द्रिय चेतना जागृत थी। बाइँ और पिंजरों में कैद किए हुए पशुओं और पक्षियों का स्वर उन कानों से सुना, जो दूसरों का अमंगल कर मंगल गीत सुनने को तैयार नहीं थे।

ये सारे स्वर साक्ष्य हैं भीतर की चांदनी के। इनको सुनने के लिए अपेक्षित है, भीतर की चांदनी जागे।

मुनि दुलहराज जी प्रारंभ से ही साहित्य संपादन के कार्य में लगे हुए हैं। वे इस कार्य में दक्ष हैं। प्रस्तुत पुस्तक के संपादन में मुनि धनंजय कुमार ने निष्ठापूर्ण श्रम किया है।

२१ अगस्त, १९६२

जैन विश्व भारती,

लाडनू (राज०)

युवाचार्य महाप्रज्ञ

## संपादकीय

जीवन से जुड़े दो तत्त्व हैं  
दृष्टि और दिशा  
जैसी होती है दृष्टि  
वैसी होती है सृष्टि  
यादृक् दृष्टिः तादृक् सृष्टिः  
बदले दृष्टि  
बदलेगी सृष्टि  
बदलेगी दिशा।  
व्यक्ति और विचार में  
आचार और व्यवहार में  
परिलक्षित परिवर्तन  
कारण है दृष्टि/दर्शन।  
जीवन के विकास और हास क  
अंधकार और प्रकाश का  
रहस्य है व्यक्ति की दृष्टि  
प्रभावित उससे मति/गति।  
महाप्रज्ञ कहते हैं -  
जो बाहर देखता है  
वह है भौतिक  
जो भीतर देखता है  
वह है आध्यात्मिक।  
झांका जिसने भीतर  
गहरे उतर कर  
मिला उसे विलक्षण  
बदल गया जीवन।  
पूर्ण समर्पण  
गतिमान् चरण  
त्याग के पथ पर  
स्पष्ट बन गया गंतव्य  
प्राप्त हुआ प्राप्तव्य।  
धन्य हैं वे पवित्र आत्मन् !  
लब्ध अस्तित्व  
निखरा व्यक्तित्व  
जीवन उत्कर्ष  
बने आदर्श।

हरिकेशबल का जगा आत्मपुरुषकार  
 पराजित जातिवाद का अहंकार।  
 भृगुपुत्र/मृगापुत्र ने देखा अतीत  
 कर अमिनिष्क्रमण, बने रागातीत।  
 पा कमलावती का उद्बोध  
 इषुकार ने पाया संबोध।  
 राजर्षि संजय और गर्दभालि का प्रेरक संवाद  
 सम्राट श्रेणिक को मिला नया तत्त्ववाद।  
 समुद्रपाल/अरिष्टनेमि  
 राजीमती/रथेनेमि  
 हुए प्रबुद्ध  
 बने संबुद्ध  
 उजला आंगन  
 महका चंदन।  
 प्रस्तुत है  
 अमर यश-गाथा  
 महाप्रज्ञ हैं उद्गाता  
 नया संदर्भ/नया परिवेश  
 योगक्षेम वर्ष का अभिनव उन्मेष  
 महाप्रज्ञ के प्रवचन वैशिष्ट्य का  
 कालजयी अभिलेख।  
**पढ़ें चांदनी भीतर की**  
 प्रगटे चांदनी भीतर की  
 सार्थक हो मानव-जीवन  
 उपलब्ध हो स्व-वीक्षण  
 महाप्रज्ञ की यही चाह  
 हम सबकी बने राह।

२१ सितम्बर, १९६२

जैन विश्व भारती,  
 लाडनूँ (राज०)

मुनि धनंजय कुमार

## अनुक्रम

१. जातिवाद तात्त्विक नहीं है	१
२. कर्मणा जाति	१०
३. यज्ञ, तीर्थस्थान आदि का आध्यात्मिकीकरण	१५
४. दो भाइयों का मिलन	२५
५. जब सत्य को झुठलाया जाता है	३७
६. मुक्ति की प्रेरणा	४८
७. दो परम्पराओं के बीच सीधा संवाद	५२
८. समस्या का मूल : परिग्रह	६०
९. साधुत्व की कसौटियां	६४
१०. ब्रह्मचर्य के साधक-बाधक तत्त्व	७२
११. जहां साधुता सिसकती है	७९
१२. अभओ पत्थिवा ! तुब्भं	८७
१३. राजर्षियों की परम्परा	९१
१४. याद पिछले जन्म की	१००
१५. जहां एक क्षण भी आनन्द नहीं मिलता	१०९
१६. मोम के दांत : लोहे के चने	११८
१७. पथ और पाथेय	१२५
१८. अचिकित्सा ही चिकित्सा	१३२
१९. संवाद : नाथ और अनाथ के बीच	१४१
२०. मैं थामे हूँ अपने भाग्य की डोर	१४९
२१. तब धर्म भी अफीम बन जाता है	१५४
२२. चोर से अचौर्य की प्रेरणा	१६२
२३. असहयोग का नया प्रयोग	१७१
२४. रूपान्तरण	१७९



## जातिवाद तात्त्विक नहीं है

### शिष्य की जिज्ञासा

आज से दो हजार वर्ष पहले एक संघर्ष चलता था। समाज में एक घुन्ट था। एक ओर जातिवाद का समर्थन किया जा रहा था, दूसरी ओर जातिवाद का खंडन किया जा रहा था। एक शिष्य ने आचार्य से जिज्ञासा की—गुरुदेव! यह बात हर आदमी समझ सकता है कि किसी व्यक्ति से घृणा नहीं करनी चाहिए। फिर यह जातिवाद चर्चा का विषय क्यों बना ? यह एक दार्शनिक विषय बन गया है। इस पर बड़े-बड़े ग्रन्थ लिखे जा रहे हैं। श्रमण परम्परा के एक विद्वान कहते हैं--

*वेदः प्रामाण्यं कस्यचित् कर्तृवादः, स्नाने धर्मव्याजातिवादावलेपः।*

*संतापारंभः पापहानाय धैते, ध्वस्तप्रज्ञानां पंचविन्दानि जाड्ये॥*

जड़ता के पांच लक्षण हैं। उनमें एक है जातिवाद का अहंकार।

एक ओर जातिवाद को समर्थन मिल रहा है, दूसरी ओर उसे जड़ता का लक्षण माना जा रहा है। क्या समर्थन करने वालों में इतनी भी समझ नहीं है कि वे इस सच्चाई को समझ सकें ?

### स्वाभाविक प्रश्न

यह प्रश्न बहुत स्वाभाविक है। यह एक शिष्य का ही प्रश्न नहीं है, हजारों-हजारों लोगों के मानस में यह प्रश्न उभरता है। बहुत सूक्ष्म और गंभीर बात को समझने में कठिनाई हो सकती है। एक सूई की नोक टिके उतने स्थान में अनन्त जीव हैं, यह समझना कठिन हो सकता है किन्तु एक आदमी दूसरे आदमी को नीचा न माने, भाई माने, उसके साथ भाईचारे का व्यवहार करे, इतनी स्थूल बात समझने में दुविधा क्यों होती है ? अनेक ग्रन्थों के लेखक, तार्किक और समझदार व्यक्ति भी इतनी स्थूल बात समझ नहीं पाते, क्या यह विस्मयजनक नहीं है ?

### प्रश्न बुद्धि का नहीं है

आचार्य ने कहा—वत्स ! तुम्हारा प्रश्न उचित है पर यह प्रश्न बौद्धिकता का नहीं है। प्रश्न यह नहीं है कि सामने वाले व्यक्ति में समझ नहीं है, चिन्तन या विचार की

शक्ति नहीं है। जितने हम बुद्धिमान् हैं उतने बुद्धिमान् सामने वाले भी हो सकते हैं, वे हमसे अधिक बुद्धिमान् भी हो सकते हैं। उनमें भी चिन्तन की शक्ति है, विचार की शक्ति है। चिन्तन की शक्ति, विचार और बौद्धिक क्षमता का अन्तर इसका कारण नहीं है।

शिष्य ने जिज्ञासा की—गुरुदेव ! फिर अन्तर कहाँ है ? जातिवाद के समर्थन का कारण क्या है ?

आचार्य ने कहा—मनुष्य के व्यवहार के पीछे उसकी वृत्तियाँ काम करती हैं। व्यक्ति की प्रत्येक मान्यता की पृष्ठभूमि में अनेक वृत्तियाँ सक्रिय रहती हैं। जितनी समाज की मान्यताएँ बनी हैं, संगठन की मान्यताएँ बनी हैं, उनके पीछे छिपी हुई वृत्तियाँ काम करती हैं। यह जातिवाद का प्रश्न भी बुद्धि का नहीं है, मनुष्य की मान्यता का है और इसके पीछे भी एक वृत्ति काम कर रही है। चाहे सामाजिक मान्यता हो, सम्प्रदायगत मान्यता हो, जातिगत मान्यता हो, उसकी पृष्ठभूमि में मनुष्य की मनोवृत्ति विद्यमान रहती है।

### जातिवाद का आधार

मनोविज्ञान ने वृत्तियों का एक जाल बिछाया है। उसके कई वर्गीकरण किए हैं, किन्तु यदि हम जैन मनोविज्ञान की दृष्टि से विचार करें तो मौलिक मनोवृत्ति एक है—राग। शेष वृत्तियाँ उसका विस्तार हैं। सब वृत्तियों में मूल है—राग, प्रियता का संवेदन। राग है तो दूसरी वृत्ति बनेगी—द्वेष। द्वेष मूल मनोवृत्ति नहीं है। राग है तो द्वेष का होना भी अनिवार्य है। राग है, इसका मतलब लोभ और प्रियता है। प्रियता है, राग है तो अप्रियता और द्वेष का होना जरूरी है, घृणा और अहंकार का होना भी जरूरी है। अहंकार दिखाई देता है, ममकार दिखाई देता है, राग और द्वेष छिपे रहते हैं। व्यक्ति कहता है—मैं धनवान हूँ, मैं पढ़ा लिखा हूँ, मैं सत्ताधीश हूँ—यह अहंकार है। जितनी उपाधियाँ लगती हैं, जितने विशेषण लगते हैं, वे सारे व्यक्ति के अहंकार को प्रकट करने वाले हैं। जो जातिवाद की मान्यता बनी है, उसका एक आधार है अहंकार। व्यक्ति में अहंकार होता है और वह अपने अहंकार का प्रदर्शन करना चाहता है। अहंकार की अभिव्यक्ति का एक रूप बनता है—जातिवाद।

### अहंकार : अनेक रूप

प्रश्न हो सकता है—हिन्दुस्तान में ही जातिवाद को इतना बढ़ावा क्यों मिला? बाहर उसका प्रसार क्यों नहीं हुआ ? हिन्दुओं में जातिवाद की जड़ें बहुत गहरी हैं। दूसरी अनेक जातियों में भाईचारा बना हुआ है। क्या वे जातियाँ नहीं हैं ? क्या दूसरे



शों में जातियां नहीं हैं ? यह सोचना भी शायद सार्थक नहीं है। अहंकार को प्रकट करने का रास्ता एक ही नहीं होता। उसकी अभिव्यक्ति के अनेक रास्ते हैं। अहंकार जो माध्यम मिलता है, वह उसे अपना लेता है। अभिव्यक्ति के आधार पर हमारे प्राचार्यों ने अहंकार को आठ भागों में विभक्त किया है—

- |                    |                       |
|--------------------|-----------------------|
| १. जाति का अहंकार। | ५. रूप का अहंकार।     |
| २. कुल का अहंकार।  | ६. तप का अहंकार।      |
| ३. बल का अहंकार।   | ७. श्रुत का अहंकार।   |
| ४. लाभ का अहंकार।  | ८. ऐश्वर्य का अहंकार। |

अहंकार के ये आठ ही नहीं, अनेक विभाग हो सकते हैं। वस्तुतः अहंकार एक ग्री है, उसकी प्रणालियां अलग-अलग हो गईं। एक ही गंगा से नहरें निकलीं, एक ही यमुना से नहरें निकलीं, कोई भाखड़ा नहर बन गई, कोई गंगानहर बन गई। नाम भलग-अलग हो गए। उनमें सास पानी गंगोत्री और यमुनोत्री से आ रहा है। वह नहरों और नालियों के माध्यम से अनेक रूपों में प्रवाहित होता है। इस प्रकार मूल में एक ही अहंकार काम कर रहा है और वह अहंकार ही अनेक रूपों में बंट जाता है।

आयुर्वेद का सिद्धांत है—व्यक्ति को बीमारी का दर्द होता है। दर्द दर्द है, बीमारी बीमारी है। घुटनों में दर्द होता है तो कहा जाता है—घुटने में दर्द हो गया। कमर में दर्द होता है तो कहा जाता है—कमर का दर्द हो गया। दर्द आखिर दर्द ही है। केवल स्थान भेद से नाम भेद हो गया। अहंकार अहंकार है, अभिव्यक्ति के भेद से उसके अनेक रूप बन जाते हैं।

### जाति, रंग और वर्ण

हिन्दुस्तान में जाति का अहंकार प्रबल बना। कहीं रंग का अहंकार प्रबल है। गोरे लोगों का अहंकार काले लोगों पर कहर ढा रहा है। दक्षिण अफ्रीका में रंग-भेद के आधार पर यहां तक नियम बना दिए गए—जिस सड़क से गौरा आदमी जाता है, उस सड़क से काला आदमी नहीं जा सकता। काला आदमी अमुक-अमुक पथों में नहीं जा सकता। गोरे व्यक्ति पर उसकी छाया भी नहीं पड़नी चाहिए। जिस वायुयान में या रेल के डिब्बे में गोरे आदमी बैठते हैं, उसमें काले आदमी नहीं बैठ सकते। आज भी रंगभेद काफी तीव्र बना हुआ है। अहंकार कभी जातिभेद के रूप में प्रकट हो गया, कभी रंगभेद के रूप में प्रकट हो गया और कभी वर्ण भेद के रूप में अभिव्यक्त हो गया। एक ओर उच्चवर्ण है, दूसरी ओर निम्न वर्ण है। उच्चवर्ण का अहंकार वर्णभेद

को उभार देता है। उच्च वर्ग और निम्न वर्ग की जाति एक है पर उनमें वर्गगत अन्तर परिलक्षित होता है। उच्च वर्ग का अहंकार नीच वर्ग को अपना रूप बताना चाहता है, अपने धन-वैभव का प्रदर्शन करना चाहता है। इस वर्ग भेद से अहंकार का एक और विभाग हो गया। किसी व्यक्ति को सत्ता मिली, अहंकार बढ़ गया। अहंकार की अभिव्यक्ति का एक माध्यम विकसित हो गया। कुर्सी फूटी, अहंकार गल गया। धन मिला, अहंकार बढ़ गया, धन चला गया, अहंकार दब गया। यह सारा अहंकार का मायाजाल है। इसमें हमारी बुद्धि काम नहीं देती। हमारी बुद्धि, हमारे तर्क, हमारी मान्यताएं वहां जाती हैं जहां हमारी वृत्तियां उन्हें ले जाती हैं।

### अभिनिवेश मान्यता का

संस्कृत का एक प्रसिद्ध श्लोक है :-

*आग्रही बत ! निनीषति युक्तिः, यत्र तत्र मतिरस्य निविष्टा।*

*पक्षपातरहितस्य तु युक्तिः यत्र तत्र मतिरेति निवेशम् ।*

आग्रही व्यक्ति तर्क का प्रयोग करता है और पक्षपात रहित व्यक्ति भी तर्क का प्रयोग करता है। दोनों तर्क का प्रयोग करते हैं किन्तु एक व्यक्ति, जिसमें मान्यता का एक अभिनिवेश बन गया, पकड़ हो गई। वह सोचता है—मुझे इसी बात का समर्थन करना है। उसकी जो मान्यता या मति बन जाती है, वह उसके समर्थन में ही तर्क खोजता है। जो व्यक्ति पक्षपात रहित है, वह व्यक्ति जहां युक्ति है वहां अपनी मति का प्रयोग करेगा। वह एक न्यायपूर्ण मान्यता के साथ अपनी तर्क-शक्ति को नियोजित करेगा। एक आग्रही व्यक्ति ऐसा नहीं कर सकता। उसके सामने उसकी पकड़ मुख्य होती है। वह न्याय या औचित्य को नहीं देखता।

उपाध्याय यशोविजय जी ने आग्रह के संदर्भ में अत्यंत मार्मिक दृष्टान्त दिया है—

*मनोवत्सो युक्तिगर्वी, मध्यस्थस्यानुधावाति।*

*तामाकर्षति पुच्छेन, तुच्छाग्रहमनःकपिः॥*

### प्रश्न मानवीय अधिकार का

बुद्धि, न्याय और अधिकार के आधार पर जातिवाद का समर्थन नहीं किया जा सकता। दो प्रकार के अधिकार माने जाते हैं—कानूनी अधिकार और नैतिक अधिकार। इन मानवीय अधिकारों को इस युग में बहुत महत्त्व मिला है, सारे राष्ट्र चौकन्ने हो जाते हैं। समाचार पत्रों में पढ़ा-चीन ने तिब्बत के सन्दर्भ में दलाईलामा से बातचीत का प्रस्ताव रखा है। चीन के पास विशाल साम्राज्य शक्ति है, दलाईलामा के पास कुछ

भी नहीं है। जो तिब्बत था, वह भी छूट गया। कुछेक हजार लोग भारत में निर्वासित जीवन बिता रहे हैं। वे हिन्दुस्तान की सहानुभूति पर जी रहे हैं। इस संदर्भ में दलाईलामा के साथ जो बातचीत का प्रस्ताव किया है, उसका महत्त्व बढ़ जाता है। प्रश्न होता है—ऐसा क्यों किया गया ? प्राचीन काल में ऐसा होना संभव नहीं था।

### शक्तिशाली है मानवाधिकार का प्रश्न

आज मानवाधिकार का प्रश्न बहुत शक्तिशाली बन गया है। स्वतन्त्रता मानव का अधिकार है, शिक्षा मानव का अधिकार है, रोजगार मानव का अधिकार है। मानवाधिकार की जो आज व्याख्या हुई है, उस आधार पर अनेक मानवीय समस्याएं सुलझ रही हैं। कोई भी राष्ट्र चाहे कितना ही शक्तिशाली हो, वह मानवाधिकारों का मनचाहा अतिक्रमण नहीं कर सकता। पंजाब की समस्या को लेकर अमेरिकी सीनेट के सदस्य ने मानवाधिकार का प्रश्न उठाया तो भारत को भी सावधान होना पड़ा। कहा गया—हिन्दुस्तान को दी जाने वाली सहायता बन्द होनी चाहिए क्योंकि पंजाब में हिन्दुस्तान की सरकार मानवाधिकारों का अतिक्रमण कर रही है। आज एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न बन गया है मानवाधिकार। एक आदमी दूसरे आदमी को घृणित माने, जातिभेद के कारण, रंगभेद के कारण या किसी अन्य सामाजिक कारण से व्यक्ति के अधिकार छीन लिए जाएं, क्या यह मानवाधिकार का अतिक्रमण नहीं है ? आज यह बहुत स्पष्ट है। यह अतिक्रमण पहले भी चलता था, आज भी चलता है। प्रश्न भी होता है—यह क्यों चलता है ? इसके पीछे जो प्रेरणा है, वह बुद्धि की नहीं है। वह प्रेरणा है अहंकार की। अतिक्रमण की पृष्ठभूमि में मनुष्य का अहंकार काम कर रहा है और इसका जीवित निदर्शन है हरिकेश मुनि का आख्यान।

### त्याग की विजय : अहंकार की पराजय

हरिकेश मुनि जाति से चाण्डाल थे। बड़े तपस्वी थे। वे एक-एक मास का तप कर रहे थे। पारणे के दिन वे भिक्षा के लिए घूमते-घूमते एक यज्ञ मंडप के पास पहुंचे। यज्ञ का अनुष्ठान चल रहा था। बड़े-बड़े पंडित, पुरोहित, उपाध्याय और छात्र उस यज्ञ में लगे हुए थे। मुनि यज्ञशाला के पास खड़े हो गए। यज्ञ में उपस्थित ब्राह्मण कुमारों ने मुनि को देखा। वे मुनि की वेशभूषा को देखकर उनका उपहास करने लगे। मुनि के शरीर पर पूरे वस्त्र नहीं थे। उनके विचित्र रूप को देखकर ब्राह्मणों ने पूछा—  
तुम कौन हो ?

मैं भिक्षु हूं।

यहां क्यों आए हो ?

भिक्षा लेने के लिए।

भिक्षा लोगे ?

हां !

जातिवाद का नाग फुफकार उठा। ब्राह्मण आवेश से भर गए। उन्होंने कहा-- चले जाओ यहां से। तुम यहां भिक्षा लेने आए हो ? तुम्हें पता नहीं है, यहां ब्राह्मण यज्ञ कर रहे हैं। यह भिक्षा जातिवान् ब्राह्मणों के लिए है, तुम्हें भिक्षा नहीं मिलेगी।

मुनि बोले--मैंने देखा--तुम्हारे यहां बहुत रसीई बन रही है, सहज ही बहुत अन्न पकाया जा रहा है। उसमें से कुछ इस भिक्षु को मिल जाए, और कोई लेना-देना नहीं है।

नहीं! नहीं मिल सकता। जो जाति से उच्च हैं, उन्हें ही यह अन्न मिल सकता है। जो विद्या से उच्च हैं, उन्हीं के लिए यह भोजन है। तुम जाति से हीन हो, क्योंकि चांडाल पुत्र हो। तुम विद्या से हीन हो, क्योंकि तुमने वेद नहीं पढ़े हैं, इसलिए तुम्हें यह अन्न नहीं मिल सकता।

मुनि ने कहा--तुम जाति से अपने आपको महान् मानते हो, वस्तुतः तुम महान् नहीं हो। तुम आवेश में हो, अभिमान से भरे हुए हो और साथ-साथ हिंसा से जघन्य पाप का बंध कर रहे हो। तुम विद्या से भी महान् नहीं हो सकते। इस संसार में तुम केवल वाणी का भार ढो रहे हो। 'शास्त्रं भारोऽविवेकिनां'--तुम्हारे लिए शास्त्र भार बन रहे हैं। तुम इसका हृदय नहीं समझ पाए हो।

मुनि और ब्राह्मणों के बीच लम्बा संवाद चला। एक ओर त्याग-तपस्या का बल था, दूसरी ओर जाति का अहंकार था। अन्ततः अहंकार हार गया, त्याग और तपस्या का बल विजयी बन गया। ब्राह्मण मुनि के चरणों में नत हो गए।

**सदा हारता है अहंकार**

अहंकार सदा हारता है। अन्तिम विजय समत्व की होती है, तप की होती है। जहां समता है, त्याग है, वहां अहंकार टिक नहीं पाता। एक सेठ के मन में धन का अहंकार जाग गया। उसने धन के प्रदर्शन की एक योजना तैयार की। कोरा दहेज ही धन के प्रदर्शन का तरीका नहीं है, उसका प्रदर्शन अनेक प्रकार से हो सकता है। उसने घोषणा करवाई--मेरी मां के पड़पोता हुआ है इसलिए मैं अपनी मां की पूजा करवाऊंगा। घोषणा हो गई। अनेक लोग आ गए। पंडित को बुलाया गया। सेठ ने अपनी मां को सोने की चौकी पर बिठाया। पूजा विधि सम्पन्न हुई। सेठ ने घोषणा की--पंडितजी ! आपने सुन्दर ढंग से पूजा विधि संपादित की है इसलिए मैं आपको

यह सोने की चौकी दक्षिणा में प्रदान करता हूँ। पंडितजी यह सुन विस्मित रह गए। तालियां बज उठीं। सेठ की जय जयकार होने लगी। अहंकार से भरे हुए सेठ ने आगे कहा—पंडितजी आज तक कोई इतना दानी मिला ? पंडितजी त्यागी थे। सेठ के कथन से उनका मानस आहत हुआ। उन्होंने सोचा—मैं सोने की चौकी ले सकता हूँ किन्तु उसके साथ यह अहंकार का भार नहीं उठा सकता। पंडितजी ने जेब में हाथ डाला, एक रुपया निकाला। उस रुपए को चौकी पर रखते हुए पंडितजी बोले—सेठ जी ! इस रुपये के साथ मैं आपकी चौकी आपको लौटा रहा हूँ। पंडितजी ने आगे कहा—सेठ जी ! क्या आपको आज तक इतना बड़ा त्यागी मिला ? सेठ यह सुनकर स्तब्ध रह गया। उसका सारा खून पानी बन गया और अहंकार का उत्ताप त्याग की शीतलता से ठंडा हो गया।

### समता की चेतना प्रबल बने

अहंकार की पराजय हमेशा त्याग के द्वारा होती है। धन के द्वारा कभी अहंकार की पराजय नहीं होती। सत्ता और शक्ति के द्वारा कभी अहंकार को हराया नहीं जा सकता। जब समत्व, त्याग और तपस्या का विकास होता है, अहंकार विलीन होता जाता है। जातिवाद के उस युग में भगवान महावीर और बुद्ध ने समता की चेतना के विकास पर बल दिया। समता का विकास प्रबल बना, जातिवाद की पकड़ कमजोर होने लगी। जातिवाद का जो एकछत्र साम्राज्य था, उसकी जड़े हिलने लग गईं। अगर महावीर और बुद्ध ने इस दिशा में प्रयत्न न किया होता तो आज न जाने हेन्दुस्तान की क्या दशा होती ? आज भी हिन्दुस्तान की स्थिति बहुत अच्छी नहीं है। अनेक तीव्र प्रयत्नों के बावजूद, हिन्दुस्तान को जातिवाद के बुरे परिणाम भुगतने पड़े। हम आज भी उसके परिणाम भुगत रहे हैं। जातिवाद की काली छाया आज भी वेद्यमान है। मनुष्य का अहंकार आज भी समस्या का कारण बना हुआ है। अहंकार के द्वारा उसे मिटाया नहीं जा सकता।

### आप जीते, मैं हारा

राजा दशार्णभद्र ने महावीर की वन्दना के लिए प्रस्थान किया। उसके साथ अपार सेना थी, वैभव था। इन्द्र को यह अहंकार-प्रदर्शन अनुचित लगा। इन्द्र ने दशार्णभद्र को पराजित करने के लिए अपार वैभव और शक्ति का प्रदर्शन किया। दशार्णभद्र के अहंकार को चोट पहुंची। उसने सोचा—वैभव और शक्ति से मैं इन्द्र को पराजित नहीं कर सकता। उसने तत्काल एक निश्चय किया और महावीर को वन्दना कर बोला—भगवन् ! आप मुझे दीक्षित करने की कृपा करें। भगवान ने दशार्णभद्र को

दीक्षित कर लिया। वह सर्वत्यागी मुनि बन गया। इन्द्र का अहंकार पराजित हो गया। वह वैभव और शक्ति से सम्पन्न था, समृद्ध था किन्तु त्याग के क्षेत्र में वह दशार्णभद्र की बराबरी नहीं कर सका। वह राजर्षि के चरणों में झुक गया। उसने कहा—राजर्षि! आप जीते, मैं हारा।

### सार्वभौम उद्घोष

जातिवाद की इस समस्या को संक्षेप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है।

*यथा यथा विवर्धतेऽभिमन्यता निरंकुशा ।*

*तथा तथा प्रवर्धते घृणा च जातिसंभवा ॥*

*यथा यथा प्रवर्धते समत्वभाव संस्त्वः ॥*

*तथा तथा विलीयतेऽभिमानभावना स्वतः ॥*

जैसे-जैसे निरंकुश अभिमन्यता बढ़ती है, वैसे-वैसे जाति से पैदा होने वाली घृणा बढ़ती चली जाती है। जैसे-जैसे समत्व भाव से परिचय बढ़ता है, वैसे-वैसे अभिमान भावना स्वतः विलीन हो जाती है, अपनी मौत मर जाती है।

यह जातिवाद का भूत, अहंकार का आवेश मनुष्य को सताता रहता है और इसी आधार पर विषमता को बढ़ावा मिलता है। जहां विषमता होती है, वहां आदमी-आदमी को समान मानने की बात गौण हो जाती है। एक आदमी दूसरे आदमी को घृणित माने, इससे बढ़कर मानवता का कोई अपमान नहीं हो सकता। इस बात को लेकर जैन और बौद्ध आचार्यों ने जातिवाद के खण्डन में अपनी पूरी शक्ति लगाई। डेढ़ हजार वर्ष का दार्शनिक साहित्य इसका स्पष्ट प्रमाण है। दूसरी ओर जातिवाद के समर्थकों ने उसके मंडन में अपनी शक्ति नियोजित की। एक पक्ष था—जातिवाद वास्तविक है, काल्पनिक नहीं है। दूसरा पक्ष था—जातिवाद कल्पना है, मान्यता है, वास्तविक नहीं। जातिवाद सचाई नहीं है। महावीर के सिद्धान्तों से उपजा यह घोष मुखर हो उठा—‘एक्का मणुस्स जाई’—मनुष्य जाति एक है। जाति का कोई भेद नहीं है, जाति में कोई अलगाव नहीं है। आज यह उद्घोष सार्वभौम और सामुदायिक बन रहा है। हमें यह मानना चाहिए—जातिवाद के पीछे जो एक अहंकार था, वह बदल रहा है, नया रूप ले रहा है। जब तक समत्व की प्रतिष्ठा नहीं होगी, अहंकार को नया रूप मिलता रहेगा। महावीर के जो सिद्धान्त विकसित हुए हैं, उनके पीछे सामाजिक पृष्ठभूमि रही है। जिस समय जो सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक परिस्थितियां होती हैं, सिद्धान्तों का निर्माण उन परिस्थितियों के सन्दर्भ में होता है।

### विस्तार : परिस्थिति सापेक्ष

हिंसा नहीं करनी चाहिए, यह एक सिद्धान्त है। अहिंसा की व्याख्या का विस्तार

तत्कालीन परिस्थिति के आधार पर हुआ। उस समय दासप्रथा प्रचलित थी। अहिंसा की व्याख्या में एक बात कही गई—किसी को दास मत बनाओ। यह अहिंसा की कोई मूल परिभाषा नहीं है। यह परिस्थिति से उपजा हुआ सिद्धान्त था। अहिंसा का मूल हार्द है—राग-द्वेष मत करो, किसी को मत सताओ। उसका जो विस्तार हुआ है, वह सामाजिक स्थितियों के सन्दर्भ में हुआ है। आचार्यश्री ने अणुव्रत आन्दोलन का प्रवर्तन किया। नया मोड़ चलाया। उसके व्रतों का निर्धारण वर्तमान परिस्थितियों के आधार पर हुआ। आचार्य भिक्षु ने धर्म की जो व्याख्या की, उसका आधार भी समाज की तत्कालीन परिस्थितियां थीं। अगर समाज नहीं होता तो सत्य का व्रत नहीं होता। अगर व्यक्ति अकेला होता तो सत्य का व्रत नहीं बनता। अगर समाज नहीं होता तो अस्तेय और ब्रह्मचर्य का व्रत नहीं बनता। इन व्रतों की उपयोगिता समाज के सन्दर्भ में है। हो सकता है—पहले अहिंसा ही एक व्रत रहा हो। चार या पांच महाव्रत इसका विस्तार है। आचार्य हरिभद्र ने व्रतों की बहुत सूक्ष्म मीमांसा की है। उन्होंने लिखा—

*अहिंसा पयसः पालिभूतान्यन्यव्रतानि यत्।*

मूल व्रत एक है अहिंसा। शेष सारे व्रत उसकी सुरक्षा के लिए हैं। व्रतों का सारा विस्तार सामाजिक परिस्थितियों के सन्दर्भ में होता है।

### जातिवाद की अतात्त्विकता

आचार्य हेमचन्द्र ने लिखा—

*आश्रवो भवहेतुः स्याद्, संवरो मोक्षकारणम्।*

*इतीयमार्हतीदृष्टिरन्यदस्याः प्रपञ्चनम्॥*

आश्रव भव भ्रमण का हेतु है और संवर मोक्ष का कारण है। समग्र अर्हत् दर्शन इन दो तत्त्वों का विस्तार है।

जितनी परिस्थितियां उत्पन्न होती हैं, उतना ही दर्शन का विस्तार होता चला जाता है। भगवान् महावीर ने आत्मतुला का सिद्धान्त प्रस्तुत किया। उन्होंने कहा—सब जीवों को अपने समान समझो। जातिवाद की अतात्त्विकता इसी सिद्धान्त का विस्तार है। उस समय सामाजिक परिस्थितियों के कारण यह स्वर प्रबल बना। महावीर के समय में समाज की क्या परिस्थितियां थी, क्या सामाजिक मान्यताएं थी, यदि इनका विश्लेषण किया जाए तो जातिवाद के समर्थन या विरोध की परिस्थिति को समझा जा सकता है। इस परिस्थिति के संदर्भ में ही जातिवाद और अहंकार की पृष्ठभूमि का विश्लेषण यथार्थरूप में प्रस्तुत हो पाएगा।

## कर्मणा जातिः

भगवान् ऋषभ राज्य और समाज की व्यवस्था कर रहे थे। राज्य और समाज की व्यवस्था में कार्य का विभाजन जरूरी होता है। मुख्य प्रश्न यह था—किस व्यक्ति को किस कार्य में लगाया जाए ? जब यौगलिक या अरण्य का जीवन था तब न व्यवस्था की जरूरत थी, न कार्य विभाजन की जरूरत थी और न श्रम के बंटवारे की जरूरत थी। जिसने जैसा चाहा, वैसा कार्य कर लिया। जहां समाज के निर्माण का प्रश्न है, वहां विभाग अत्यन्त जरूरी है।

### त्रिवर्ण व्यवस्था

भगवान् ऋषभ ने समाज को तीन भागों में विभाजित किया। एक विभाग का आधार बना—पराक्रम, एक विभाग का आधार बना—व्यवसाय और एक विभाग का आधार बना उत्पादन। समाज के लिए उत्पादन का कौशल जरूरी है, विनिमय की आवश्यकता है और सामाजिक हितों का संरक्षण अपेक्षित है। यदि उत्पादन नहीं है तो विनिमय की बात नहीं आएगी। कृषि शब्द उत्पादन का प्रतीक है। जो उत्पादक वर्ग बना, वह कृषक वर्ग कहलाया। उसका कार्य था—उत्पादन करना और सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति करना। दूसरा वर्ग बना व्यवसाय करने वालों का। जो उत्पादन हुआ है, उसे जनता तक पहुंचाना। उसका माध्यम बना—विनिमय करना, लेना-देना। उसका प्रतीक शब्द है—स्याही या लेखनी। जब दो वर्ग बन गए तब संघर्ष की संभावना भी बन गई। इस स्थिति में एक वर्ग बना संरक्षक वर्ग। वह क्षत्रिय नहीं कहलाया। उसका प्रतीक बना तलवार। क्षत्रिय वर्ग, व्यापारी वर्ग और कृषि वर्ग—इन तीनों विभागों के आधार पर समाज को बांट दिया गया। यह त्रिवर्ण व्यवस्था है।

### चतुर्वर्ण व्यवस्था

वैदिक विद्वानों ने समाज को चार भागों में बांटा। उसके चार आधार थे—बुद्धि, पराक्रम, आवश्यकता-पूर्ति और सेवा। माना जाता है कि सृष्टि की रचना हुई और उसमें ब्राह्मण ब्रह्मा के शिर से पैदा हुआ। क्षत्रिय भुजा से पैदा हुआ। वैश्य पेट से और शूद्र पैरों से पैदा हुआ। हम इन शब्दों को पकड़ेंगे तो बात बहुत अटपटी लगेगी।



इसी आधार पर ब्राह्मण को उच्च और शूद्र को नीच मान लिया गया। यदि हम प्रतीकों की सम्यक् व्याख्या करें तो सारी धारणा ही बदल जाए। यह सारी प्रतीकात्मक भाषा है। जो दिमाग से काम लेता है, वह ब्राह्मण है। इसका अर्थ है—जो बुद्धि से काम लेता है, उसे सिर से पैदा हुआ मान लें। पौरुष का प्रतीक है भुजा। जो पौरुष से काम लेता है, उसे भुजा से पैदा हुआ मान लें। वह है क्षत्रिय। वैश्य की उत्पत्ति मानी गई है पेट से। पेट कौन भरता है ? यदि व्यापारी वर्ग नहीं होता तो सब पेट पर हाथ फेरते। व्यापारी का प्रतीक है पेट। सेवक वर्ग पैर से पैदा हुआ। गतिशीलता का प्रतीक है पैर। इसमें ऊंचा-नीचा कुछ भी नहीं है। गुणों के आधार पर समाज को चार भागों में बांटा गया। इन्हीं चार अपेक्षाओं के आधार पर चार वर्णों की व्यवस्था की गई थी किन्तु कोई भी तथ्य भविष्य में अपना मूल रूप खो देता है। उसके साथ अनेक प्रकार की कल्पनाएं, मान्यताएं और धारणाएं जुड़ जाती हैं।

### समाज व्यवस्था : प्लेटो की कल्पना

प्राचीन जैन आचार्यों ने तीन वर्णों की कल्पना की और वैदिक विद्वानों ने चार वर्णों की कल्पना की। जहां भी समाज और राज्य के बारे में सोचा गया वहां जनता का वर्गीकरण करना जरूरी हो गया। प्लेटों ने आदर्श राज्य की कल्पना की। उन्होंने बताया—समाज में तीन प्रकार के लोग होते हैं—बुद्धिप्रधान, साहसप्रधान और वासना प्रधान। बुद्धि, साहस और वासना—ये तीन अपेक्षाएं हैं। जो बुद्धिप्रधान होता है, वह संरक्षक होता है। जो साहस प्रधान है, वह सहायक संरक्षक होता है। इस श्रेणी के लोग सैनिक या पुलिसकर्मी होते हैं। जो वासनाप्रधान है, वह कृषक या व्यापारी है। कहा गया—प्रत्येक व्यक्ति में ये तीनों प्रधान गुण होते हैं किन्तु तरतमता के आधार पर उसे तीन भागों में बांटा जा सकता है। एक व्यक्ति में बुद्धि प्रधान होती है, साहस और वासना गौण होती है। इतिहास साक्षी है—बहुत से शासक ऐसे हुए हैं, जिनमें साहस तो बहुत था पर बुद्धि कम थी। कुछ लोगों में वासना प्रधान होती है, बुद्धि और साहस गौण होते हैं।

### व्यापक दृष्टिकोण

प्रत्येक व्यक्ति में ये सारी वृत्तियां विद्यमान हैं। आदमी सुबह शौच जाता है, क्या वह शूद्र नहीं है ? आदमी धन कमाता है, क्या वह वैश्य नहीं है ? वह पढ़ता है, क्या वह ब्राह्मण नहीं है ? वह अपने परिवार की रक्षा करता है, क्या वह क्षत्रिय नहीं है ? क्या प्रत्येक आदमी में ये चारों वर्ण नहीं हैं ? यह एक व्यापक और लचीला दृष्टिकोण है। महावीर ने इसी दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया था—जातिवाद और

वर्णवाद को लेकर हिंसा मत फैलाओ। एक दूसरे के प्रति उच्चता या निम्नता का भाव मत लाओ। जो आदमी जैसा काम करता है, वह वैसा ही होता है।

### व्यक्ति सापेक्ष है समाज

महावीर की इस अवधारणा को इस रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है--

*समाजः व्यक्तिसापेक्षः जनाः विविधशक्तयः ।*

*कर्म शक्त्यनुरूपं स्याद्, तेन जातिः स्वकर्मणा ॥*

समाज व्यक्ति सापेक्ष होता है। प्रत्येक समाज में साहस-प्रधान, बुद्धि-प्रधान और कर्म-प्रधान लोग होते हैं। कोई भी आदमी एक प्रकार की शक्ति वाला नहीं होता किन्तु शक्ति वह कहलाती है, जो जाग जाती है। किसी में पौरुष और पराक्रम की शक्ति जाग जाती है। किसी में बुद्धि की क्षमता प्रखर होती है। अनेक व्यक्तियों में अनेक प्रकार की शक्तियां जागती हैं। एक व्यक्ति पढ़ने में बहुत तेज है पर कला-शिल्प में कुछ नहीं है। एक व्यक्ति कला-शिल्प में बहुत दक्ष है पर पढ़ने में मंद है। शक्ति का जागरण एक प्रकार का नहीं होता। अनेक प्रकार की शक्तियों की तरतमता होती है। समाज की जितनी अपेक्षाएं होती हैं, उन्हें पूरा करने वाले लोग भी उतने ही चाहिए। यदि एक आदमी होता तो कुछ होता ही नहीं। आदमी कितना ही शक्तिशाली हो पर वह होगा एक ही दिशा में। अन्य सारी शक्तियों की पूर्ति के लिए उसे समाज से जुड़ना पड़ेगा। इसीलिए सब सापेक्ष हैं, कोई निरपेक्ष नहीं है। यदि कोई व्यक्ति निरपेक्षता की बात सोचता है तो इससे बड़ी कोई भूल नहीं हो सकती। आचार्य कालूगणी कहा करते थे--आचार्य सब कुछ होता है पर वह भी इतना सापेक्ष है कि उसे कहीं भी जाना हो तो एक साधु का सहयोग चाहिए। जहां समुदाय है, समाज और राज्य है वहां निरपेक्षता की बात नहीं सोची जा सकती।

### सफलता का सूत्र

समाज का सूत्र है सापेक्षता। करोड़ों लोगों की शक्ति लगती है तब एक समाज बनता है, समाज की आवश्यकताएं पूरी होती हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपनी शक्ति के अनुरूप कर्म करता है। जिसमें जिस प्रकार की शक्ति होती है, उसमें उसी प्रकार का कर्म होता है। यह बहुत बड़ा सूत्र है--जिस व्यक्ति में जिस प्रकार की शक्ति है, उसे उसी कर्म में लगाओ। यह समाज की सफलता का सूत्र है--शक्ति के अनुरूप कर्म का नियोजन होना चाहिए। यह था कर्म का सिद्धान्त--जिस प्रकार की शक्ति, उसी प्रकार का कर्म। प्रस्तुत प्रसंग में कर्म का अर्थ ज्ञानावरण और दर्शनावरण से नहीं है। कर्म का तात्पर्य है कार्य से। जिस व्यक्ति में जो काम करने की शक्ति है, वह उसी काम में अपनी शक्ति

का नियोजन करे। इस कार्यविभाजन के आधार पर ही एक व्यक्ति ब्राह्मण बनता है, एक व्यक्ति क्षत्रिय बनता है, एक व्यक्ति वैश्य या शूद्र बनता है। जिसमें विद्या की शक्ति है, वह ब्राह्मण बनता है। जिसमें पौरुष की शक्ति है, वह क्षत्रिय बनेगा। जिसमें व्यावसायिक बुद्धि है, वह व्यापारी बनेगा। जिसमें सेवा करने की शक्ति है, वह सेवक बनेगा।

**जन्म से नहीं, कर्म से**

वैदिक विद्वानों द्वारा कर्म के आधार पर समाज को चार भागों में बांटा गया। ऋषभ ने समाज को तीन भागों में विभक्त किया। प्लेटो ने जिन तीन विभागों की कल्पना की है, वह जैन आचार्यों की कल्पना के काफी निकट है। अग्नि-मसि-कृषि के साथ बुद्धि, साहस और वासना की तुलना की जा सकती है। यह एक लचीला सिद्धान्त था, जिसका उद्देश्य था--समाज की अपेक्षाएं पूरी हों और परिवर्तन भी न हो। जब जैन दर्शन और बौद्ध दर्शन का समाज पर व्यापक प्रभाव पड़ा तब जन्मना जाति की बात गौण हो गई, चारों ओर कर्मणा जाति का स्वर उभरा। गीता में भी कहा गया--

*चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं, गुणकर्मविभागशः।*

व्यक्ति अपने गुण या कर्म से ब्राह्मण बनता है। ब्राह्मण जन्मना नहीं, कर्मणा होता है। केवल ॐ जपने मात्र से कोई ब्राह्मण नहीं होता। ब्रह्मविद्या को जानने वाला ब्राह्मण होता है। जैन और बौद्ध धर्म ने कर्मणा जाति का एक तीव्र आन्दोलन चलाया और उसका समाज पर व्यापक प्रभाव हुआ। भागवत-पुराण और महाभारत में भी कहा गया--एक व्यक्ति एक जन्म में ब्राह्मण भी हो सकता है, वैश्य और क्षत्रिय भी हो सकता है, चाण्डाल भी हो सकता है।

**समस्या का कारण**

वैचारिक जगत् में यह धारणा हो गई--जाति जन्मना नहीं, कर्मणा होती है किन्तु आम जनता में जो जन्मना जाति का संस्कार डाल दिया गया, वह नहीं बदल पाया। इसी का परिणाम है--आज हिन्दुस्तान जाति और वर्णवाद की समस्याओं को झेल रहा है और उस पर बिखराव का खतरा मंडरा रहा है। आज मनुष्य में घृणा भरना जितना आसान है, प्रेम और मैत्री भरना उतना आसान नहीं है। कहा जाता है--मत की बात महीन। ऊंच-नीच की एक मान्यता या मत बन जाता है। उस मत या मान्यता को तोड़ पाना बहुत कठिन होता है किन्तु इन सारी मान्यताओं, धारणाओं, आग्रहों और अभिनिवेशों को तोड़ना आवश्यक है।

**महावीर का क्रांत चिंतन**

महावीर ने इन आग्रहों को तोड़ने के लिए जो कार्य किया, वह एक बहुत बड़ी

क्रांति थी। उन्होंने ग्रन्थों का प्रामाण्य न बतलाकर व्यक्ति का प्रामाण्य बतलाया। यदि ग्रन्थों का प्रामाण्य होता तो जातिवाद पर कभी प्रहार नहीं हो पाता। यदि हम ग्रन्थों की व्याख्या पर ही चलेंगे तो जातिवाद को कभी तोड़ा नहीं जा सकेगा। व्यक्ति का अनुभव प्रमाण होता है, व्यक्ति की वृत्तियां प्रमाण होती हैं, उसका चरित्र और अतीन्द्रिय दर्शन प्रमाण होता है। इस क्रांत दृष्टिकोण ने एक नए दर्शन की स्थापना की और यह स्वर मुखर हो गया—

*कम्मुणा बंधणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ।*

*वइस्सो कम्मुणा होइ, सुद्धो हवइ कम्मुणा॥*

मनुष्य कर्म से ब्राह्मण होता है, कर्म से क्षत्रिय होता है, कर्म से वैश्य और कर्म से शूद्र होता है।

महावीर ने जातिवाद की प्रचलित मान्यता को नया संदर्भ दिया और एक वैचारिक क्रांति घटित हो गई। यदि वह वैचारिक क्रांति मानवीय जीवन में संक्रांत होती तो विश्व में जातिवाद और रंगभेद की समस्या का उद्भव ही नहीं होता। महावीर का यह स्वर जातीय समस्या के समाधान का आधार-सत्र बन सकता है।

## यज्ञ, तीर्थस्थान आदि का आध्यात्मिकीकरण

एक पुरानी कहानी है। राजा ने शुकराज से पूछा—शुकराज ! तुम इतनी देर से क्यों आए ? शुकराज ने कहा—महाराज ! मैं आ रहा था किन्तु मेरे सामने एक विवाद आ गया। उसका निपटारा किए बिना मैं कैसे आ सकता था ? मैं अपनी जाति का राजा हूँ, शासक हूँ। अपनी जाति के विवादों का निपटारा मुझे करना होता है। राजा के मानस में जिज्ञासा उभर आई। उसने पूछा—तुम्हारे सामने क्या विवाद था? शुकराज बोला—जब मैं आपके पास आ रहा था तब दो तोते आपस में लड़ते-लड़ते आए। मैंने उनसे पूछा—तुम क्यों लड़ रहे हो ? उन्होंने कहा—हम दोनों में विवाद हो गया है। मैंने पूछा—विवाद का कारण क्या है ? उन्होंने कहा—इस दुनिया में पुरुष ज्यादा हैं या स्त्रियाँ ज्यादा हैं ? यह प्रश्न समाहित नहीं हो रहा है। यही विवाद का कारण है।

प्रत्येक आदमी अपनी बात के लिए लड़ता है। वह बिना मतलब बहुत लड़ता है। एक बात को लेकर विवाद खड़ा कर देता है, प्रश्न प्रस्तुत कर देता है। प्रश्न सहेतुक हो या अहेतुक, अनेक बार विवाद का रूप ले लेता है। यह प्रश्न भी अनेक बार उभरता रहा है—ज्यादा कौन—पुरुष या स्त्री ?

### प्रश्न आस्तिक और नास्तिक का

ऐसा ही एक प्रश्न मेरे मानस में उभरा है। इस दुनिया में आस्तिक ज्यादा हैं या नास्तिक ? यह प्रश्न भी विवादास्पद बन सकता है। मुझे लगता है—इस दुनिया में नास्तिकों की संख्या बहुत ज्यादा है। उत्तराध्ययन सूत्र में कहा गया—जो केवल वर्तमान की बात सोचता है, वर्तमान जीवन के विकास की बात सोचता है, वर्तमान जीवन में अधिकतम सुख-सुविधा और संपदा पाने की बात सोचता है, वह सही अर्थ में आस्तिक नहीं हो सकता।

आस्तिक वह होता है, जो अतीत की बात सोचता है, वर्तमान और भविष्य की बात सोचता है। जिसका दृष्टिकोण तीन काल से बंधा हुआ है, वह आस्तिक है। जो केवल वर्तमान की बात सोचता है, वह नास्तिक है चाहे उसकी मान्यता कुछ भी हो।

एक आदमी आत्मा को मानता है, पुनर्जन्म और पूर्वजन्म को मानता है किन्तु केवल वर्तमान की बात सोचता है। वह सोचता है—मैं इस जीवन में सुखी रहूँ। भयभीत न रहूँ। मेरे पास पर्याप्त धन-संपदा हो। सुख-सुविधा के साधन हो। वह रात-दिन इसी चिन्तन में लगा रहता है। ऐसा व्यक्ति चाहे आत्मवादी कहलाए, धार्मिक कहलाए, पर सही अर्थ में वह नास्तिक होता है। आस्तिक व्यक्ति का दृष्टिकोण होता है—मुझे अतीत के संस्कारों का परिष्कार करना है, निर्जरण करना है, वर्तमान में धर्म का जीवन जीना है और ऐसा काम करना है, जिससे भविष्य में दुर्गति न हो, भविष्य समुज्ज्वल बना रहे। जिस व्यक्ति के सामने अतीत, वर्तमान और भविष्य सदा प्रस्तुत रहता है, वह आस्तिक होता है। जिस व्यक्ति में यह चिन्तन नहीं होता, उसे आस्तिक कैसे कहा जाए ?

### व्यक्ति की आकांक्षा

प्रत्येक व्यक्ति इष्ट को पाना चाहता है, अनिष्ट का निवारण चाहता है। इष्टसिद्धि और अनिष्ट-निवारण—ये दोनों तत्त्व प्रत्येक व्यक्ति को काम्य रहे हैं। इष्टसिद्धि और अनिष्ट-निवारण के लिए व्यक्ति धर्म भी करता है, कर्म भी करता है। इष्ट और अनिष्ट—दोनों अनेक प्रकार के होते हैं। जो प्रज्ञावान् हैं, उनकी दृष्टि में इष्ट का आध्यात्मिक रूप ही दोषरहित है, सम्यक् है।

*इष्टसिद्धिरनिष्टस्य निवारणमभीप्सितम्।*

*तदर्थं कर्म धर्मोऽपि तदर्थं विद्यते नृणाम्॥*

*इष्टं नैकविधं तेषां, अनिष्टं चापि नैकधा।*

*तेषामाध्यात्मिकं रूपं, निर्दोषं सम्मतं बुधैः।*

प्रत्येक व्यक्ति चाहता है—जीवन में अनिष्ट न आए, विघ्न न आए। व्यक्ति अतीत से बंधा हुआ है। उसने अतीत में न जाने क्या-क्या किया है। अतीत का प्रतिक्रमण किए बिना यह संभव नहीं है कि विघ्न न आए, बाधा न आए। यदि वर्तमान जीवन में संयम नहीं है, पवित्रता नहीं है तो भी विघ्न की संभावना को समाप्त नहीं किया जा सकता। अतीत का प्रतिक्रमण और वर्तमान की पवित्रता—ये दोनों बातें होती हैं तो सुखद भविष्य की संभावना जन्म लेती है।

### धर्म की दो धाराएं

धर्म की दो धाराएं रही हैं—प्रवृत्तिवादी धर्म और निवृत्तिवादी धर्म। प्रवर्तक धर्म का उद्देश्य था—स्वर्ग की प्राप्ति। मीमांसक दर्शन प्रवर्तक धर्म का अग्रणी दर्शन है। मीमांसक धर्म का मुख्य उद्देश्य स्वर्ग-प्राप्ति रहा। आत्मा या मोक्ष की अवधारणा का

विकास बाद में हुआ है। मीमांसक दर्शन ने मोक्ष को स्वीकार किया, उसे जीवन का परम लक्ष्य माना, किन्तु उसका मुख्य उद्देश्य स्वर्ग की प्राप्ति का रहा। प्रश्न था—स्वर्ग की प्राप्ति कैसे हो ? नरक कैसे टले ? कहा गया—स्वर्ग के लिए यज्ञ करना चाहिए।

प्रवर्तक धर्म में कर्म की प्रधानता होती है। निवर्तक धर्म में ज्ञान की प्रधानता होती है। मीमांसा दर्शन के प्रमुख आचार्य प्रभाकर कर्मवादी हैं। उनकी दृष्टि में कर्म प्रधान है, ज्ञान गौण। वे ज्ञान को स्वतन्त्र नहीं मानते। आचार्य शंकर ज्ञानवादी हैं। उनकी दृष्टि में ज्ञान का मूल्य अधिक है, कर्म का मूल्य नगण्य है। कर्म ज्ञान का ही अंग है। कुमारिल भट्ट ज्ञान और कर्म—दोनों को स्वीकार करते हैं। मीमांसा के इन तीन आचार्यों की तीन प्रकार की चिन्तनधाराएं रही हैं। यज्ञ आदि का सबसे ज्यादा समर्थन आचार्य प्रभाकर ने किया। मीमांसा के पूर्वपक्ष में यज्ञ का समर्थन और विषयन है, इसलिए मीमांसा का पूर्वपक्ष कर्मकाण्ड कहलाता है। उत्तरपक्ष में यज्ञ आदि का समर्थन नहीं किया गया। वह ज्ञानकाण्ड कहलाता है।

**यज्ञ क्यों ?**

एक मत रहा—यज्ञ करने से आदमी स्वर्ग में चला जाता है। इस मत का समर्थन करने वाले व्यक्तियों का यज्ञ परम धर्म बन गया। स्थान-स्थान पर यज्ञ के बड़े-बड़े समारोह होने लगे। आयोजन में हजारों व्यक्ति सम्मिलित होते। यज्ञ की परम्परा विस्तार पाती चली गई। जब भगवान् महावीर को कैवल्य उपलब्ध हुआ तब इन्द्रभूति गौतम आदि ग्यारह दिग्गज विद्वान् यज्ञ के निमित्त ही आ रहे थे। एक ही यज्ञ के लिए ग्यारह महापंडित आए। प्रत्येक पंडित के पांच सौ शिष्य थे। उस समय हजारों लोग उस यज्ञ में उपस्थित थे। भगवान् महावीर का योग मिला, ग्यारह पंडितों की दिशा बदल गई। वे यज्ञ कर्म से निवृत्ति पा भगवान् महावीर के शिष्य बन गए।

**श्रेष्ठ याज्ञिक कौन ?**

आस्तिकता का एक लक्षण है, इष्टसिद्धि और अनिष्ट-निवारण की अभीप्सा। आदमी पाप से बचना चाहता है। वह उसके लिए विभिन्न अनुष्ठान करता है। मुनि हरिकेशबल ने याज्ञिक ब्राह्मणों से कहा—अग्नि का समारम्भ करते हुए जल शुद्धि की मांग कर रहे हो ? तुम जिस शुद्धि की बाहर से मांग कर रहे हो, उसे कुशल लोग सुदृष्ट-सम्यग् दर्शन नहीं कहते।

*किं माहणा जोइ समारभन्ता, उदएण सोहिं बहिया विमग्गहा ?*

*जं मग्गहा बाहिरियं विसोहिं, न तं मुदिट्ठं कुसत्ता वयन्ति ॥*

मुनि ने कहा—तुम अग्नि का समारम्भ कर प्राणों और भूतों की हिंसा करते

हुए बार बार पाप करते हो। जहां अग्नि का समारम्भ है, वहां हिंसा है। हिंसा के साथ पाप कर्म का बन्धन जुड़ा हुआ है।

ब्राह्मण ने पूछा--हे भिक्षो ! हम कैसे प्रवृत्त हों ? यज्ञ कैसे करें ? जिससे पाप कर्मों का नाश कर सकें ? आप हमें बताये--कुशल पुरुषों ने सुइष्ट--श्रेष्ठ यज्ञ का विधान किस प्रकार किया है?

*कहं चरे ? भिक्षु ! वयं जयामो ? पावाइ कम्माइ पणोल्लयामो ?*

*अक्खाहि णे संजय ? जक्खपूइया ! कहं मुजट्ठं कुसला वयन्ति ?*

मुनि हरिकेशबल ने इस प्रश्न का बहुत मार्मिक उत्तर देते हुए कहा--जो पांच संवरो से संसुवृत होता है, जो असंयम जीवन की इच्छा नहीं करता, जो काय का व्युत्सर्ग करता है, जो शुचि है और जो देह का त्याग करता है, वह महाजयी श्रेष्ठ यज्ञ करता है।

*सुसंवुडो पंचहि संवरेहिं इह जीवियं अणवकंखमाणो।*

*वोसट्ठकाओ सुइचत्तदेहो, महाजयं जयई जन्नासिट्ठं॥*

**यज्ञ और तीर्थ स्थान : आध्यात्मिक दृष्टि**

ब्राह्मण सोमदेव की जिज्ञासा का स्रोत फूट पड़ा। उसने पूछा--भिक्षो ! तुम्हारी ज्योति कौन सी है ?

मुनि बोले--तप है ज्योति।

तुम्हारा ज्योति-स्थान (अग्नि स्थान) कौन सा है ?

जीव ज्योति-स्थान है।

तुम्हारे घी डालने वाली करछियां कौन सी हैं ?

योग : मन, वचन और शरीर की सत् प्रवृत्ति घी डालने की करछियां हैं।

तुम्हारे अग्नि जलाने के कण्डे कौन से हैं ?

शरीर अग्नि जलाने के कण्डे हैं।

ईर्ष्य कौन सा है ?

कर्म है ईर्ष्य

और शांति पाठ ... ?

संयम।

तुम किस होम से ज्योति को प्रीणित करते हो ?

ऋषि प्रशस्त अहिंसक होम से।

तुम्हारा जलाशय कौन सा है ?



अकलुषित एवं आत्मा का प्रशस्त लेश्या वाला धर्म मेरा जलाशय है।

शांतितीर्थ कौन सा है ? और आप कहां नहा कर कर्मरज धोते हैं ?

ब्रह्मचर्य है शान्तितीर्थ, जहां नहाकर मैं विमल, विशुद्ध और सुशीतल होकर कर्मरज का त्याग करता हूं।

### वर्तमान शैली

पाप कर्मों का नाश कैसे करें ? अधोगति से कैसे बचें ? अनिष्ट से कैसे बचें ? विमल, विशुद्ध और पवित्र कैसे बनें ? ये प्रश्न आस्तिकता के सूचक प्रश्न रहे हैं। इन सभी प्रश्नों का जैन दृष्टि से समाधान दिया गया। हम किसी भी प्रश्न का खंडन न करें। खंडन करने से कोई प्रश्न उत्तरित नहीं होता। खंडन करना आज की शैली नहीं है। खंडन न करना महावीर की शैली रही है। इस संदर्भ में एक युग की चर्चा करना अप्रासंगिक नहीं होगा। जैन परम्परा का मध्य युग—पंद्रह सौ वर्षों का समय जैन परम्परा के अनुकूल नहीं रहा। उसमें कुछ दूसरा प्रभाव आ गया। यदि जैन दार्शनिक महावीर के पदचिह्नों पर चलते तो जैन दार्शनिक ग्रंथों में दूसरे दर्शनों का खण्डन नहीं मिलता। जो दर्शन अनेकान्तवाद को स्वीकार करता है, नयवाद को शिरोमणि मानता है, वह दर्शन दूसरे दर्शनों का खण्डन करे, यह बात समझ से परे है किन्तु ऐसा हुआ है, इस सचाई को नकारा नहीं जा सकता। अनेक जैन आचार्यों ने खंडन का मार्ग अपनाया। किन्तु समय-समय पर अनेक आचार्यों ने महावीर का अनुगमन किया, समन्वय की नीति का प्रयोग किया।

### समन्वय ग्रन्थ : शास्त्र वार्ता-समुच्चय

आचार्य हरिभद्र सूरि ने एक ग्रन्थ लिखा—शास्त्रवार्ता-समुच्चय। वह बहुत अद्भुत ग्रन्थ है। उस ग्रन्थ में सभी दर्शनों का स्पर्श है किन्तु खण्डन किसी भी दर्शन का नहीं है। उसमें सभी दर्शनों का नय दृष्टि से समर्थन है। आचार्य हरिभद्र ने शास्त्रवार्ता-समुच्चय में ईश्वरकर्तृत्ववाद का भी समर्थन किया है। नय दृष्टि से विचार करें तो कोई भी विचार असत्य नहीं हो सकता। जितने वचन के प्रकार हैं, बोलने के प्रकार हैं, सोचने के प्रकार हैं, वे सब नय हैं। नय का खंडन कैसे किया जा सकता है ? आचार्य समन्तभद्र, सिद्धसेन आदि आचार्यों ने संग्रह और व्यवहार—इन दो दृष्टियों से सांख्य, वेदान्त, वैशेषिक आदि दर्शनों का समाहार किया है। एक जैन आचार्य ने कितना मार्मिक लिखा है—जैसे समुद्र में सारी नदियां गिरती हैं वैसे ही सारे विचार अनेकान्त के महासमुद्र में समाहित हो जाते हैं। नदियों में समुद्र नहीं है किन्तु समुद्र में सारी नदियां मिल जाती हैं। एकान्त नयों में अनेकान्त नहीं है किन्तु अनेकान्त में सारे नय समाहित हो जाते हैं।

कहा गया—हम बौद्ध दर्शन का खण्डन कैसे करें, वह तो हमारा ऋजुसूत्र नय का अर्धप्राय है। हम वेदान्त का खण्डन कैसे करें, वह संग्रह नय का मंतव्य है।

### परम्परा : नया संदर्भ

यह समाहार और समन्वय का दृष्टिकोण सचमुच महावीर का दृष्टिकोण है। महावीर ने यज्ञों का खंडन नहीं किया, जातिवाद का खण्डन नहीं किया, तीर्थस्थान का भी खण्डन नहीं किया। महावीर ने कहा—तुम जो मान रहे हो, उसे निरपेक्ष मत मानो, सापेक्ष मानो। तुम अपनी दृष्टि अहिंसा-सापेक्ष बना लो, तुम्हारा कार्य पवित्र बन जाएगा। हिंसा के स्थान पर अहिंसा की बात जोड़ दो। महावीर ने अपने इस दृष्टिकोण से यज्ञ आदि का आध्यात्मिकीकरण कर दिया। महावीर ने प्रत्येक प्रथा को एक नया रूप दिया, एक नया आयाम दिया। जो व्यक्ति नया विकल्प देना नहीं जानता, वह कभी क्रान्तिकारी नहीं हो सकता, समाज-सुधारक नहीं हो सकता। प्रत्येक रूढ़ि को नया रूप दिया जा सकता है। रूढ़ि एक परम्परा होती है। परम्परा खराब ही नहीं होती। उसका नया रूप हो जाए तो वह ग्राह्य भी बन सकती है। भर्तृहरि ने वैराग्य शतक में विवाह के सारे नेकचारों का नवीनीकरण कर दिया। विवाह के अवसर पर सास दामाद का नाक पकड़ती है। आचार्य भिक्षु ने इस प्रथा की आध्यात्मिक व्याख्या प्रस्तुत कर दी। उन्होंने कहा—नाक पकड़ना खराब बात नहीं है। सास नाक पकड़कर कह रही है—न जाने कितने जन्मों से तू काम-भोग और वासना के चक्र में फंसा हुआ है, संसार में भ्रमण करता रहा है। अभी भी तुझे शर्म और लज्जा नहीं आ रही है। तू फिर उसी संसार-चक्र में जा रहा है। तुझे शर्म आनी चाहिए।

सहज प्रचलित परम्परा का एक नया अर्थ प्रस्तुत हो गया।

### मूल्यांकन की दृष्टि

आज हम लोग वैज्ञानिक युग में जी रहे हैं। इस युग में भी दर्शन प्रतिष्ठित है, वह अप्रतिष्ठित नहीं है। आज दर्शन के भी नये-नये ग्रंथ लिखे जा रहे हैं। आज तक सारे दर्शनों का जो मूल्यांकन हुआ है, वह वेदान्त के अनुसार हुआ है। दार्शनिक जगत् में मूल्यांकन की परम्परा रही है। जैन दर्शन, वैशेषिक दर्शन—इन सबके सिद्धान्त प्रस्तुत करने के बाद लेखक उनका मूल्यांकन करते हैं। जैन दर्शन की कौन सी मान्यता सम्यक् है और कौन सी सम्यक् नहीं, लेखक इसका मूल्यांकन करता है पर मूल्यांकन की कसौटी का आधार प्रायः वेदान्त रहा है। विद्वानों ने मूल्यांकन किया वेदान्त को मूल मानकर। यदि कोई विद्वान् सारे दर्शनों का अनेकान्त के आधार पर मूल्यांकन करता तो दर्शन को एक नया आयाम प्राप्त होता।

### सामयिक प्रस्ताव

बहुत वर्ष पहले आचार्यवर का चातुर्मास उदयपुर में था। उस समय डा. कमल चंद सौगानी ने एक पत्र लिखा, उसमें दो मांगें प्रस्तुत की। उनका एक प्रस्ताव था-संस्कृत साहित्य का जो इतिहास लिखा गया है, उसमें जैनों का प्राधान्य नहीं रहा है। सारा संस्कृत काव्य मुख्यतः अन्य परम्परा का या लौकिक परम्परा का रहा है। जैन संस्कृत काव्यों का स्थान बहुत गौण रहा है इसलिए संस्कृत साहित्य का इतिहास किसी जैन विद्वान् द्वारा लिखा जाना चाहिए। उनका अनुरोध मेरे लिए था, आज भी वह पत्र हमारे पास सुरक्षित है। उनकी भावना सुरक्षित है किन्तु कार्य नहीं हो सका। योगक्षेम वर्ष में एक बहुत अच्छा सुझाव आया--जैन आचार्य अनेकान्तवाद को मानते हुए भी दूसरे-दूसरे दर्शनों का खण्डन करते रहे। इस योगक्षेम वर्ष में एक ऐसा ग्रन्थ तैयार होना चाहिए, जिसमें सब दर्शनों का स्पर्श हो, चर्चा हो पर खण्डन किसी का न हो। सब दर्शनों का नय दृष्टि से समन्वय साधा जाए। ऐसा कोई ग्रन्थ प्रस्तुत होना चाहिए, जिसमें सबका समन्वय हो। कौन सा विचार किस नय से प्रतिपादित है और वह किस नय से हमें मान्य है ? सारे विचारों के समन्वय से जैन दर्शन का एक नया ग्रन्थ बन जाए और वह सबके लिए ग्राह्य हो जाए, यह अपेक्षित है।

### सापेक्षता का दृष्टिकोण

'यदि सब विचारों को अलग-अलग कर दिया जाए, उन्हें निरपेक्ष बना दिया जाए तो सब विचार मिथ्या हो जाएंगे। यदि उन सारे विचारों को मिला दिया जाए, सापेक्ष बना दिया जाए वे सारे विचार सम्यक् बन जाएंगे।' आचार्य सिद्धसेन के इस दृष्टिकोण का अर्थ निकाला गया--मिथ्यादृष्टीनां समूहो जैनदर्शनम्--सारे मिथ्या दृष्टिकोणों के समूह का नाम है जैन दर्शन। प्रश्न प्रस्तुत हुआ--अनेक बुराइयां हैं, उन सारी बुराइयों को मिला देने से एक अच्छाई कैसे बन जाएगी ? सारे गलत दृष्टिकोणों को मिला देने से जैन दर्शन कैसे बन जाएगा ? यह बात बड़ी अटपटी लगती है किन्तु इसमें सचाई है। हम सब विचारों को मिलाएं या नहीं, किन्तु उन्हें स्वीकार कर लें।

मध्ययुग में जो अस्वीकार करने की दृष्टि का विकास हुआ, उससे खण्डन की परम्परा को बल मिला। वस्तुतः कोई दृष्टिकोण गलत नहीं है। संग्रह नय कहता है--सब एक हैं। वेदान्त में कहा गया--ब्रह्म एक है। अन्तर कहां रहा ? ब्रह्म एक है किन्तु उससे आगे जब विचार का दरवाजा बंद होता है तब अन्तर प्रस्तुत हो जाता है। विचार का दरवाजा बाहर से बंद न करें, दूसरे के विचारों को भी भीतर आने दें।

दूसरा जो कहता है, वह भी सचाई है। किसी भी विचार के प्रति निरपेक्ष न बनें, सापेक्ष बने रहें। जब सापेक्षता का सूत्र पकड़ में आता है, खण्डन या अस्वीकार का स्वर मंद हो जाता है। यदि पूछा जाए—क्या यह हाथ शरीर है ? कहा जाएगा—हां, यह हाथ शरीर है। पुनः प्रश्न होगा—हाथ शरीर है तो भुजा क्या है ? क्या वह शरीर नहीं है ? समाधान दिया गया—शरीर है पर यहीं रुको मत और आगे बढ़ो। शरीर नहीं है यहां पर भी रुको मत और आगे बढ़ो। आगे बढ़ेंगे तो हमारा कथन होगा—सारे अंग एक एक अवयव हैं, सबको मिलाएं, एक अवयवी बन जाएगा। मोटर का एक पहिया मोटर है और मोटर नहीं भी है। अगर एक पहिए को मोटर मान कर उसे चलाएं, उस पर १०-२० आदमी बैठ जाएं तो फलित क्या होगा ? अगर वह मोटर नहीं है, ऐसा मानें और पहिए को निकाल कर फिर मोटर चलाएं तो क्या होगा ? क्या मोटर चलेगी ?

### वैचारिक अनाग्रह का सूत्र

सबको एक साथ देखें और कभी-कभी जरूरत हो तो अलग-अलग देखें। अगर हाथ में दर्द है तो हाथ का व्यायाम करें, हाथ की मालिश करें। हाथ को भी अलग देखें, किन्तु शरीर से काटकर नहीं। महावीर का यह दृष्टिकोण हृदयंगम हो जाए तो वैचारिक आग्रह को अवकाश ही न मिले। अगर एक हाथ को शरीर मान लिया जाए तो भी मिथ्या दृष्टिकोण हो जाएगा। किन्तु इन सारे मिथ्या दृष्टिकोणों को मिला दिया जाए, सापेक्ष बना दिया जाए तो सम्यक् दर्शन--अनेकान्त बन जाएगा। आज इस बात की जरूरत है कि हम अनेकान्त दृष्टि का उपयोग कर पायें तो हमारा भाषा का प्रकार बदल जाएगा, बोलने की शैली बदल जाएगी, दूसरों के साथ व्यवहार करने की शैली बदल जाएगी। हमारा स्वर यह नहीं रहेगा--

*तुम आओ डग एक तो, हम आएँ डग अट्ट।*

*तुम हमसे करड़े रहो तो हम हैं करड़े लट्ट॥*

### अनेकांत की विशेषता

हमारे व्यवहार और वाणी में लचीलापन आ जाएगा। अनेकान्त की सबसे बड़ी विशेषता है सोच को लचीला बना देना। इस बात की आज बहुत अपेक्षा है, यह बहुत बड़ा काम है। आज एक करणीय कार्य है--जैन दर्शन के जितने ग्रन्थ पन्द्रहवीं शताब्दी में आचार्य सिद्धसेन से लेकर और यशोविजयजी तक लिखे गए हैं, उनमें कहां दूसरे दर्शनों का खण्डन किया गया है, उसे खोजा जाए, उस पर पुनर्विचार किया जाए, उसका पुनर्मूल्यांकन किया जाए। यह भी विमर्शनीय है कि जो खण्डन किया गया, क्या

वह आवश्यक था ? अमुक नय की दृष्टि से विचार करते तो खण्डन करना कोई जरूरी नहीं था। यह टिप्पणी की जा सकती है कि यह विचार एकान्तदृष्टि से, निरपेक्षदृष्टि से माना जाए तो मिथ्या है। अगर इसे सापेक्षता से स्वीकारा जाए तो बिल्कुल सही है। खंडन के पुनर्वीक्षण में इतनी टिप्पणी ही पर्याप्त हो सकती है।

### महावीर का दृष्टिकोण

आज पुनर्मूल्यांकन की जरूरत है। भगवान् महावीर ने यज्ञ के संदर्भ में, तीर्थ स्थान के संदर्भ में जिस दृष्टि का प्रयोग किया, वह अनेकान्त का निदर्शन है। भगवान् पार्श्वनाथ के शिष्य महावीर के पास आए। महावीर ने उन पर अपना विचार नहीं थोपा। महावीर उनसे पूछते-बोलते, पुरुषादानीय पार्श्व ने क्या कहा है ? वे उन्हें उनके मंतव्य से ही अभिभूत कर देते। वैदिक विद्वान् आए, इन्द्रभूति गौतम आए। भगवान् ने कहा-तुम कहते हो कि आत्मा नहीं है, लेकिन तुम्हारे वेदों में ऐसा माना गया है। इसका जो निष्कर्ष निकलता है, वह यह है कि हमारा कहीं आग्रह न हो। जिस व्यक्ति में जितना राग, द्वेष प्रबल होगा, वह व्यक्ति उतना ही एकांतवादी होगा, एकान्त का आग्रह करेगा।

राग, द्वेष और एकान्तवादिता को कभी अलग नहीं किया जा सकता। वीतराग का अर्थ है अनेकान्त की दिशा में प्रस्थान। जो व्यक्ति जितना राग-द्वेष कम करेगा, अपने आप उसका सम्यक् दर्शन जागेगा, अनेकांत की दृष्टि प्रबल होगी। महावीर ने अनेकान्त के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। वीतरागता, समता और अनेकान्त तीनों एक बिन्दु पर पहुंच जाते हैं।

महावीर की साधना-पद्धति का एक प्रतिनिधि शब्द है वीतरागता। जैनधर्म में आदर्श है वीतराग। उसका दर्शन है वीतरागता की साधना का। जैन दर्शन में आस्था रखने वाले व्यक्ति का लक्ष्य है वीतराग होना। चरित्र का अन्तिम रूप है वीतरागता। वीतरागता का पहला बिन्दु है समता और उसका अन्तिम बिन्दु है समता।

समता से बड़ा कोई चरित्र नहीं है, आचरण नहीं है। आचार्य सोमदेव ने लिखा-*समता परमं आचरणं*। समता सब आचरणों में परम आचरण है। वीतरागता और समता दो नहीं हैं। वीतराग हुए बिना समता के बिन्दु पर कभी पहुंचा नहीं जा सकता। जहां समता है वहां एकान्त आग्रह नहीं होगा, अनेकान्त होगा।

### प्रतिज्ञोत के पथ

भगवान् महावीर के समय में आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक तीनों प्रकार की समस्याएं थीं। अनेक दर्शनों ने इन पर विचार-मंथन प्रस्तुत किया। आधिदैविक

और आधिभौतिक स्थितियों से ऊपर उटकर उनका आध्यात्मिकीकरण कर सारी समस्याओं का समाधान कर देना महावीर जैसे समर्थ व्यक्तित्व के लिए ही संभव था। महावीर सामाजिक के प्रवर्तक थे, समता के प्रवक्ता थे इसलिए यह बात संभव बन सकी। जातिवाद, यज्ञवाद और तीर्थस्थान--ये तीन उस समय के जटिल प्रश्न थे। हजारों लोग इन बातों को मानकर चल रहे थे। उस स्थिति में एक नया दर्शन और नया चिंतन देना सचमुच साहस का काम था। बहती धारा के साथ चलना बहुत आसान है। प्रतिस्रोत में चलने का साहस किसी महापुरुष में ही होता है। भगवान् महावीर में ऐसा साहस था। उन्होंने प्रचलित परम्परा के प्रतिकूल सिद्धांत की प्रस्थापना की। उनके सामने दीतरागता का दृष्टिकोण था, अनेकान्त दर्शन था इसलिए आधिदैविक और आधिभौतिक प्रश्नों का आध्यात्मिकीकरण सहज संभव बन गया। यज्ञ और तीर्थस्थान के प्रश्न का आध्यात्मिकीकरण उसका एक निदर्शन है।

## दो भाइयों का मिलन

### महत्वपूर्ण प्रश्न

महाभारत का एक प्रसिद्ध पद्य है—

*जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः, जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः।*

मैं धर्म को जानता हूँ पर उसमें मेरी प्रवृत्ति नहीं है। मैं अधर्म को जानता हूँ पर उससे निवृत्त नहीं हो पा रहा हूँ।

यह प्रश्न बहुत बार चर्चित हुआ है—धर्म को जानते हुए भी उसमें प्रवृत्त क्यों नहीं हो पाता हूँ ? अधर्म को जानते हुए भी उससे निवृत्त क्यों नहीं हो पाता हूँ ?

महाभारतकार ने एक प्रश्न उपस्थित कर दिया और उसका सुन्दर समाधान दिया गया है उत्तराध्ययन सूत्र में। उत्तराध्ययन सूत्र का तेरहवां अध्याय है—चित्त-संभूतीय। चित्र महान् निर्ग्रथ हैं और संभूति हैं चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त। मुनि और राजा के बीच बहुत लंबा संवाद चला और उस संवाद में यह प्रश्न उत्तरित हुआ है।  
**मुनि का संबोधन**

मुनि चित्र ने कहा—राजन् ! जो इस अशाश्वत जीवन में प्रचुर शुभ का अनुष्ठान नहीं करता, वह मृत्यु के मुख में जाने पर पश्चात्ताप का अनुभव करता है और धर्म की आराधना न होने के कारण परलोक में भी पश्चात्ताप करता है। इसलिए तुम लौकिक सुखों में मत फँसो। इन्हें छोड़कर लोकोत्तर सुख की उपलब्धि के लिए प्रस्थान करो।

*इह जीविए राय ! असासयम्भि, धणियं तु पुण्णाइं अकुव्वमाणो।*

*से सोयई मच्चुमुहोवणीए, धम्मं अकाळण परसि लोए।।*

चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त बोला—मुनिप्रवर ! आप जो कह रहे हैं, वह विलकुल यथार्थ है। मैं भी यह जानता हूँ—ये काम-भोग आसक्तिजनक होते हैं किन्तु मुनिवर ! ये भी हमारे जैसे व्यक्तियों के लिए दुर्जय हैं।

### फल निदान का

काम-भोगों की दुर्जयता का कारण बताते हुए राजा ने कहा—मुनिप्रवर ! हस्तिनापुर

में चक्रवर्ती सनत्कुमार को देख, काम-भोगों में आसक्त होकर मैंने अशुभ निदान-भोग का संकल्प कर डाला। उस पूर्वजन्म के निदान का मैंने प्रतिक्रमण और प्रायश्चित्त नहीं किया। उसी का यह फल है कि मैं धर्म को जानता हुआ भी काम-भोगों में मूच्छित हो रहा हूँ।

अहपि जाणामि जहेह साहू, जं मे तुमं साहसि वक्कमेयं।  
 भोगा इमे संगकरा हवन्ति, जे दुज्जया अज्जो अम्हारिसेहिं॥  
 हत्थिण पुरम्मि चित्तादट्ठूणं नरवइं महिड्ढियं।  
 कामभोगेसु गिद्धेणं, नियाणमसुहं कडं॥  
 तस्स मे अपडिकंतस्स, इमं एयारिसं फलं।  
 जाणमाणो वि जं धम्मं, कामभोगेसु मुच्छिओ॥

चक्रवर्ती ने कहा—मैं अपने ही पूर्वकृत कर्म के कारण, स्वयं द्वारा किए गए निदान के कारण आसक्ति में डूबा हुआ हूँ। धर्म को जानता हुआ भी मैं उसमें प्रवृत्त नहीं हो पा रहा हूँ।

**प्रश्न कहीं : उत्तर कहीं**

महाभारत और उत्तराध्ययन के इस प्रकरण में कितना साम्य है! हम केवल प्रश्न को ही न छुएं, समाधान को भी छुएं। यह दुनिया बड़ी विचित्र है। प्रश्न कहीं पैदा हुआ है और उत्तर कहीं दिया गया है। प्रश्न पूछा जा सकता है बम्बई में और उत्तर मिल सकता है जैन विश्व भारती में। सीमेंट कहीं बनती है, ईंटें कहीं बनती हैं, चूना कहीं बनता है, इन सबसे मकान और कहीं बन जाता है। एक ग्रंथकार ने एक समस्या प्रस्तुत कर दी, एक विचार प्रस्तुत कर दिया, व्यक्ति के मस्तिष्क को झकझोर दिया। यह कोई जरूरी नहीं है कि जो प्रश्न खड़ा करे, वही समाधान भी दे। दूसरा ग्रंथकार समाधान दे देता है, प्रश्न खड़ा नहीं करता। अध्येता के लिए यह जरूरी है कि वह एक ग्रंथ में प्रश्न खोजे और दूसरे ग्रंथ में समाधान खोजे। महाभारत के प्रश्न को उत्तराध्ययन में बहुत सुन्दर समाधान मिला और वह तब मिला जब दो भाइयों का मिलन हुआ।

**विकास का पहला चरण**

मिलन में से बहुत सारी बातें निकलती हैं। मिलन और सम्मेलन व्यर्थ नहीं होता। सफलता या विकास का पहला आधार है मिलन या सम्मेलन। जब मिलते ही नहीं है तब विकास की बात ही समाप्त हो जाती है। विकास का पहला चरण है मिलन। दो आंखें मिलती हैं, एक नया संबंध पनपता है। अपनी ही दो आंखें मिलती



हैं, ध्यान की मुद्रा बन जाती है। निमेष, अनिमेष—ये शब्द मिलन तथा उससे जुड़ी विभिन्न मुद्राओं की सूचना देते हैं। मिलन बहुत काम का होता है। उत्तराध्ययन सूत्र में दो भाइयों के मिलन का जो प्रसंग है, वह बहुत ही रोमांचक है। दो भाई मिले हैं और बहुत ही विचित्र ढंग से मिले हैं।

### नट प्रमुख की प्रार्थना

चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त अपनी राजसभा में बैठा था। एक नटमण्डली आई। वह नटविद्या में बहुत दक्ष थी। प्राचीन युग में बहुत नाटक खेले जाते थे। नाटककारों का अभिनय कौशल जनता को बांधे रखता था। आज भी नाटक की परम्परा चल रही है। यह सिनेमा का युग है फिर भी नाटक का मूल्य बना हुआ है। आज नाटक का पुनर्जन्म हो रहा है, उसका मूल्य बढ़ रहा है। नाटक में जो सजीवता आती है, वह कभी कभी व्यक्ति के चेतन मन को अतिक्रान्त कर अवचेतन मन को छू लेती है।

नटप्रमुख ने प्रार्थना की—राजन् ! हम आपको एवं आपकी प्रजा को प्रमुदित करने वाले नाटकों का प्रदर्शन करना चाहते हैं। राजा ने नट प्रमुख के प्रस्ताव को स्वीकृति दे दी। यह घोषणा हो गई—नाटक दिखाया जाएगा और चक्रवर्ती के सामने दिखाया जाएगा। विशाल मैदान में व्यवस्था की गई। रंगमंच तैयार हो गया। निश्चित समय पर नट मंडली प्रस्तुत हो गई। चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त भी नाटक देखने के लिए पधारे। हजारों-हजारों लोगों की भीड़ उमड़ पड़ी। विशाल मैदान छोटा लगने लगा।

### मधुकरी गीत

प्रदर्शन था मधुकरी गीत नामक नाट्य-विधि का। बहुत विचित्र होता है यह नाटक। रायपसेणीय सूत्र में नाटक की अनेक विधियों का वर्णन है, नाटक के अनेक प्रकारों का विवेचन है। उनमें प्रमुख नाट्य विधि है मधुकरी गीत। जैसे फूलों पर भंवरा आता है, गुंजारव करता है। कभी किसी फूल पर बैठता है और कभी किसी फूल पर बैठता है। कभी किसी का रस लेता है और कभी किसी का रस लेता है। एक फूल का रस लिया, आकाश में उड़ गया। दूसरे फूल का रस लिया, आकाश में उड़ गया। वैसे ही मधुकरी गीत नाट्य में फूलमालाएं बिछा दी जाती हैं। नट कभी किसी फूलमाला का स्पर्श करता है और कभी किसी अन्य फूलमाला का। एक फूल का स्पर्श करता है और भंवरे की तरह उड़ जाता है। पुनः आता है, दूसरे फूल का स्पर्श करता है और फिर उड़ जाता है। एक ओर गायन चलता है, वाद्ययंत्रों से विभिन्न प्रकार की नाट्य ध्वनियां निकलती हैं, दूसरी ओर व्यक्ति फूलों के स्पर्श का करतब दिखाता चला जाता है।

## मन का विकल्प

मधुकरी गीत नाट्य प्रारम्भ हुआ। एक युवती ने राजा के सामने फूलमालाएं बिछा दीं। नट आता है विभिन्न अदाओं के साथ। फूलमाला का स्पर्श करता है और गायब हो जाता है। मधुर गीत और वाद्ययंत्र की मधुर धुन से वातावरण मधुर बनता जा रहा था। चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त मधुकरी गीत में डूबता चला गया। वह बहुत गहरे में उतर गया। उसके मन में विकल्प उठा—मैंने ऐसा नाटक कहीं देखा है ?

यह जाति स्मृति ज्ञान का पहला चरण है—ऐसा मैंने कहीं देखा है ? ऐसा मैंने कहां देखा है ? चक्रवर्ती इस प्रश्न की गहराई में डूबने लगा। वह चेतन मन की सीमा से अवचेतन मन की सीमा में चला गया। चेतन मन का दरवाजा बंद हो गया। जब चेतन मन का दरवाजा बंद होता है, अवचेतन मन का दरवाजा खुल जाता है। जब व्यक्ति अवचेतन मन के स्तर पर पहुंचता है, जाति स्मृति की भूमिका बन जाती है। अवचेतन की सीमा में पहुंचते ही चक्रवर्ती सिंहासन पर बैठा-बैठा ही मूर्च्छित हो गया। वह मूर्च्छित होकर नीचे गिरा पड़ा। उसे अपने शरीर का कोई ध्यान नहीं रहा। राजा को इस अवस्था में देख चारों ओर सन्नाटा छा गया। सारे सभासद और विशिष्ट व्यक्ति राजा के पास पहुंचे। चिकित्सक को बुलाने के लिए राज्यकर्मचारी दौड़ पड़े। मंत्री राजा पर पंखा झलाने लगा।

## पूर्व जन्म की स्मृति

चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त भीतर की गहराइयों में डूब रहा था। लोग इस तथ्य को कैसे जान पाते ? वे यही सोच रहे थे—राजा मूर्च्छित हो गया है, बीमार हो गया है। वस्तुतः यह कोई बीमारी नहीं थी। यह अचेतन जगत् में प्रवेश था। वह भीतर में इतना चला गया कि बाहर की कोई सुध-बुध नहीं रही। बाहरी चेतना समाप्त हो गई। उपचार चला, शीतल दवा के स्पर्श से राजा पुनः सचेत हो गया।

चेतन जगत् में आते ही वह पुनः चिन्तन में खो गया। उसके मन में चिन्तन उभरा—मैंने कहीं देखा है ? कहां देखा है इसे ? इस प्रश्न की गहराई में जाते जाते चेतना का द्वार खुल गया, वह प्रकाश से भर उठा। अतीत का एक एक पृष्ठ स्मृति पटल पर उतरने लगा, उसे याद आया—मैंने ऐसा नाटक सौधर्म देवलोक में पद्मगुल्फ नामक विमान में देखा है। इस मधुकरी गीत नाटक को बहुत बार देखा है और यह वही नाटक है।

## भाई कहां है ?

जाति स्मृति—पूर्व जन्म की स्मृति हो गई। राजा को बहुत आह्लाद मिला—ओह!

कितना सुन्दर था सौधर्म कल्प देवलोक और कितना सुन्दर था पद्मगुल्म विमान ! कितनी ऋद्धि थी, कितनी समृद्धि और कितना वैभव था ! उसके सामने चक्रवर्ती का वैभव कुछ भी नहीं है। अपने अतीत के वैभव को देखकर चक्रवर्ती पुलकित हो उठा किन्तु इस पुलकन के साथ-साथ एक वेदना भी उभर आई। उसने सोचा--अरे ! मेरा माई कहां गया ? एक नया प्रश्न खड़ा हो गया। मेरा भाई कहां है ? मैं अकेला हो गया। अपने भाई से बिछुड़ गया। मन में एक अकुलाहट और वेदना का भाव प्रबल हो गया। इसकी पीड़ा फूट पड़ी। वह बार-बार इस अर्द्ध-श्लोक को दोहराने लगा--

*आस्व दासौ मृगौ हंसौ, मातंगावमरौ तथा ।*

### अलग अलग दुनिया

मंत्री वरधनु ने देखा--सम्राट् को क्या हो गया ? पहले तो मूर्च्छित हुए थे। अब लगता है--दिमाग में कोई अस्त-व्यस्तता आ गई है। बहुत बार ऐसा होता है--जब कोई भीतर का दरवाजा खुलता है, आन्तरिक अनुभूतियां जागती हैं--उस समय आदमी जो चेष्टाएं करता है, जो सोचता और बोलता है, तब दूसरों को ऐसा लगता है--व्यक्ति पागल हो गया है। इस प्रकार की घटनाएं बहुत बार घटती हैं। ध्यान की गहराई में जाने वाला व्यक्ति भी ऐसी स्थिति में चला जाता है। देखने वाले लोग सोचते हैं--अमुक व्यक्ति को क्या हो गया ? वे घबरा जाते हैं।

अलग अलग दुनिया है। एक समझदारों की दुनिया है। वहां समझदारी यह है--जो बनी-बनाई सीमा-रेखा है, उसमें रहे, वह समझदार है। जो उससे थोड़ा इधर-उधर चला जाए, वह पागल है। एक दूसरी दुनिया है, जिसमें जीने वाले लोग सोचते हैं--ये सब पागल हैं, जो मूर्च्छा से ग्रस्त हैं, विषय-भोगों में मूढ़ बने हुए है।

### मन्त्री की चिन्ता

ऐसा ही कुछ हो रहा था चक्रवर्ती की सभा में। चक्रवर्ती जनता को पागल समझ रहा था और जनता चक्रवर्ती को पागल समझ रही थी। यह एक विचित्र स्थिति थी। मंत्री वरधनु ने सोचा--चक्रवर्ती को क्या हो गया है ? कहीं पगला तो नहीं गया है ? बार-बार अर्थहीन बात बोलता जा रहा है। कुछ भी अर्थ समझ में नहीं आ रहा है। अर्थ तो कुछ समझ में आना चाहिए। क्या कह रहे हैं ? कुछ भी पता नहीं चल रहा है। वरधनु मंत्री ही नहीं था, राजा का मित्र भी था। उसने कहा--राजन् ! आप क्या कर रहे हैं ? बार-बार इस प्रकार की असंबद्ध बातें करना अच्छा नहीं लगता। सामने नाटक हो रहा है, हजारों संभ्रांत नागरिक खड़े हैं। अनेक देशों के राजा यहां आए हुए हैं, उन पर क्या असर होगा ?

## राजा का घोषणा

चक्रवर्ती बोला—क्या अच्छा नहीं लगता ? तुम जाओ और यह घोषणा कर दो—जो इस श्लोक को पूरा करेगा, उसे आधा राज्य दूंगा।

मंत्री यह सुनकर सन्न रह गया। क्या आज सचमुच ही राजा के दिमाग का कोई तंतु ढीला हो गया है ? एक श्लोक की पूर्ति करने वाले को आधा राज्य ! लगता है—राजा को कुछ हो गया है। मंत्री बोला—महाराज ! आप क्या कह रहे हैं ?

‘कुछ नहीं, तुम बैठ जाओ।’ यह कहते हुए चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त ने राजसभा में घोषणा कर दी—जो इस श्लोक को पूरा करेगा, उसे आधा राज्य दूंगा—

*आस्व दासौ मृगौ हंसौ, मातंगावमरौ तथा।*

चक्रवर्ती का आधा राज्य कितना विशाल होता है ! एक श्लोक की पूर्ति करने वाले को चक्रवर्ती का आधा राज्य मिलेगा, इस घोषणा से तीव्र हलचल मच गई। सबके मन में एक गुदगुदी पैदा हो गई। लोग सोचने लगे—कितना अच्छा हो कि श्लोक पूरा करें और आधा राज्य पाएं। मंत्री वरधनु के मन में भी श्लोक पूरा करने की कामना आई होगी। पर श्लोक पूरा कैसे करें ? अनेक लोगों ने श्लोक की पूर्ति की पर सफल नहीं हो सके। चक्रवर्ती जिस रूप में पूर्ति चाहता था, वह संभव नहीं बन सकी।

यह घोषणा चारों ओर फैल गई। पूरे साम्राज्य में यह आधा श्लोक जन-जन के मुंह पर उच्चरित होने लगा।

## महावीर की पद्धति

एक दिन एक चरवाहा अपनी गायों और बैसों को चरा रहा था। वह एक कुएं की मेंड पर खड़ा था और बार-बार इसी श्लोक को दोहरा रहा था। ऐसा योग मिला—उसके पास ही पेड़ की छांव में एक मुनि ध्यान में लीन थे। उन्होंने यह श्लोक सुना। मुनिवर पहले ही जाति स्मृति ज्ञान को उपलब्ध हो चुके थे।

ऐसा लगता है—महावीर के शासन में जाति स्मरण की प्रक्रिया बहुत प्रखर बन गई थी। जाति स्मृति ज्ञान के सैकड़ों-सैकड़ों प्रसंग आज भी उपलब्ध हैं। यदि धूरे उपलब्ध होते तो हजारों-हजारों प्रसंग बन जाते। आगमों में ऐसे प्रसंग भरे हुए हैं—अमुक व्यक्ति को जाति स्मरण हुआ और वह मुनि बन गया। अमुक व्यक्ति को जाति स्मृति उपलब्ध हुई और उसमें वैराग्य का भाव जाग गया, मूर्च्छा का चक्र टूट गया। महावीर की यह पद्धति रही है—जातिस्मरण कराओ, संसार की वास्तविकता का दर्शन कराओ, वैराग्य का स्रोत फूट पड़ेगा।

### श्लोक की पूर्ति

मुनि चित्र को जातिस्मरण ज्ञान प्राप्त था। श्लोक सुनते ही मुनि ने उसको पूरा करते हुए श्लोक का उत्तरार्थ सुना डाला। चरवाहे ने यह श्लोक पूर्ति सुनी। उसने सोचा—यदि यह श्लोक-पूर्ति सही होगी तो मुझे आषा राज्य मिल जाएगा। वह मुनि के पास आया। उसने मुनि को प्रणाम कर निवेदन किया—मुनिवर! आप इस श्लोक को पुनः सुनाएं। उसने वृक्ष के एक बड़े पत्ते को उठाया और मुनिवर द्वारा बोला गया श्लोक उस पत्र पर उतार लिया। उसे लिखा ही नहीं, याद भी कर लिया। वृक्ष के पत्ते का क्या भरोसा ? कब टूट जाए ? वह चरवाहा एक हाथ में पत्ता लिये जा रहा है और उस याद किए हुए श्लोक को दोहराता जा रहा है। मन में उमंग लिए वह चक्रवर्ती की राजसभा में पहुंचा। द्वारपाल ने उसे गेट के बाहर रोक दिया। चरवाहा बोला—मुझे मत रोको, जाने दो। मैं श्लोक की पूर्ति करने के लिए आया हूँ। द्वारपाल से अनुज्ञा लेकर वह भीतर पहुंचा। चक्रवर्ती को नमस्कार कर निवेदन किया—महाराज! मैंने श्लोक पूरा कर दिया है।

चक्रवर्ती ने कहा—सुनाओ अपना श्लोक।

चरवाहे ने मुनि के द्वारा रचा गया पद्य बोल दिया—

*आस्व दासौ मृगौ हंसौ, मातंग्गावमरौ तथा।*

*एषा नव षष्टिका जातिः, अन्योन्याभ्यां वियुक्तयोः॥*

### श्लोक किसने बनाया ?

जैसे ही इस श्लोक को सुना, चक्रवर्ती मूर्च्छित हो गया। वह सिंहासन से नीचे गिर पड़ा। यह देख राज्य कर्मचारी उस चरवाहे को डांटने लगे—बेवकूफ हो तुम। कहीं ऐसा श्लोक बनाकर लाया जाता है। तुमने राजा को मूर्च्छित कर दिया। यह कहते हुए राज्य कर्मचारियों ने चरवाहे की पिटाई शुरू कर दी। आषा राज्य मिलना तो कहीं रहा, मार और पड़ने लगी। उसने सिसकते हुए कहा—मुझे मत मारो ! यह श्लोक मैंने नहीं बनाया है।

यह सुनते ही चक्रवर्ती सावधान हो गया। उसने सोचा—क्या बात है ? यह श्लोक इसने नहीं बनाया है ? चक्रवर्ती ने पूछा—किसने बनाया है यह श्लोक ?

चरवाहे ने कहा—राजन् ! कुए के पास एक मुनि खड़े हैं। उन्होंने यह श्लोक बनाया था और उसको ही मैंने यहां सुनाया है ?

चक्रवर्ती तत्काल खड़ा हो गया। उससे रहा नहीं गया। वह चरवाहे को साथ ले चल पड़ा। आगे चरवाहा चल रहा है, उसके पीछे चक्रवर्ती चल रहा है और उसके

पीछे हजारों लोगों की भीड़ है। वे नगर को पार कर बाहर आए। चरवाहे ने कुए के पास पहुंच कर पेड़ के नीचे खड़े मुनि की ओर इशारा किया। चक्रवर्ती तेज कदमों से मुनि के समीप पहुंच गया। चक्रवर्ती ने देखा—मुनि ध्यानमुद्रा में लीन हैं। उन्हें देखते ही चक्रवर्ती के भीतर स्नेह जाग गया। उसे यह प्रतीति हो गई—यही है मेरा भाई। मैंने अपने भाई को पा लिया।

चक्रवर्ती मुनि को संबोधित करते हुए बोला—भइया! मैं आ गया हूं। मुनिवर ने ध्यान पूरा किया। उसने भी चक्रवर्ती को पहचान लिया। बिछुड़े हुए दो भाई मिल गए। इसे दो भाइयों का मिलन कहा जाए या दो जातिस्मरणों का मिलन कहा जाए। मुनि को भी पूर्वजन्म की स्मृति और चक्रवर्ती को भी पूर्वजन्म की स्मृति। दोनों देख रहे हैं अपने अतीत के सारे चित्र को; रील का ऐसा फीता खुल गया कि अनेक जन्मों के दृश्य साक्षात् होते चले गए।

### अतीत की कथा

चक्रवर्ती बोला—भाई !इससे पहले जन्म में हम सौधर्म कल्प देवलोक में पुद्गुल्य विमान में देवता थे। उससे पहले हम मातंग थे, चाण्डाल पुत्र थे। उस समय हमारे में क्या-क्या नहीं बीता ! कैसे हमें नगर से निकाला गया ! कितने अच्छे गायक थे हम ! इतने कष्टों के बाद भी हमने साथ नहीं छोड़ा। सदा साथ बने रहे। उसी भव में हम दोनों मुनि बन गए। इसके पूर्व भव में हम गंगा नदी के तीर पर हंसयुगल हुए। उससे पहले जन्म में हम दोनों कालिंजर पर्वत पर मृग बने और शिकारी के एक ही बाण से हम दोनों की मृत्यु हो गई। उससे पूर्वजन्म में हम दास थे। आज हमारे सामने पांच भव प्रत्यक्ष हैं—दास का भव, मृग का भव, हंस का भव, मातंग पुत्र का भव और सौधर्म कल्प देवलोक का भव। इनसे पहले कोई ऐसा जन्म आ गया है, ऐसी स्थिति आ गई है, जिससे हम उससे आगे के जन्मों को नहीं जान पा रहे हैं।

जातिस्मरण ज्ञान संज्ञी भवों को जानने वाला ज्ञान है। जहां अमनस्क का जीवन बीच में आ जाता है, वहां से आने नहीं देखा जा सकता।

### क्यों बिछुड़े ?

चक्रवर्ती ने कहा—भाई ! हम पांच जन्मों को देख रहे हैं। इन जन्मों में हम सदा एक-दूसरे के साथ रहे हैं। यह छटा भव है, जिसमें हम दोनों बिछुड़ गए। भाई चित्र ! तूने स्नेह पाला नहीं और मुझसे अलग हो गया। अनेक जन्मों का यह साथ छूट गया।

मुनि चित्र ने कहा—राजन् ! तुम सोचो। अलग मैं हुआ या तुम हुए ? अलग कौन हुआ ? तुम निदान नहीं करते तो हम अलग नहीं होते। तुमने संयम पाला, साधना की और अन्त में निदान कर लिया। तीव्र आसक्ति और मूर्च्छा के साथ संकल्प कर लिया। इसका परिणाम है—हम बिछुड़ गए।

चक्रवर्ती बोला—भाई ! मैंने निदान किया तो क्या बुरा किया ? तुम्हें भी कर लेना चाहिए था निदान। मैंने निदान किया इसलिए चक्रवर्ती का साम्राज्य भोग रहा हूँ। तुमने नहीं किया इसलिए तुम जंगल में अकेले खड़े हो। न कोई नौकर है और न कोई चाकर।

### चक्रवर्ती का प्रलोभन

चक्रवर्ती ने कहा—भाई ! जो होना था, हो गया। अब हम मिल गए हैं। आओ! मेरे साथ चलो। इस साधुपन को छोड़ो। देखो ! मेरे पास कितने विशाल, भव्य और रमणीय प्रासाद हैं ! कितना वैभव है ! कितनी ऋद्धि है ! सुख-सुविधा के सारे साधन प्राप्त हैं। जो कुछ चाहिए, वह सब कुछ है। तुम इस साधु-वेश को त्याग दो। मैंने घोषणा की थी—जो अधूरे श्लोक को पूरा करेगा, उसे आधा राज्य दूंगा। तुमने उस श्लोक को पूरा किया है। मैं तुम्हें आधा नहीं, पूरा ही राज्य दे रहा हूँ। तुम आओ, राज्य का उपभोग करो, मैं तुम्हारी सेवा में रहूँगा।

कितना बड़ा प्रलोभन ! इस स्थिति में मुनि चित्र ने जिस आंतरिकता का परिचय दिया, वह भी अद्भुत है। जो व्यक्ति अलौकिक सुख की अनुभूति में चला जाता है, उसे लौकिक सुख फीके लगने लग जाते हैं। कहा गया—जिसने अलौकिक सुख को पा लिया है, उसे सोना पत्थर या मिट्टी के ढेले जैसा लगता है। सामान्य आदमी यह कल्पना भी नहीं कर सकता कि ऐसा रूपान्तरण भी व्यक्ति में हो सकता है किन्तु जब अलौकिक अवस्था जाग जाती है तब ऐसा घटित हो जाता है।

### मुनि का आमंत्रण

मुनि चित्र ने कहा—तुमने मुझे चक्रवर्ती का साम्राज्य भोगने का आमंत्रण दिया है। मैं तुम्हें सारे संसार के साम्राज्य का निमंत्रण दे रहा हूँ, विश्व साम्राज्य का निमंत्रण दे रहा हूँ। तुम्हें ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और मध्यलोक—तीनों लोकों का स्वामित्व मिलेगा। चक्रवर्ती के साम्राज्य से बड़ा है तीन लोक का साम्राज्य। तुम आओ, उस साम्राज्य का उपभोग करो।

चक्रवर्ती ने कहा—कहाँ है तुम्हारे पास तीन लोक का साम्राज्य ?

मुनि चित्र—राजन् ! क्या तुम जानते हो—तीन लोक का अधिपति कौन होता है ?

चक्रवर्ती ने जिज्ञासा की—तुम बताओ ! कौन होता है तीन लोक का स्वामी?  
मुनि चित्र—जो अकिंचन है, वह तीन लोक का स्वामी है।

**बड़ा कौन ?**

यह बहुत महत्वपूर्ण प्रश्न है—पूर्णता के शिखर बिन्दु पर कौन पहुंच सकता है? पूर्ण साम्राज्य किसका हो सकता है ? एक करोड़पति आदमी को बड़ा माना जाता है पर एक अरबपति के सामने वह छोटा है। एक अरबपति खरबपति के सामने कुछ नहीं है। एक सम्राट् के वैभव के सामने ये सब छोटे पड़ जाते हैं। क्या एक सम्राट् बहुत बड़ा है ? दूसरा सम्राट् उससे भी बड़ा हो सकता है। सिकन्दर विश्वविजयी था। नेपोलियन भी बहुत बड़ा सम्राट् था। जब उनसे बड़ा कोई आया, वे छोटे पड़ते चले गए। यह मनुष्य लोक की बात है। इसमें कोई छोटा हो जाता है और कोई बड़ा। हम इससे आगे बढ़ें। देवलोक की समृद्धि को देखें। माना जाता है—व्यंतर देवता के पैर के जूते में जितना धन है उतना धन समूचे मनुष्य लोक में नहीं है। कौन बड़ा है और कौन छोटा ? ज्योतिषी, भवनपति और अनुत्तर विमान के देवताओं के पास वैभव क्रमशः अधिक है। सर्वार्थसिद्धि के देवताओं का वैभव उससे भी अधिक है। इन्द्र का वैभव सामने हो तो राजा दशार्णभद्र का वैभव छोटा ही पड़ेगा।

मुनि चित्र ने संभूति से कहा—भाई! जब तक किंचन रहेगा तब तक सबसे बड़ा नहीं बन पाएगा। तुम चक्रवर्ती हो पर देवता तुमसे भी बड़े हैं। जहां किंचनता है वहां छुटपन और बड़प्पन का मापदण्ड चलता रहेगा। सबसे बड़ा बनने का सूत्र है—अकिंचनता। जो अकिंचन हो गया, वह सबसे बड़ा बन गया।

**पूर्णता का बिन्दु**

अनेक बार यह स्वर उभरता है—आचार्यवर जितने बड़े-बड़े प्रासादों में रहे हैं, करोड़ों-अरबों रुपये के सुविधा संपन्न भवनों में रहे हैं उतने मकानों में दुनिया का कोई व्यक्ति रहा है या नहीं। आचार्यवर पचास वर्षों की पद यात्रा में इतने गांवों में गए हैं, इतने मकानों में रहे हैं, जिनकी गणना करना भी बड़ा कठिन है। राष्ट्रपति भवन में रहे, प्रधानमंत्री निवास में रहे, मुख्यमंत्री संपूर्णानंद की कोठी पर रहे। अनेक राज्यपाल-भवनों में रहे, ऊटी के राजभवन में रहे, बड़े बड़े कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में रहे। इतने बड़े-बड़े मकानों में कितने व्यक्ति रह पाते हैं ! बाड़मेर जिले में रेतीले टिब्बे पर बनी घास-फूस की झोंपड़ी में रहे, जहां रात भर बिच्छुओं और मच्छरों का परीषह रहा। झोंपड़ी से लेकर राष्ट्रपति भवन तक—आचार्यवर का प्रवेश अबाध रहा है। कितना मूल्य है उन सबका ! प्रश्न हो सकता है—इतने मकानों में कैसे रहे ?



समाधान दिया गया--जो अकिंचन हो जाता है, उसके लिए सारे दरवाजे खुल जाते हैं, वह तीन लोक का अधिपति बन जाता है। पूर्णता का बिन्दु है अकिंचन होना।

### चर्चा सुख दुःख की

मुनि चित्र ने कहा--भाई ! तुम इस लौकिक साम्राज्य की मोह-माया को छोड़ो। यह मुनि-धर्म सुख का मार्ग है। इसे स्वीकार करो।

चित्र और संभूति के बीच बहुत लंबा संवाद चला है। चित्र उसे मुनि बनने की प्रेरणा दे रहा है और चक्रवर्ती उसे मुनित्व को छोड़ने के लिए प्रार्थना कर रहा है। उत्तराध्ययन के तेरहवें अध्ययन में दोनों भाइयों का संवाद प्रस्तुत है। वह संवाद बहुत मननीय है। उसमें कर्म की अनेक गुत्थियां सुलझाई गई हैं। आज कर्म के बारे में अनेक प्रश्न खड़े हो रहे हैं। एक प्रश्न है--धन किससे मिलता है ? क्या वह पुण्य का फल है ? वह पुण्य से मिलता है या नहीं ? वैभव किससे मिलता है ? एक बहुत सुखी है और एक दुःखी है। इसका कारण क्या है ? ऐसे अनेक प्रश्न आज चर्चित हो रहे हैं। चित्र और संभूति इन्हीं प्रश्नों पर चर्चा कर रहे थे। वे कोई व्यर्थ की बात नहीं कर रहे थे, सुख दुःख के विपाक की चर्चा कर रहे थे।

### कर्म-विपाक का विश्लेषण

चित्र कह रहा था--तुमने क्या किया और क्या पाया ? संभूति कह रहा था--तुमने क्या पाया और क्या खोया ? हमने सुख का फल भी भोगा है, दुःख का फल भी भोगा है। हमारा जन्म कर्म के अधीन है। वह सुखद हो या दुःखद। सातसंवेदन या असातसंवेदन की अनुभूति कृत कर्म का परिपाक है--

*कर्माधीनं भवेज्जन्म, सुखदं दुःखदं तथा।*

*सातसंवेदनं तद्वद्, असातस्यापि वेदनम्॥*

सुख और दुःख के विपाक की चर्चा कर्म-विपाक की चर्चा है। कर्म विपाक की चर्चा किए बिना कोई व्यक्ति आध्यात्मिक नहीं बन सकता। अध्यात्म की गहराई में जाने का एक महापथ है कर्मशास्त्र। जो व्यक्ति कर्मशास्त्र को नहीं जानता, कर्मशास्त्र की गहराइयों में जाना नहीं चाहता, वह अध्यात्म की बात को सतही तौर पर ही पकड़ पाएगा। अध्यात्म में उसका अन्तःप्रवेश नहीं होगा। अध्यात्म की गहराई में जाने के लिए कर्म के रहस्यों को, कर्म के मर्म को समझना बहुत जरूरी है।

### आर्य कर्म का उपदेश

चित्र और संभूति ने कर्म-विपाक का विश्लेषण किया। पूर्वकृत कर्म, पुण्य का विपाक, पाप का विपाक आदि को देखा। मुनि चित्र ने कहा--भाई ! तुम याद करो।

हमने अपने पूर्वजन्मों में क्या क्या भोगा है ? जब हम चाण्डाल थे तब हमारे साथ क्या-क्या बीता ? आज तुम गर्व कर रहे हो कि पूर्वकृत कर्म के कारण मुझे यह सब मिला है।

चित्र का यह संबोधन सुनकर भी चक्रवर्ती की मूर्च्छा नहीं टूटी।

मुनि चित्र ने उसकी मन-स्थिति को पढ़ा। उसने कहा—संभूत! मुझे लगता है—तुम वैराग्य को नहीं पा सकते। तुम साम्राज्य का मोह नहीं छोड़ सकते। तुम इसी साम्राज्य में रहते हुए भी मेरी एक बात मानो। तुम अनार्य कर्म मत करो। यदि मुनि नहीं बन सकते तो गृहस्थ रहते हुए भी धर्म में स्थित रहो, सब जीवों के प्रति अनुकंपा करो।

*जइ ता सि भोगे चइउं असत्तो, अज्जाइं कम्माइं करेहिं रायं !*

*धम्मं ठिओ सव्व पयाणुकम्पी, तो होहिसि देवो इओ विउब्बी ॥*

### आर्य कर्म का तात्पर्य

यह कहा जाता है—जैन धर्म में केवल अकर्म की बात है। निवृत्ति पर बल दिया गया है। इस संदर्भ में एक महत्त्वपूर्ण सूत्र मिलता है—जो विरक्त नहीं हो सकता, सारे भोगों को छोड़ नहीं सकता, वह आर्यकर्म तो करे।

बौद्ध साहित्य में आर्यकर्म की बहुत अच्छी व्याख्या की गई है। आर्यकर्म का अर्थ है—धर्म में स्थित रहना और सब जीवों के प्रति अनुकंपा करना। इसका तात्पर्य है—करुणा और संवेदनशीलता जाग जाए। जिसमें अनुकंपा का भाव है, वह मिलावट नहीं कर सकता। जिसमें अनुकंपा का भाव है, वह अप्रामाणिकता और भ्रष्टाचार नहीं कर सकता। जिसमें अनुकंपा है, वह दूसरे को धोखा नहीं दे सकेगा, लूट नहीं सकेगा। जीवन की महत्त्वपूर्ण घटना है—अनुकंपा के भाव का जागना। यदि प्राणीमात्र के प्रति अनुकंपा का भाव जाग जाए तो हिंसा और अपराध की समस्या स्वतः कम हो जाए। जिस व्यक्ति की संवेदनशीलता प्रबल है, दूसरों के कष्ट से उसका हृदय द्रवित हो जाएगा।

आर्यकर्म करने का संदेश सुनकर भी राजा प्रतिबुद्ध नहीं हुआ। मुनि ने यह जानकर वहां से विहार कर दिया। दो भाई मिलकर पुनः बिछुड़ गए। एक त्याग के पथ पर बढ़ गया और एक भोगों में पुनः लिप्त हो गया। यदि हम आर्यकर्म के धर्म की बात को समझ पाए तो यह प्रसंग एक नई दृष्टि और नया दर्शन देने वाला सिद्ध हो सकता है।

## जब सत्य को झुठलाया जाता है

जब-जब जिज्ञासा प्रबल होती है तब-तब किसी का द्वारा खटखटाना होता है। जिसने दरवाजा खटखटाया है, उसने समाधान पाया है। जो बैठा रहता है, वह समाहित नहीं हो पाता।

शिष्य जिज्ञासा को लेकर आचार्य की सन्निधि में पहुंचा। आचार्य ने पूछा—वत्स! कैसे आए हो ?

भंते ! मन में एक जिज्ञासा है। उसका समाधान पाने आया हूं।

क्या जिज्ञासा है तुम्हारी ?

भंते ! सत्य बलवान् होता है या भाव-विप्लव। भाव का परिवर्तन होता रहता है। कभी एक भाव आता है और कभी दूसरा भाव आ जाता है, यह भाव का विप्लव बलवान् है या सत्य ?

वत्स ! जब ज्ञान का उपयोग होता है तब सत्य बलवान् होता है। जब क्रोध, लोभ, मोह आदि का उपयोग होता है तब भाव-विप्लव बलवान् होता है।

*सत्यं बलयुतं यद् वा, बलवान् भावविप्लवः।*

*ज्ञानोपयोगे सत्यं स्याद्, अन्यो मोहचिदःक्षणे॥*

### सुन्दर परिभाषा

आचार्य ने सत्य की थोड़े शब्दों में बहुत सुन्दर परिभाषा दी है। सत्य है ज्ञान का उपयोग। असत्य है भाव का विप्लव। यह सत्य और असत्य को परखने की बहुत बड़ी कसौटी है। जब-जब ज्ञान का केवल उपयोग होता है, उसके साथ कोई मिश्रण नहीं होता तब-तब सत्य बलवान् होता है। जब वह क्रोध युक्त, मान युक्त, माया और लोभ युक्त होता है तब-तब असत्य बलवान् हो जाता है। भगवती सूत्र में कहा गया है—जब व्यक्ति क्रोध, मान, माया और लोभ से उपयुक्त होता है, जिस क्षण में इन औदयिक भावों का आवेश हमारी चेतना में प्रबल बनता है, उस समय असत्य बलवान् बन जाता है।

असत्य की उत्पत्ति के चार कारण बतलाए गए हैं—क्रोध, लोभ, भय और हास्य।

आदमी झूठ बोलना नहीं चाहता, मिथ्या आचरण करना नहीं चाहता, सिद्धान्त और वाणी का असत्य भी नहीं चाहता किन्तु जब ये चार आवेश प्रबल होते हैं, तब सचाई नीचे चली जाती है, असत्य उभर कर सामने आ जाता है।

### असत्य बोलने के कारण

दर्शन शास्त्र में आप्त पुरुष की बहुत चर्चा हुई है। कहा गया—जो आगम हैं, वे प्रमाण हैं। प्रश्न आया—आगम प्रमाण है, इसका क्या प्रमाण है? कहा गया—आगम आप्त की वाणी है और आप्त कभी झूठ नहीं बोलता। झूठ बोलने के तीन कारण—राग, द्वेष और मोह। व्यक्ति इन तीन कारणों से झूठ बोलता है। जिसमें ये तीनों दोष नहीं होते, वह झूठ क्यों बोलेगा ?

*रागाद् वा द्वेषाद् वा मोहाद् वा यद् वाक्यमुच्यते त्स्यनृतम्।*

*यस्य तु नैते दोषाः तस्यानृत कारणं किं स्यात्॥*

जिसमें मोह नहीं है, राग और द्वेष नहीं है, वह सत्य ही बोलेगा। वह अयथार्थ को ग्रहण नहीं करता, यथार्थ को ही ग्रहण करता है इसलिए यथार्थ ही कहेगा। उसमें केवल ज्ञान का उपयोग होता है।

जीव का लक्षण है उपयोग आत्मा। क्रोधोपयोग जीव का लक्षण नहीं है, मानोपयोग जीव का लक्षण नहीं है। जीव का लक्षण है केवल उपयोग, शुद्ध उपयोग। जब जीव अपने लक्षण से लाछित या चिह्नित होता है, उस क्षण में सब सत्य ही सत्य होता है, किन्तु जब उपयोग के पीछे कोई विशेषण जुड़ता है, क्रोध, मान, माया, लोभ, भय, हास्य आदि का योग होता है तब सत्य गौण हो जाता है, असत्य बलवान् हो जाता है।

### बदलाव का चक्र

जीवन में बदलाव का एक चक्र चल रहा है। प्रत्येक व्यक्ति बदलता है। वह प्रतिदिन और प्रतिक्षण बदलता है। वह इतना बदलता है, फिर भी हम कभी कभी ही उस बदलाव को पकड़ पाते हैं। अवस्था में आने वाला बदलाव भी रोज नहीं पकड़ा जाता। एक शिशु दस वर्ष का होता है तब बदलाव का पता चलता है। हम सोचते हैं शिशु किशोर हो गया, दूसरी अवस्था में चला गया। जब बीस वर्ष के आस-पास पहुंचता है तब एक और बदलाव की बात सामने आती है। जब पचास वर्ष का होता है तब वह प्रौढ़ बनता है। इन बदलावों के आधार पर जैन आचार्यों ने सौ वर्ष की आयु को दस अवस्थाओं में बांट दिया। दस-दस वर्ष की एक अवस्था। सौ वर्ष जीने वाला व्यक्ति दस अवस्थाओं को भोग लेता है। सूर्य में भी बदलाव आता है। जो सौर

वैज्ञानिक हैं, वे उस बदलाव को पकड़ लेते हैं। सूर्य के भी दस वर्ष का एक चक्र होता है। उस चक्र के आधार पर बदलाव को पकड़ा जाता है। प्रतिदिन होने वाला बदलाव हमारी पकड़ में नहीं आता। प्रातःकाल सूर्योदय होते ही वातावरण में एक बदलाव आता है। ज्यों-ज्यों दिन चढ़ता है, वातावरण बदलता जाता है। दो तीन घण्टे बाद वातावरण एकदम बदल जाता है। एक एक मिनट में बदलाव आता है पर हम उसे पकड़ नहीं पाते। वह सूक्ष्म होता है।

### बदलाव को पकड़ें

हम व्यक्ति की मन-स्थिति को देखें। वह कब एकरूप रहती है। यदि हम एक दिन कागज पेंसिल लेकर बैठें और दिन भर बदलने वाले मूड को अंकित करते चलें तो पूरा पृष्ठ मूड परिवर्तन की घटनाओं से भर जाएगा। संभव है एक पूरी कॉपी भर जाए। हमारा मूड अपने आप भी बदलता है और बाहरी निमित्तों के कारण भी बदलता है। हमारी भावधारा बदलती रहती है, हमारे हाव-भाव और मुद्राएं बदलती रहती हैं। केवल अन्तर्मन नहीं बदलता। एक आदमी किसी आकृति को एक दिन तक पढ़ता रहे, तो उसे लगेगा-आकृति में कितने बदलाव आए हैं—कभी प्रसन्न आकृति और कभी विषण्ण। कभी खुश और कभी नाराज। कभी हंसमुख और कभी चिन्तातुर। कभी सिर पर हाथ धरे बैठा है और कभी उल्लास के क्षण में। आदमी क्षण-क्षण में बदलता है। आदमी कुछ होता है और कुछ बन जाता है। हम उस बदलाव को पकड़ें। जब औदयिक भावों का परिवर्तन होता है तब आदमी असत्य में चला जाता है। जब बदलाव नहीं, ठहराव आता है, उत्पाद व्यय से मुक्त होकर ध्रौव्य की अवस्था में चला जाता है। जब औदयिक भाव से मुक्त होकर पारिणामिक भाव में आता है तब जो स्थिति बनती है, उसमें सत्य बलवान् होता है।

### देवता की चिन्ता

आचार्य ने अपनी बात को स्पष्ट करते हुये एक उदाहरण प्रस्तुत किया। दो देवताओं के देवलोक से च्युत होकर धरती पर आने का समय निकट आ गया। उनकी मालाएं कुम्हलाने लग गईं, चेहरे पर झुर्रियां पड़ गईं। देवताओं ने देखा—यह क्या हो रहा है ? माला क्यों कुम्हला रही है ? चेहरे पर झुर्रियां क्यों आ रही हैं ? वे गहराई में उतरे, रहस्य समझ में आ गया—माला कुम्हलाना और बुढ़ापा उतरना मौत का पूर्व संकेत है। देवताओं की माला सदा पुष्पित रहती है, उनका चेहरा सदा तरोताजा रहता है। जब देवलोक से च्युत होने का समय निकट आता है तब माला कुम्हलाने लगती है, चेहरे पर झुर्रियां पड़ने लग जाती हैं। देवता चिन्तित हो उठे। उन्होंने देखा—कहां

जाना है ? पता चल गया—मनुष्य लोक में जाना है। जब मनुष्य होने की बात आती है, देवता घबरा जाते हैं। अन्य गति में जाने से तो उससे भी अधिक घबराते हैं। दिव्य भूमि से मनुष्य लोक में जाना किसे पसन्द होगा ? ऐसी दिव्य भूमि है, जहां चारों ओर मनोहर वातावरण है, न प्रदूषण है, न गन्दी हवा है, न कोलाहल है, न रसोई बनाने का झंझट है, न चूल्हा फूंकना है, न खाने-पीने की चिन्ता है, न आजीविका की चिन्ता है। जो मनुष्य बनता है उसे सबसे पहले गर्भावास में रहना होता है। एक बंद थैली में नौ महीने तक रहना कितना दुःखद है। देवताओं का मन विषाद से भर गया। शांत, सुरम्य और पवित्र भूमि से ऐसी भूमि में आना कौन चाहेगा? कोई चाहे न चाहे, अपने कर्म के अनुसार उसे निर्धारित योनि में जाना ही होता है। प्रकृति के नियम को कैसे टाला जा सकता है ?

**पृथ्वी पर आए**

देवताओं ने उस स्थान को देख लिया, जहां जाना था। दोनों देवता परस्पर परामर्श कर मनुष्य लोक में आए। साधु का वेश बनाया। ईषुकार नगर में राजपुरोहित के घर भिक्षा के लिए पहुंचे। राजपुरोहित का नाम था भृगु। उसकी पत्नी का नाम था यशा। मुनि को देखते ही दोनों के हाथ जुड़ गए। यह सहज है—जब मनुष्य त्यागी व्यक्ति को देखता है, उसका सिर नीचे झुक जाता है, हाथ जुड़ जाते हैं।

राजपुरोहित ने पूछा—महाराज ! कैसे पधारे ?

‘ऐसे ही भिक्षा के लिए आ गये।’

मुनि ने राजपुरोहित से कुछ बातचीत की। राजपुरोहित के मन में आर्कषण पैदा हो गया। मुनि की भव्य मुद्रा और तेजस्वी मुखमण्डल पुरोहित के हृदय में समा गया। राजपुरोहित ने कहा—महाराज ! कहिए क्या आदेश है ?

मुनि बोले—हमारा आदेश यही है कि तुम धार्मिक बने। धर्म का जीवन जीओ।

मुनि ने राजपुरोहित को धर्म का स्वरूप और मर्म समझाया। राजपुरोहित प्रबुद्ध बन गया। उसे सम्यग् दर्शन हो गया। उसने श्रावक के व्रत स्वीकार कर लिए। जब दिव्य शक्ति का अवतरण होता है तब एक साथ विस्फोट हो जाता है।

**संतान की अभिलाषा : मुनि का कथन**

बातचीत के मध्य राजपुरोहित ने मुनि से पूछा—महाराज ! आप ज्ञानी हैं। आप बताइए—हमारे कोई संतान होगी ? अनेक वर्षों से हम संतान की कामना लिए हुए हैं। हमारी कामना कब पूरी होगी ?

यह संतान का प्रश्न आज के युग में भी बहुत उभरता है। आज परिवार नियोजन की बात भी प्रखर बन रही है पर उस समय संतान का प्रश्न बहुत जटिल

था। चीन में यह नियम बन गया—संतान एक से ज्यादा न हो। हिन्दुस्तान में कहा जाता है—दो या तीन से अधिक संतान न हो। रुस में कुछ वर्ष पहले तक यह विधान था—जितनी अधिक संतान उतना अधिक पुरस्कार। कहीं परिवार नियोजन का स्वर रहा है तो कहीं संतति की वृद्धि का स्वर। पर संतान की कामना हमेशा रही है।

मुनि ने कहा—माई ! हमारा यह विषय तो नहीं है पर तुमने पूछ लिया है इसलिए बता देते हैं—तुम्हारे एक नहीं, दो पुत्र होंगे पर ----

पर शब्द को सुनते ही राजपुरोहित का मन आशंका से भर गया। उसने पूछा—‘महाराज ! पर का अर्थ !’

‘वे तुम्हारे ज्यादा काम के नहीं होंगे।’

‘क्या मैं जल्दी चला जाऊंगा इस दुनिया से’—राजपुरोहित ने आशंकित हृदय से पूछा।

मुनि बोले—‘न तुम जाओगे, न वे कहीं जाएंगे किन्तु थोड़े से बड़े होते ही वे मुनि बन जाएंगे।’

पुत्र होंगे, यह सुनकर हर्ष हुआ और वे मुनि बन जाएंगे, यह सुनकर विषाद भी हुआ। वे मुनि बन जाएंगे तो मेरे किस काम आएंगे ? दुनिया को न पुत्र से मतलब है, न पिता से। उसका मतलब अपने स्वार्थ से है।

### झुठलाने का अहं

मुनि यह कहकर विदा हो गये। राजपुरोहित ने सोचा—मुनि जब बनेंगे तब बनेंगे। मैं उन्हें बनने ही नहीं दूंगा। वे मुनि तब बनेंगे जब साधुओं के सम्पर्क में आएंगे। मैं उन्हें साधुओं के सम्पर्क में आने ही नहीं दूंगा। उनकी छाया से ही दूर रखूंगा। न रहेगा बांस और न बजेगी बांसुरी। उसने सोचा—शहर में तो साधु संन्यासी आते ही रहते हैं, गांवों में कौन आयेगा ? मैं इस शहर को छोड़कर किसी गांव में जाकर रहूंगा। बच्चों का मुनियों से सम्पर्क होगा ही नहीं। शहर में साधुओं की जमात आती ही रहती है, लड़के उन्हें देखेंगे तो मुनि बनने की बात जाग जाएगी। राजपुरोहित ने यह निश्चय कर नगर का मोह छोड़ दिया। वह एक गांव में रहने लगा। वह राज्य का मान्य पुरोहित था। इसलिए गांव में भी सारी सुविधाएं उपलब्ध थीं। वह निश्चितता से जीवन जीने लगा। उसके मन में यह अहं अभर आया—मुनिजी की बात सच कैसे होगी ? मैं उनके कथन को झुठलाकर रहूंगा। सत्य को झुठलाने के लिए उसने शहर से गांव में बसकर पहला कदम रखा। कुछ समय बीता। राजपुरोहित के दो पुत्र पैदा हुए। राजकुमार-देवकुमार जैसे पुत्रों को प्राप्त कर पुरोहित प्रसन्न हो उठा। उसका

जीवन खुशियों से भर गया। समय बीतता गया। दोनों कुमार बड़े हुये। गुरुकुल में पढ़ने लगे। उनकी बुद्धि भी तीक्ष्ण और पैनी थी। राजपुरोहित के मन में यह प्रश्न सदा बना रहता—कहीं कोई साधु इन्हें मिल न जाए। यदि साधु मिल गये तो क्या होगा? उसने सोचा—मुझे इनके मन में ऐसा संस्कार भर देना चाहिए, जिससे इनके मन में साधुओं के प्रति आस्था और आकर्षण का भाव जागे ही नहीं? इस चिन्तन के साथ ही सत्य को झुठलाने का दूसरा प्रयत्न शुरू हो गया।

### दूसरा प्रयत्न

राजपुरोहित ने पुत्रों के कान में यह मंत्र फूंकना शुरू कर दिया—बेटे ! जो साधु होते हैं ना, उनका सदा ध्यान रखना। कभी उनके पास मत जाना।

लड़कों ने पूछा—पिताजी ! कैसे होते हैं ये साधु ?

‘वे एक हाथ में झोली रखते हैं, पात्र रखते हैं। उनके कपड़े सफेद होते हैं। वे इधर-उधर घूमते रहते हैं, पर तुम उनसे सदा बचते रहना।’

पिताजी ! ‘उनके पास क्यों नहीं जाना चाहिए ?’

‘बेटे ! तुम नहीं जानते, वे बालकों को उठाकर ले जाते हैं। अपने पात्रों में छुरी-कैंची रखते हैं। बच्चों का अपहरण कर उन्हें सताते हैं, मार डालते हैं। किसी का कान काट लेते हैं, किसी का नाक काट लेते हैं। तुम उनके पास भूल-चूक कर भी मत जाना।’

राजपुरोहित इस प्रकार की बातें समय-समय पर अपने लड़कों के कान में भरता रहा। उनके मन में साधुओं के प्रति घृणा के भाव भर दिए। बच्चों के कच्चे दिमाग में ये संस्कार गहरे जम गए। राजपुरोहित ने सोचा—इनके मन में साधुओं के प्रति जो भय बैठा है, उसे कोई नहीं निकाल सकता। यह सत्य को झुठलाने का दूसरा प्रयत्न था। प्रत्येक आदमी सत्य को झुठलाने का प्रयत्न करता है, राजपुरोहित उसका अपवाद कैसे रहता ?

### मुनि का दर्शन

एक दिन की बात है। दोनों किशोर जंगल में घूमने चले गए। संयोग ऐसा मिला—उसी जंगल में दो तीन मुनि विहार करते हुये आ पहुंचे। दोनों भाइयों ने देखा—अरे ! ये तो वे साधु हैं ! पिताजी ने इनसे ही दूर रहने की सलाह दी थी। ओह ! ये तो सामने ही आ रहे हैं। कहां जाए ? हम दो हैं, ये तीन हैं। हम छोटे हैं, ये बहुत बड़े हैं। दोनों भय से आक्रान्त हो उठे।

शरीरशास्त्री बतलाते हैं—भय की स्थिति में एड्रीनल का अतिरिक्त स्राव होने लग



जाता है। जब एड्रीनल का अतिरिक्त स्राव होता है तब आदमी की शक्ति दस-बीस गुना अधिक बढ़ जाती है। उस स्थिति में 'भागो या लड़ो' की भावना प्रबल बनती हैं।

### वृक्ष पर शरण

उन्होंने सोचा—इनसे लड़ नहीं सकते और भागकर भी कहां तक जा सकते हैं। दोनों भाई एक गहरे पेड़ पर चढ़ गये, उस पर छिपकर बैठ गये। पेड़ पर चढ़कर उन्होंने राहत की सांस ली। वे मुनि के आगे जाने की प्रतीक्षा करने लगे। नियति का ऐसा योग मिला—मुनि भी उसी पेड़ के नीचे विश्राम करने ठहर गए, जिस पर वे दोनों भाई बैठे थे। भूमि का प्रर्माजन किया। मुनि ने एक स्थान पर पात्र रख दिए और ध्यान मुद्रा में खड़े हो गए। दोनों भाई भयभीत थे। मुनि की यह सामान्य चर्या होती है। वे प्रत्येक प्रवृत्ति के बाद निवृत्ति करते हैं। प्रत्येक प्रवृत्ति से निवृत्त हो कायोत्सर्ग करते हैं। यह एक परम्परा बन गई—प्रत्येक प्रवृत्ति के साथ कायोत्सर्ग करे। यह शारीरिक और मानसिक—दोनों दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। मुनि ने ध्यान पूरा कर पात्रों को खोला। दोनों भाइयों ने सोचा—अब ये मुनि छुरी और कैंची निकाल रहे हैं। वे यह देखकर अवाक् रह गए—पात्र में छुरी-कैंची नहीं, रोटी और शाक था, पानी और दूध था। मुनिजनों ने आहार किया, पानी से पात्र धोए और पात्रों को साफ कर पुनः झोली में रख दिया। मुनि आहार पानी से निवृत्त हो वहीं सुस्ताने लगे।

### पर्दा हट गया

बच्चों ने देखा—ये मुनि तो यहीं बैठे हैं। हम कब तक वृक्ष पर बैठे रहेंगे। आखिर नीचे उतरना ही होगा। डरने से क्या होगा ? जब तक डर न आये तब तक ही डरना चाहिए। डर के सामने आने पर तो उसका मुकाबला ही करना चाहिए।

दोनों भाई पेड़ से नीचे उतरे। मुनियों ने बालकों को देखा और बालकों ने मुनियों को। मुनिजी ने पूछा—'भाई ! कौन हो तुम ?'

बच्चों ने जवाब दिया—'हम इसी गांव के रहने वाले हैं, राजपुरोहित भृगु के पुत्र हैं। तुम कौन हो ?'

'भाई ! हम साधु हैं।'

'क्या करते हो तुम ? क्या तुम बच्चों को पकड़ते हो। उन्हें भगाकर ले जाते हो !'

'यह तुम कैसी बहकी-बहकी बातें कर रहे हो। किसने बताया है यह सब तुम्हें।'  
'हमारे पिताजी ने।'

‘इतनी झूठी बात कैसे बताई ?’

‘क्या यह सच नहीं है ?’

‘इसमें बिल्कुल सचाई नहीं है। हम तो एक चींटी को भी नहीं सताते। फिर आदमी को सताने की बात ही कहां है ? तुमने स्वयं देखा होगा ? जब हम वृक्ष के नीचे ठहरे तो भूमि का प्रमार्जन कर ठहरे। उस पर कंबल बिछा कर बैठे। किसी जीव को संत्रास न पहुंचा, यह हमारा व्रत है। मुनि ने विस्तार से अहिंसक चर्या की जानकारी दी।’

### जाति स्मृति

पूरी जानकारी पाते ही पर्दा हट गया। उन्होंने सोचा—यह क्या ? क्या पिता भी इतनी गलत बातें बता सकता है ? पिताजी ने ऐसा क्यों बताया ? वे इस प्रश्न की गहराई में गए, आवरण हट गया। यथार्थ सामने आ गया। उनके मन में प्रश्न उभरा—अहो ! ऐसे साधु हमने कहीं देखे हैं ? इस प्रश्न पर चिन्तन गहरा हुआ। उन्हें जाति स्मृति ज्ञान उपलब्ध हो गया। उन्होंने अपने पूर्वजन्मों को साक्षात् देख लिया। उन्होंने देखा—हम दो ही नहीं, छः मित्र थे। इससे पहले हम छहों मित्रों ने किसी इष्य कुल में जन्म लिया। उस जन्म में हम सबने विविध भोगों को भोगा और उसके बाद मुनि बन गये। उस भव में मरकर हम देवलोक में उत्पन्न हुये और वहां से च्युत होकर राजपुरोहित भृगु के पुत्र के रूप में जन्म लिया है। हमारे पिता और माता हमारे पूर्व भव के दो मित्र हैं और दो मित्र इषुकार नगर के राजा इषुकार और रानी कमलावती हैं।

### पिता से निवेदन

अपने अतीत को साक्षात् देखते ही उनके मन में असीम श्रद्धाभाव जागा। उन्होंने मुनि को भावपूर्ण वन्दना कर प्रार्थना की—मुनिवर ! हम भी आपके पास दीक्षित होंगे, मुनि बनेंगे। हम दीक्षा के लिए पूर्णतः प्रस्तुत हैं। आप हमारे गांव में पधारें। हम पिताजी की अनुज्ञा लेने जा रहे हैं। वे सीधे पिता के पास पहुंचे। पिता से आग्रह किया—पिताजी ! हम मुनि बनना चाहते हैं। आप हमें आज्ञा दें। राजपुरोहित भृगु यह सुनकर अवाक् रह गया। उसने कहा—यह कैसी पागलपन की बात है ! दोनों भाई एक साथ बोल पड़े—पिताजी ! आपने हमें बहुत झूठ सिखाया है, सदा सत्य को झुठलाया है। अब आप सत्य को नहीं झुठला सकते।

### झुठलाने का परिणाम

जो आदमी सत्य को झुठलाता है, वह घाटे में रहता है। सत्य को झुठलाने का

परिणाम अच्छा नहीं होता। जब सत्य का पता चलता है तब वह झूठ उसे ही सालने लगता है।

पुत्र ने पिता को एक अंगूठी भेजी। उसने लिखा—पिताजी ! आपको मैं एक अंगूठी भेज रहा हूँ। उसका मूल्य है पांच हजार रुपया। पिता ने अंगूठी पहन ली। अंगूठी बहुत चमकदार और सुन्दर थी। बाजार में मित्र मिले। नई अंगूठी को देखकर पूछा—यह कहां से आई ? उसने कहा—तड़के ने भेजी हैं। पांच हजार रुपये लगे हैं। मित्र बोला—क्या इसे बेचोगे ? मैं पचास हजार दूंगा। उसने सोचा—पांच हजार की अंगूठी के पचास हजार मिल रहे हैं। इतने रुपयों में ऐसी दस आ जाएंगी। उसने अंगूठी निकालकर दे दी और पचास हजार रुपये ले लिए। पुत्र को पत्र लिखा—तुमने शुभ मुहूर्त में अंगूठी भेजी। उसको मैंने पचास हजार रुपए में बेचकर पैंतालीस हजार रुपए कमा लिए। लौटती डाक से पत्र आया—पिताजी ! संकोच और भयवश मैंने सचाई नहीं लिखी थी। वह अंगूठी एक लाख की थी।

यह सत्य को झुठलाने का परिणाम था।

### संवाद पिता के साथ

भृगुपुत्रों ने कहा—पिताजी ! आपने सत्य को झुठलाने का प्रयत्न कर अच्छा नहीं किया।’

पिता को कहा—‘तुम मुनि क्यों बनना चाहते हो ?’

‘आत्मा को पाने के लिए।’

‘अरे ! तुम कहां भ्रम में फंस गये। यह झूठा मंत्र तुम्हारे कान में किसने फूंक दिया। क्या कोई साधु मिला था ?’

‘हां ! जो मिलना था, मिल गया।’ यह कहकर भृगुपुत्रों ने पूरी कथा सुना दी।

राजपुरोहित ने सोचा—अनर्थ हो गया। अब क्या करूं ? उसने कहा—‘कहां है आत्मा ? आत्मा तो है ही नहीं।’

वह सत्य को फिर झुठलाने का प्रयत्न करने लगा। अब तक आस्तिक था और अब नास्तिक बन रहा था।

राजपुरोहित बोला—‘पुत्रो ! तुम्हें यह झूठी बात किसने सिखला दी। तुमने अरणी की लकड़ी देखी है ?’

‘हां !’

‘क्या उसमें आग होती है ?’

‘नहीं !’

अरणी की लकड़ी में आग नहीं होती। किन्तु दो अरणी की लकड़ियों का घर्षण करो, आग पैदा हो जायेगी।

क्या दूध में घी होता है ?

‘नहीं।’

दूध में घी नहीं होता। उसे जमाओ, तपाओ, मथो, घी निकल आएगा। तिल में तेल कहां होता है ? किन्तु उसको घाणी में पिसते ही तेल निकल आएगा। इस प्रकार इन भूतों में कोई आत्मा नहीं होती। ये पांच भूत मिलते हैं और भूतों का एक शरीर बन जाता है। वह एक दिन नष्ट हो जाता है। कोई भी आत्मा अमर नहीं है। शरीर के नष्ट होने के बाद उसका अस्तित्व नहीं रहता।’

*जहा य अग्गी अरणी उसन्तो, खीरे घयं तेल्ल जहा तिलेसु।*

*एमेव जाया ! सरीरसि अत्ता, समुच्छई नासइ नावचिठ्ठे।।*

**पुत्र का उत्तर**

पुत्र बोले—पिताजी ! आपने कैसे कहा कि आत्मा नहीं है ?’

‘कहां है आत्मा ? यदि है तो दिखाओ ?’

पिताजी ! आप इतने बुद्धिमान हैं, बहुत अनुभवी हैं। आप वृद्ध हैं, हम बच्चे हैं। फिर भी आप हमें झूठी बात सिखला रहे हैं। आप कहते हैं—आत्मा को दिखालाओ। आत्मा अमूर्त है। वह कैसे दिखाई देगी। क्या आप इस नियम को नहीं जानते—अमूर्त वस्तु इन्द्रिय-ग्राह्य नहीं होती ?

अमूर्त वस्तु को इन्द्रियों के द्वारा देखा और जाना नहीं जा सकता। हमारी इन्द्रियों की शक्ति सीमित है। हम उससे आत्मा को कैसे देख पाएंगे ? किन्तु यह निश्चित है—आत्मा के आंतरिक दोष ही बंधन के हेतु हैं और बंधन संसार का हेतु हैं।

*नो इन्द्रियगेज्ज अमुत्त भावा, अमुत्त भावा वि य होइ निच्चं।*

*अज्जात्थहेउं निययस्स बंधो, संसारहेउं च वयन्ति बंधं।।*

**अटल निश्चय**

आइंस्टीन ने लिखा—हम वैज्ञानिक लोग अहंकार में चूर हो जाते हैं। हम इस बात को भूल जाते हैं—हमारी ज्ञान की सीमा कितनी छोटी है। आखिर हम उन इन्द्रियों पर ही तो निर्भर हैं, जो न जाने कितनी बार हमें धोखा देती हैं।

भृगुपुत्र बोले—पिताजी ! इन्द्रियों की सीमित शक्ति के आधार पर आप यह कह रहे हैं—आत्मा नहीं है। आपका यह कथन सही नहीं है। आप सत्य को अब झुठला नहीं सकते।’

पिता ने सोचा—इतनी विद्या इनमें कहां से आ गई। ये आज आत्मा की बात कर रहे हैं। ये जो कह रहे हैं, वह वास्तव में सही है किन्तु इस सचाई को स्वीकार करूंगा तो मुनि बनने की आज्ञा देनी होगी।

राजपुरोहित राग के कारण सत्य को झुठलाने का प्रयत्न कर रहा था। जब-जब आदमी राग, द्वेष, क्रोध, भय आदि में उपयुक्त होता है तब-तब वह सत्य को झुठलाना चाहता है। वही व्यक्ति सत्य को स्वीकार कर सकता है, जो केवल ज्ञान में उपयुक्त है, शुद्ध चेतना में उपयुक्त है।

भृगुपुत्रों का निश्चय अटल था। वे सत्य का साक्षात् कर चुके थे। भृगु का प्रयत्न विफल हो गया। यह राग पर विराग की परम विजय थी। उसमें अनुगुजित था यह स्वर—*सच्चं लोयम्मि सारभूयं।*

## मुक्ति की प्रेरणा

जिस दुनिया में हम जी रहे हैं, वह नाना रूप वाली है। इसमें नानात्व है, कहीं एकरूपता नहीं है। नाना प्रकार के मनुष्य हैं और नाना प्रकार के व्यवहार हैं। यह नानात्व देखकर सहज प्रश्न होता है—एक आदमी धनी बनना चाहता है, एक व्यक्ति राजनीति में जाना चाहता है, सत्ता हथियाना चाहता है, एक व्यक्ति मुनि बनना चाहता है, एक व्यक्ति वैज्ञानिक बनना चाहता है, ऐसा क्यों ? अगर सब समान हैं तो हमारी प्रवृत्ति एक होनी चाहिए, प्रेरणा एक होनी चाहिए। यह अलगाव और भेद क्यों है? यह प्रश्न स्वाभाविक है।

### अलग-अलग प्रवृत्ति क्यों ?

शिष्य ने आचार्य से पूछा—गुरुदेव ! सब की चाह समान क्यों नहीं है ? व्यक्ति अलग-अलग प्रवृत्ति क्यों करता है ? कोई धनार्थी है, कोई कामार्थी है, कोई भोगार्थी है। यह अर्थित्व का जो भेद है, उसे कौन संप्रवर्तित कर रहा है ?

*कामार्थी वर्तते कश्चित्, मोक्षार्थी कोऽपि वर्तते।*

*अर्थित्वस्य विभेदोऽयं, केनास्ति संप्रवर्तितः॥*

बहुत महत्वपूर्ण प्रश्न है—अर्थित्व भेद का कारण क्या है ? वैज्ञानिक ऐसी क्रियान्विति के स्तर पर आ रहे हैं, जिससे मनुष्य की प्रवृत्ति को नियन्त्रित किया जा सके। वैज्ञानिक प्रयोगशाला में बैठा रहेगा और वह वहां से सभी मनुष्यों के व्यवहार का कंट्रोल करेगा, उनकी प्रवृत्ति का नियमन करेगा।

आचार्य ने कहा—वत्स ! तुम्हारा प्रश्न उचित है। एक व्यवहार होता है और एक प्रेरणा होती है। प्रेरणा अर्थित्व को पैदा करती है और अभिप्रेरणाएं अलग-अलग होती हैं।

### मनोविज्ञान का संदर्भ

मनोविज्ञान ने व्यवहार और अभिप्रेरणा—दोनों की व्याख्या की है। अभिप्रेरणा (Motive) जैसी होती है, आदमी वैसा ही व्यवहार करता है। अभिप्रेरणा और व्यवहार—दोनों में अंतःसंबंध है। प्रेरणाओं का अलग-अलग कार्य है। वे कई प्रकार

की होती हैं। एक अभिप्रेरणा है, जो अवस्था को प्रेरित करती है। एक अभिप्रेरणा व्यवहार को अभिप्रेरित करती है। जो अभिप्रेरणा व्यवहार का हेतु है, वह मनुष्य को शांत एवं संतुष्ट करती है।

मनोविज्ञान ने अभिप्रेरणा की व्याख्या तो की पर व्यक्ति के मन में अभिप्रेरणा क्यों जागती है, इसका कोई समाधान नहीं दिया। किसी व्यक्ति के मन में मोक्ष की प्रेरणा क्यों जागती है ? त्याग और परमार्थ की प्रेरणा क्यों जागती है ? मनोविज्ञान के पास इस प्रश्न का कोई समाधान नहीं है।

### कर्मशास्त्र : मनोविज्ञान

भारतीय चिन्तन परम्परा में कर्मशास्त्र को बहुत मूल्य दिया गया है। यह बहुत बड़ा मनोविज्ञान-शास्त्र है। पश्चिम के मनोविज्ञान और भारतीय कर्मशास्त्र को एक ही शाखा निरूपित किया जा सकता है। कर्मशास्त्र की गहराई में जितने जैन आचार्य गए हैं, उतना कोई दर्शन नहीं जा पाया। कर्मशास्त्र गणित का इतना जटिल विषय है कि गणित का प्रखर विद्वान् हुए बिना कर्मशास्त्र को समझ पाना ही कठिन है।

आचार्य ने शिष्य के प्रश्न को समाधान देते हुए कहा—काम मोह के द्वारा प्रवर्तित है और मोक्ष स्वभाव के द्वारा प्रवर्तित है। इस हेतु भेद के कारण अर्थित्व का भेद होता है।

*मोहप्रवर्तितः कामः, मोक्षः स्वभाववर्तितः।*

*हेतुभेदेन चार्थित्वभेदो लोके प्रविद्यते ॥*

### प्रेरणा और उसका हेतु

व्यवहार, व्यवहार की प्रेरणा और प्रेरणा का हेतु—इन तीनों की मीमांसा आवश्यक है। काम की प्रेरणा और काम का व्यवहार—ये दो बातें ठीक हैं पर यह प्रेरणा क्यों जाग रही है ? एक व्यक्ति के मन में काम की प्रेरणा जाग रही है और दूसरे के मन में वह प्रेरणा नहीं जागती। इसका कारण क्या है ? जिस व्यक्ति के अन्तःकरण में मोह प्रचलित होता है, उसमें काम की प्रेरणा जागती है। काम का व्यवहार, उसकी प्रेरणा और उस प्रेरणा का हेतु मोह—ये तीन तत्त्व मिलते हैं तब पूरी बात समझ में आती है।

### स्वभाव है पारिणामिक भाव

इसी प्रकार मोक्ष का व्यापार और उसकी प्रेरणा का हेतु है आत्मा का स्वरूप—पारिणामिक भाव। मोक्ष की प्रेरणा तब जागती है जब पारिणामिक भाव प्रबल हो जाता है। पारिणामिक भाव ही जीव के जीवत्व को बनाए रखता है। वह शाश्वत

है। यदि यह पारिणामिक भाव नहीं होता, जीवत्व की निरन्तरता नहीं होती तो मोक्ष की प्रेरणा जागती ही नहीं। औदयिक भाव अस्तित्व को इतना ढांप लेता कि कभी मोक्ष की बात उपजती ही नहीं किन्तु भीतर एक ज्योति निरन्तर जल रही है और वह ज्योति है जीव पारिणामिक भाव। वह सदा अपने अस्तित्व को प्रगट करना चाहता है। उसे पुद्गल इष्ट नहीं है। वह पुद्गल को विजातीय मानता है। वह व्यक्ति को बार-बार सावधान करता है—तुम मानते हो, मैं भोग रहा हूँ, तृप्त हो रहा हूँ। खाना खा रहा हूँ, तृप्त हो रहा हूँ। पर तुम इस सचाई पर ध्यान नहीं देते—तृप्त कौन हो रहा है ? वस्तुतः तृप्त हो रहा है पुद्गल। यह मानना भ्रांति है कि मैं तृप्त हो रहा हूँ। तुम इस सचाई को जानो—चारों ओर पुद्गल का साम्राज्य है। पुद्गल ही तृप्त हो रहा है और पुद्गल ही उसे तृप्त कर रहा है—

*पुद्गलैःपुद्गलास्तृप्तिं यान्त्यात्मा पुनरात्मना।  
परतृप्तिसमारोपः ज्ञानिनस्तन्न युज्यते॥*

### कारण दुःख का

आत्मा की भूख अलग प्रकार की है। उसकी भूख न भोजन से तृप्त होती है, न भोग से तृप्त होती है। इन सबसे आत्मा तृप्त नहीं होती किंतु ऐसा समारोप कर दिया गया। जहां समारोप है वहां संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय होता है। आचारांग सूत्र में इस समारोप की ओर ध्यान खींचा गया है—तुम दुःख मिटाने के लिए कार्य कर रहे हो किन्तु और ज्यादा दुःखी बन रहे हो। आदमी सुख के लिए इतना खा लेता है कि वह दुःख का कारण बन जाता है। ज्ञानी के लिए ऐसा करना उचित नहीं है। ज्ञानी होना और तृप्ति का अनुभव करने वाला होना बिल्कुल भिन्न तत्त्व है। ऐसा लगता है—हमारा स्वस्व ज्ञाता का नहीं, भोक्ता का बन गया है। प्रसिद्ध सूक्त है—ज्ञानी जानता है और अज्ञानी भोगता है। अज्ञानी के लिए यह दुःख की चादर द्रोपदी के चीर जितनी लम्बी बन जाती है, जिसका कभी अन्त नहीं होता।

### अर्थित्व भेद : हेतु भेद

अर्थित्व भेद का कारण है हेतु का भेद। एक हेतु है कर्म और एक हेतु है स्वभाव। जीव पारिणामिक हमारा स्वभाव है। जब-जब वह प्रबल होता है, मोक्ष की प्रेरणा जागती है। जब-जब कर्म प्रबल होता है, तब-तब काम की प्रेरणा जागती है। भारतीय साहित्य एवं चिन्तन में दो मूल प्रेरणाएं रही हैं—काम की प्रेरणा और मोक्ष की प्रेरणा। धन तो काम की पूर्ति का साधन-मात्र है। पुरुषार्थ चतुष्टयी का प्रतिपादन किया गया—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। दो प्रेरणाएं हैं काम और मोक्ष। अर्थ काम



की पूर्ति का साधन है और धर्म मोक्ष की पूर्ति का साधन। जब मोक्ष की प्रेरणा जागती है, काम की प्रेरणा सो जाती है। जब काम की प्रेरणा जागती है, मोक्ष की प्रेरणा सो जाती है। मोक्ष की प्रेरणा के जागने का अर्थ है--जीवन में धर्म का अवतरण।

### भृगु परंपरा का चित्रण

भारतीय जीवन के उस युग को देखें, जिस समय भृगुओं की परंपरा विकसित थी। महाभारत, मार्कण्डेय पुराण और उत्तराध्ययन में भृगुपरंपरा का उल्लेख है। महाभारत में कहा गया--भृगु परंपरा ने श्रमण परंपरा, मोक्ष और आत्मा का समर्थन किया है। मार्कण्डेय पुराण में भी पिता और पुत्र का संवाद है। उसमें सारी लौकिक मान्यताओं का निरसन किया गया है। महाभारत शान्तिपर्व का प्रसंग है--उसना भार्गव दानवों को संरक्षण देते थे। प्रश्न हुआ--सब देवताओं का सहयोग कर रहे थे और भार्गव दानवों को संरक्षण दे रहे थे ? यह भृगु की परंपरा है। दानव श्रमण जाति के लोग रहे हैं। बड़ी उच्च परंपरा रही है दानवों की। हम आज दानवों की बात छोड़ दें। एक समय था जब दानव उच्च, सभ्य और शिष्ट जाति थी। उसने आत्मा और मोक्ष की परंपरा का उन्नयन किया था। यह एक तथ्य है--परास्त होने पर शब्द का अपकर्ष हो जाता है। आर्य शब्द का भी बहुत अपकर्ष हुआ है। उत्तराध्ययन का चौदहवां अध्ययन भृगुपुत्र का अध्ययन है। उसमें भारतीय दर्शन की दो परंपराओं का चित्रण है और उस चित्रण में मोक्ष की प्रेरणा का स्वर प्रस्फुटित हुआ है।

## दो परंपराओ के बीच सीधा संवाद

हिन्दुस्तान में दो परंपराएं बहुत पुरानी हैं—ब्राह्मण परम्परा और श्रमण परंपरा। ब्राह्मण परंपरा प्रवर्तक धर्म की परम्परा है, स्वर्गवादी परंपरा है। श्रमण परम्परा निवर्तक धर्म की परम्परा है, इसलिए दोनों के सिद्धान्त और धाराणाएं भिन्न हैं। यह स्वाभाविक है—स्वर्गलक्षी चिन्तन की धारणा एक प्रकार की होगी और मोक्षलक्षी चिन्तन की धारणा उससे भिन्न प्रकार की होगी।

### अन्तर्द्वन्द्व

भृगु पुत्रों के मन में मोक्ष की प्रेरणा जग गई। उन्होंने पिता से कहा—पिताजी! हम मुनि बनना चाहते हैं।

‘किसलिए?’

‘मोक्ष पाने के लिए।’

पिता ने सोचा—यह परिवर्तन कैसे आया? अकस्मात् ऐसा कैसे हुआ? इनका चिन्तन कैसे बदल गया?

पिता और पुत्रों के मन में एक अन्तर्द्वन्द्व चला। उस अन्तर्द्वन्द्व ने उनके अन्तर्मानस को उद्वेलित कर दिया। उत्तराध्ययन सूत्रकार ने उस अन्तर्द्वन्द्व को बहुत थोड़े शब्दों में प्रस्तुत किया है। उन शब्दों के पीछे न जाने कितना चिन्तन रहा होगा। सूत्र का अर्थ ही है सूचना देना। सूत्रकार ने एक सूचना देकर अन्तर्द्वन्द्व का एक संकेत प्रस्तुत कर दिया। आज उस अन्तर्द्वन्द्व की व्याख्या की जा सकती है।

### जटिल समस्या है परिवर्तन

पिता का अन्तर्द्वन्द्व यह था—क्या आदमी इतना जल्दी बदल जाता है? दो घंटे पहले घर से बाहर गए तब तक कुछ नहीं था। दो घंटे बाद वापस आए और सब कुछ बदल गया। क्या इतनी जल्दी कोई व्यक्ति बदल सकता है? यदि आदमी इतना जल्दी बदल जाए, परिवर्तन का ऐसा सूत्र हाथ लग जाए तो चमत्कार घटित हो जाए। बड़े-बड़े वैज्ञानिक बदलने के सूत्र की खोज में लगे हुए हैं। अनेक दशकों से परिवर्तन के सूत्र की खोज चल रही है। वे छोटे जीवों और प्राणियों को बदलने में सफल भी

हुए हैं, किन्तु मनुष्य को बदलने के सूत्र अभी तक हाथ नहीं लगे हैं। दुनिया में यदि सबसे जटिल प्राणी कोई है तो वह है मनुष्य। मनुष्य का मस्तिष्क सबसे जटिल है।

### प्रश्न है धारणा का

प्रत्येक व्यक्ति के मन में एक मान्यता या धारणा होती है। उसे चिरकाल से पोषण मिलता रहता है। यह सद्यः विलीन हो सकती है। ऐसा चिन्तन किसी समझदार व्यक्ति को नहीं करना चाहिए।

*मान्यता धारणा यास्ति, चिरकालेन पोषिता।*

*सद्यः सा विलयं गच्छेद्, नेति चिन्त्यं विचक्षणैः॥*

प्रत्येक व्यक्ति के मन में अपनी एक मान्यता होती है। कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं है, जो मान्यता बनाए न बैठा हो। ऐसे लोग, जो समझदार नहीं माने जाते, वे कहते हैं—मैं ऐसा मानता हूँ, मेरी ऐसी मान्यता है। पहले मान्यता होती है, फिर धारणा बन जाती है। व्यक्ति उस बात को मजबूती के साथ पकड़ लेता है, छोड़ता नहीं है। जो चिरकाल से पोषित होती है, वह अस्थिर और मज्जागत हो जाती है।

### संस्कार की समस्या

ज्ञातासूत्र का प्रसंग है। एक सेठ की लड़की की शादी करने के लिए भिखारी को लाया गया। वह विषकन्या थी। विषकन्या के साथ कौन शादी करता ! भिखारी तैयार हो गया। उसे स्नान करवा कर नए कपड़े पहनाए गए। उसके पास जो भिक्षा का पात्र था, उसे फेंकने लगे। भिखारी चिल्लाया—इसे मत फेंको। उसके साथ संस्कार जुड़ गया था। कर्मचारी बोले—अरे ! कैसी मूर्खता की बात करते हो ! सेठ अपनी कन्या का विवाह तुम्हारे साथ कर रहा है। वह तुम्हें प्रचुर धन देकर धनपति बना देगा। फिर भिक्षापात्र की जरूरत क्या रहेगी ? भिखारी इतना कहने पर भी शांत नहीं हुआ। उसका रोना चिल्लाना चलता रहा। सेठ उसकी चिल्लाहट को सुनकर वहां पहुंच गया। कर्मचारियों ने सेठ को सारी स्थिति से अवगत कराया। सेठ ने कहा—भिक्षापात्र को मत फेंको। उसे इसके पास ही रहने दो। इतने वर्षों से इस भिक्षापात्र के साथ जो गहरा संस्कार जुड़ा हुआ है, वह सहसा कैसे छूट सकता है ?

जिस भिखारी को अपार संपत्ति मिल रही थी, वह भी भिक्षापात्र को फोड़ना नहीं चाहता, छोड़ना नहीं चाहता। इस स्थिति में हमने जो मान्यताएं और धारणाएं बना रखी हैं, चिरकाल से जिन्हें पोषण मिल रहा है, वे सहसा कैसे टूट सकती हैं ? बहुत कठिन प्रश्न है परिवर्तन का।

### राजपुरोहित के तर्क

राजपुरोहित ने सोचा—चिरकाल से पोषित धारणाएं एकाएक कैसे टूट गई ?

यह परिवर्तन कैसे हुआ ? अब क्या किया जाए ? मुझे अपनी मान्यताओं के द्वारा ही इनके मानस को बदलना होगा।

राजपुरोहित बोला—‘कुमारो ! तुम मुनि बनना चाहते हो—पर जरा सोचो अभी तुम्हें अध्ययन करना है। हम ब्राह्मण हैं। हमारी अपनी एक परम्परा है। तुम उसके अनुसार चलो, वेदों को पढ़ो। ब्राह्मणों को भोजन कराओ, स्त्रियों का भोग करो। पुत्र उत्पन्न करो। वेदों को जानने वाले इस प्रकार कहते हैं कि जिसके पुत्र उत्पन्न नहीं होता, उसकी गति नहीं होती।’

*अह तायगो तथ मुणीण तेसिं, तंवस्सवाघायकरं वयासी।*

*इयं वयं वेयविओ वयति, जहा न होई असुयाण लोगो॥*

*अहिज्ज वेए परिविस्सविण्णे, पुत्ते पडिट्ठप्प गिहंसि जाया।*

*भोच्चाण भोए सह इत्थियाहिं आरण्णगा होइ मुणी पसत्था॥*

अभी तुम किशोर हो। जब तक युवा रहो, तब तक भोग भोगो। यह अवस्था भोग भोगने की है, मुनि बनने की नहीं। जब बूढ़े बनो, तब आरप्यक मुनि बन जाना।  
उत्तर भृगुपुत्रों का

पिता के ये तर्क पुत्रों को प्रभावित नहीं कर सके। उन्होंने कहा—‘वेद पढ़ने पर भी त्राण नहीं होता और पुत्र भी त्राण नहीं देते। ये काम-भोग क्षण भर सुख और विरकाल दुःख देने वाले हैं। ये संसार-मुक्ति के विरोधी हैं और अनर्थों की खान हैं। जिसे पुत्र, स्त्रियां, काम-भोग आदि कामनाओं से मुक्ति नहीं मिलती, वह अतृप्ति की अग्नि में संतप्त रहता है। दूसरों के लिए प्रमत्त होकर धन की खोज करता हुआ वह जन्म और मृत्यु को प्राप्त होता रहता है’—

*वेया अहीया न भवति ताणं,*

*भुत्ता दिया नित्ति तमं तमेण।*

*जाया य पुत्ता य न हवति ताणं,*

*को णाम ते अणुमन्नेज्ज एयं॥*

*खणमेत्त सोक्खा बहुकालदुक्खा,*

*पगाम दुक्खा अणिगामसोक्खा।*

*संसारभोक्खस्स विपक्खभूया,*

*खाणी अणत्थाण उ काम भोगा॥*

*परिव्वयंते अणियत्तकामे,*

*अहो य राओ परितप्पमाणे।*

*अन्नप्पमन्ते धणमैसमाणे,*

*पप्पोत्ति मच्चुं पुरिसे जरं च॥*

राजपुरोहित कुमारों के मानस को बदल नहीं पाया। उनकी चेतना बदल चुकी थी। हमारी चेतना या तो बदलती नहीं है और बदल जाती है तो उसे कोई रोक नहीं सकता।

### बदलाव : दो मार्ग

बदलने के दो मार्ग हैं—निसर्ग और अधिगम। आदमी ने पिछले जन्म में ऐसा ही कोई क्षयोपशम किया होता है कि वह एकदम बदल जाता है। न उपदेश, न मार्गदर्शन, न चर्चा, न वार्ता, कुछ भी नहीं होता, किन्तु आदमी बदल जाता है। यह नैसर्गिक बदलाव है। इसमें बाहरी प्रयत्न की जरूरत नहीं होती। दूसरा मार्ग है अधिगम का। ज्ञान, अभ्यास, पुरुषार्थ और प्रयत्न से बदलाव आता है। निसर्ग से बदलाव वाली घटना हजारों में एक या दो घटित होती है। इसे आपवादिक बात कह सकते हैं सामान्य मार्ग है अधिगम का। आदमी बदलता है और वह प्रयत्न से बदलता है। वह सहसा नहीं बदलता। एक क्रम और पद्धति-सापेक्ष होता है बदलाव। निसर्ग में कोई पद्धति नहीं होती। वह अपथ का पथ है। आकाश में कोई मार्ग नहीं बनता। भूमि पर पदचिह्न बनते हैं, मार्ग और पगडडियां बनती हैं।

### परिवर्तन की पद्धति

परिवर्तन की एक पद्धति है और उस पद्धति को इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

*अभीप्सान्वेषणं मार्गः, सहायो भावना तथा।*

*दृढनिश्चय इत्येते हेतवः परिवर्तने॥*

परिवर्तन में ये छह तत्त्व हेतु बनते हैं—

- |            |                 |
|------------|-----------------|
| १. अभीप्सा | ४. सहाय         |
| २. अन्वेषण | ५. भावना        |
| ३. मार्ग   | ६. दृढ़ निश्चय। |

### अभीप्सा

परिवर्तन का पहला सूत्र है—अभीप्सा का जागना। व्यक्ति के मन में सबसे पहले यह अभीप्सा जाग जाए—मुझे बदलना है। जब तक यह अभीप्सा नहीं जागती, व्यक्ति को सम्मोहित किया जा सकता है, नींद की गोलियां देकर सुलाया जा सकता है, मूर्च्छा में लाया जा सकता है, पर बदला नहीं जा सकता। बदला तभी जा सकता है जब अभीप्सा जागे। आचार्य आदेश देकर कोई काम करवा सकते हैं पर बदल नहीं सकते। आचार्य यह आदेश दे सकते हैं—खड़े हो जाओ। विहार कर जाओ, अमुक स्थान पर

चले जाओ। शिष्य को वैसा करना होता है पर यह बदलाव नहीं है। आचार्य भिक्षु के शब्दों में शिष्य को खड़े-खड़े धूप में सुखाया जा सकता है, यह आदेश के द्वारा संभव है।

### समर्पण : अपवाद

आचार्यवर मेवाड़ संभाग की यात्रा के दौरान एक गांव में पधारे। दो भाइयों में अनबन चल रही थी। आचार्यवर ने दोनों भाइयों को समझाया—इस आपसी झगड़े को मिटा दो। परस्पर कलह करना ठीक नहीं है। हम तुम्हारे गांव में आए हैं, इस अवसर को हाथ से मत जाने दो। वह गांव पहाड़ों की घाटियों के बीच था। चारों ओर चट्टानें ही चट्टानें, मध्य में गांव। वह आदमी गांव की चट्टान जैसा ही मजबूत था। उसने आचार्यवर से निवेदन किया—गुरुदेव ! मैं आपका भक्त हूँ, श्रावक हूँ। आपके चरणों में पूर्णतः समर्पित हूँ। आप मुझे धूप में सुखाएं तो खड़ा-खड़ा सूख जाऊंगा, पर यह झंझट नहीं मिटाऊंगा।

यह कैसा विपर्यास है ! कुछ लोग समर्पण की ऐसी दुहाई देते हैं। आप जो कहेंगे, वह कर लूंगा पर इस बात को नहीं मानूंगा। यह कैसा समर्पण है ! इस स्थिति में समर्पण की परिभाषा क्या हो सकती है ? अपवाद होगा तो समर्पण नहीं और समर्पण होगा तो अपवाद नहीं। अपवाद और समर्पण—दोनों एक साथ नहीं चल सकते। समर्पण में कोई अपवाद नहीं हो सकता।

‘यह कैसा समर्पण है’ आचार्यवर ने यह कहकर बातचीत को वहीं समाप्त कर दिया।

दो घंटे बीते। वह भाई पुनः आचार्यवर के पास आया। उसने निवेदन किया—महाराज ! मैंने बड़ी भूल की, अब आप माफ करें। अब मैं पूरा समर्पित हूँ। आपका जो निर्देश होगा, वैसा ही करूंगा।

समर्पण प्रस्तुत हुआ और झगड़ा मिट गया।

### स्वयं के हाथ में है बदलाव

आदमी को तभी बदला जा सकता है जब वह बदलने के लिए प्रस्तुत हो जाए। यह तथ्य है—आदमी को आदेश दिया जा सकता है पर उसे बदला नहीं जा सकता। तीर्थंकर उपदेश देते हैं, इच्छा का प्रयोग भी करते हैं और आदेश की भाषा भी बोलते हैं, फिर भी व्यक्ति को बदल नहीं सकते। बदलना व्यक्ति के स्वयं के हाथ में है।

जैन धर्म में कितना बड़ा सत्य स्वीकार किया गया है—तीर्थंकर भी किसी को जबर्दस्ती बदल नहीं सकते। इसका अर्थ है—हृदय परिवर्तन का जितना महत्त्व अहिंसा

के क्षेत्र में है उतना कहीं नहीं है। महावीर ने इस सचाई को उजागर किया। इन हजारों वर्षों में इस सत्य के सबसे प्रखर प्रवक्ता हुए हैं आचार्य भिक्षु। आचार्य भिक्षु ने हृदय परिवर्तन पर जितना बल दिया, इस संदर्भ में जितना लिखा है उतना किसी अन्य आचार्य ने लिखा है या नहीं, यह आज भी अन्वेषणीय है। आचार्य भिक्षु ने कहा—कोई किसी को बदल नहीं सकता। जब तक व्यक्ति का हृदय नहीं बदलता, परिवर्तन का होना संभव ही नहीं है।

परिवर्तन का पहला सूत्र है—हृदय परिवर्तन, अभीप्सा का जाग जाना। व्यक्ति के मन में यह अभीप्सा जाग जाए कि मुझे बदलना है। यह अभीप्सा की जागृति परिवर्तन का पहला आधार सूत्र है।

### अन्वेषण

परिवर्तन का दूसरा हेतु है—अन्वेषण। जब अभीप्सा तीव्र बनती है, तब व्यक्ति अन्वेषण करता है। वह खोज करता है—कैसे बदलूं ? बदलने का मार्ग क्या है ? हम आध्यात्मिक साहित्य को देखें। बौद्ध-धर्म, जैन-धर्म, झेन-सम्प्रदाय, जो जापान में चलता है, का इतिहास देखें। व्यक्ति गुरु की खोज में कहां-कहां गया है ? कितने-कितने कष्ट सहे हैं—अन्वेषण शुरू होता है, आदमी भटकता रहता है, खोज चलती रहती है तो गुरु उपलब्ध हो जाता है। आचार्य भिक्षु ने भी अन्वेषण कम नहीं किया था। उन्होंने अन्वेषण किया, करते रहे और सत्य को उपलब्ध हो गए।

### मार्ग, सहाय और भावना

तीसरा हेतु है—मार्ग का उपलब्ध होना। जो खोजता है, उसे मार्ग मिल जाता है। जिसने खोजा है, उसने पाया है। जब मार्ग मिलता है, तब कोई सहायक भी मिल जाता है, गुरु भी मिल जाता है। सहायक वह हो, जिसकी मेधा सूक्ष्म हो, जो सूक्ष्म अर्थों को जानने वाला हो। ऐसे गुरु या सहायक की उपलब्धि परिवर्तन का चौथा हेतु है।

परिवर्तन का पांचवा हेतु है—भावना। भावना का अर्थ कोरा रटना नहीं है। सोचना, चिन्तन करना, पुनः पुनः आवृत्ति करना, इसका नाम है भावना। यह परिवर्तन का महत्वपूर्ण हेतु है।

### दृढ़ निश्चय

परिवर्तन का छठा हेतु है—दृढ़ निश्चय। व्यक्ति में यह निश्चय जागे—मुझे बदलना है। यह चेतना जाग जाए—करूंगा या मरूंगा। बुद्ध ने निश्चय किया—जब तक बोधि नहीं मिलेगी, इस आसन से उठूंगा नहीं, चाहे शरीर सूख जाए। ऐसा दृढ़ निश्चय पैदा होता है। तब परिवर्तन घटित होता है।

## हृदय परिवर्तन का अर्थ

अक्सर एक प्रश्न पूछा जाता है—व्यक्ति बदलता क्यों नहीं ? अमुक आदमी में परिवर्तन क्यों नहीं आया ? कल जिसने परिवर्तन का प्रयोग शुरू किया, वह आज कैसे बदल जाएगा? बदलना एक प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया से गुजरने पर ही बदलाव संभव बनता है। बदलना कोई सहज घटना नहीं है। बौद्धिक विकास करना उतना जटिल नहीं है, जितना जटिल है बदलना। एक व्यक्ति बौद्धिक विकास बहुत कर सकता है, पर हृदय-परिवर्तन नहीं कर पाता। सबसे कठिन काम है हृदय-परिवर्तन करना। हृदय का प्रत्यारोपण करते हैं। यह पपिंग करने वाले हृदय का परिवर्तन है। एक वह हृदय है, जो मस्तिष्क में है। उसका परिवर्तन करना बहुत जटिल है। हृदय-परिवर्तन का अर्थ है—मस्तिष्कीय परिवर्तन। एक हृदय का काम है पपिंग करना, यह भाव-परिवर्तन के लिए उत्तरदायी नहीं है। जिस हृदय-परिवर्तन की चर्चा की जा रही है, उसका अर्थ है—भावधारा का परिवर्तन। भावधारा को बदलने की एक प्रक्रिया है। उसके बिना परिवर्तन की संभावना नहीं की जा सकती।

## बदलाव कब ?

परिवर्तन की अनिवार्य शर्त है—गहरी प्यास जगे। शिष्य ने गुरु से प्रार्थना की—गुरुदेव! मैं साधना करना चाहता हूँ, आप कोई मार्ग बताएं। गुरु शिष्य को साथ ले तालाब पर आया। दोनों तालाब के अन्दर उतरे। गुरु शिष्य को तालाब में डुबाने लगा। शिष्य चिल्लाया—गुरुदेव! मैं डूब रहा हूँ! गुरु ने उसका नाक और मुंह बन्द कर दिया। वह छटपटाने लगा। कुछ क्षण बाद गुरु ने शिष्य को पानी से बाहर निकाला। शिष्य बोला—गुरुदेव! मैं आया था साधना का मार्ग जानने। आपने यह क्या किया ? गुरु ने मुस्कराते हुए कहा—वत्स! तुम्हारी कसौटी की है। शिष्य ने पूछा—गुरुदेव! यह क्या कसौटी है ? गुरु ने कहा—जब मैंने तुम्हारा नाक और मुंह बन्द किया तब कैसा लग रहा था ? शिष्य बोला—उस समय ऐसी छटपटाहट और अकुलाहट हुई कि मैं बता नहीं सकता। गुरु ने कहा—वत्स ! जिस दिन ऐसी अकुलाहट तुम्हारे मन में पैदा होगी, उस दिन साधना का मार्ग मिल जाएगा।

## संवाद दो परम्पराओं के बीच

इस प्रकार की अभीप्सा का जागना बहुत कठिन है। हजारों लोग प्रवचन सुनते हैं, सत्-साहित्य पढ़ते हैं, साधना के महत्त्व को जानते हैं पर उन सबमें अभीप्सा जागती नहीं है। विरल व्यक्तियों में ही यह अभीप्सा जागती है। भृगुपुत्रों के मन में ऐसी ही अभीप्सा जागी और वे विरक्त हो गए।

राजपरोहित भृगु और उनके पुत्रों के बीच लम्बा संवाद चला। संवाद केवल



पिता-पुत्र के बीच ही नहीं, दो परम्पराओं के बीच था। पिता वैदिक धर्म से प्रभावित थे और पुत्र श्रमण परम्परा से। संवाद में वे अपनी-अपनी परम्पराओं का प्रतिनिधित्व कर रहे थे।

राजपुरोहित भृगु ने कहा--‘तुम ब्राह्मण-कुल में पैदा हुए हो इसलिए वेदों को पढ़ो।’

पुत्र बोले--पिताजी ! आप जानते हैं--निर्वाणवादी के लिए वेद त्राण का कारण नहीं होते।’

वेदों का बड़ा महत्त्व है। वह बहुत बड़ी ज्ञान राशि है। आज भी भारतीय साहित्य में वेद को प्राचीन साहित्य माना जाता है। गीता में कहा गया है--वेदों में तीन गुणों का वर्णन मिल जाएगा। समाज के महत्त्वपूर्ण सूत्र उसमें उपलब्ध हैं। राष्ट्र की व्यवस्था के सूत्र भी उसमें हैं। विज्ञान के बहुत से संकेत सूत्र हैं किन्तु निर्वाण की बात वेद नहीं बता सकते।

भृगुपुत्रों ने कहा--‘हम दोनों भाई निर्वाण चाहते हैं। वे हमारे क्या काम आएंगे? वेद पढ़ना हमारे लिए सार्थक नहीं होगा।’

### मौन सम्मति बन गया

भृगुपुत्रों ने अपने पिता की बातों से असहमति व्यक्त करते हुए कहा--‘आप कहते हैं-- ब्राह्मण भोज करो। ब्राह्मणों को दान-दक्षिणा दो। भोग भोगो, संतान पैदा करो। ये सारी बातें अन्धकार की ओर ले जाने वाली हैं, बन्धन का हेतु हैं। हम उस मार्ग पर बढ़ना चाहते हैं, जो मोक्ष का हेतु है। यदि आप निर्वाण प्राप्ति में सहायक होने वाली कोई बात बताएं तो हम उसे मानने को तैयार हैं। आप हमें भोग भोगने की प्रेरणा दे रहे हैं। क्या आप नहीं जानते हैं--भोग क्षणिक सुख देते हैं, बहुत काल तक दुःख देते हैं। क्या कोई पिता अपने पुत्र को ऐसा प्रलोभन दे सकता है, जिसमें सुख कम हो और दुःख अधिक। जो थोड़ा सुख देकर बहुत दुःख देने वाले हैं, उन काम-भोगों में हमें नहीं फंसना है। हमें उस निर्वाण के सुख को प्राप्त करना है, जो कभी दुःख में नहीं बदलता। शाश्वत सुख का स्थान है मोक्ष। हमारा लक्ष्य वही है।

राजपुरोहित भृगु पुत्रों के तर्क सुनकर स्तब्ध रह गया। उसने सोचा--आज सारा चक्का उलटा घूम रहा है। मैं सोचता था--मैं इनका पिता हूँ और ये मेरे पुत्र हैं। पर आज ऐसा लग रहा है--ये मेरे पिता बन गए हैं और मैं इनका पुत्र। सचमुच चक्का घूम गया, भृगुपुत्रों को समझाने वाला पिता स्वयं समझ गया। वह निःशब्द हो गया। उसका मौन सम्मति बन गया--मौन सम्मति लक्षणम् और उनके बीच हुआ वार्तालाप बन गया--दो परम्पराओं के बीच सीधा संवाद।

## समस्या का मूल : परिग्रह

एक शिष्य अध्यात्म और विज्ञान का तुलनात्मक अध्ययन कर रहा था। उसने मनोविज्ञान को भी पढ़ा। उसके मन में एक प्रश्न उभरा। वह उसे समाहित नहीं कर पाया। उसने गुरु से जिज्ञासा की—गुरुदेव ! मनोविज्ञान का प्रवर्तक फ्रायड कहता है—हमारी सारी प्रवृत्तियों का मूल है—सेक्स (कामवृत्ति)। क्या यह मत सही है ? गुरु ने कहा—हम अनेकांतवादी हैं इसलिए उसे अस्वीकार न करें किन्तु सीधा स्वीकार भी न करें। यह एक सापेक्ष सत्य है। पूर्ण सत्य नहीं है। पूरी सचाई के लिए कर्मशास्त्र का अध्ययन करना होगा। गुरु ने मोहनीय कर्म का विवेचन करते हुए समझाया—मूलवृत्ति लोभ है। शेष वृत्तियां इससे उपजी हुई हैं। इसे हम लोभ कहें, राग कहें या परिग्रह। यही मूल वृत्ति है।

*एका वृत्तिर्भवेद् मूलं, लोभो रागः परिग्रहः।*

*अधिकारोऽयवा वाच्यः, परास्तेनोपेजीविताः॥*

लोभ है तो क्रोध आता है। क्रोध की पृष्ठभूमि में छिपा रहता है लोभ। अभिमान क्या है? वह भी लोभ का उपजीवी है। लोभ है तो माया होती है।

### अधिकार की भावना

शिष्य ने जिज्ञासा की—गुरुदेव ! क्या मनोविज्ञान की यह मत गलत है—काम मूल वृत्ति है।

गुरु ने कहा—वत्स ! काम क्या है ? वह लोभ की उपजीवी वृत्ति है। सब नौकषाय कषाय की उपजीवी वृत्तियां हैं। लोभ और काम—दोनों जुड़े हुए हैं। निर्युक्तिकार ने काम के दो प्रकार किए हैं—इच्छा काम और मदन काम। मदनकाम (सेक्स) मूल नहीं है, मूल है इच्छा काम।

आचार्य ने कहा—फ्रायड ने जो कहा है, वर्तमान मनोविज्ञान में वह अवधारणा भी बदल गई है। वर्तमान मनोवैज्ञानिक यह मानने लग गए हैं—मूल वृत्ति सेक्स नहीं है। मूल वृत्ति है अधिकार की भावना। वैज्ञानिकों ने एक प्रयोग किया। ऐसा कृत्रिम तालाब बनाया, जिसमें तापमान को नीचे गिरा दिया गया। तालाब में जितने जलचर

प्राणी थे, उनकी सारी कामवृत्ति समाप्त हो गई। सेक्स का सम्बन्ध व्यक्ति के तापमान से है। तापमान के नीचे गिर जाने पर भी अधिकार की भावना उनमें बनी रही। इस विषय पर वैज्ञानिकों ने बहुत गहरा अध्ययन किया है, उनका निष्कर्ष है—अपने अधिकार को, अपने निवास-स्थान को छोड़ना कोई पसन्द नहीं करता।

### आगार : अनगार

दो महत्त्वपूर्ण शब्दों का चुनाव किया गया—आगार और अनगार।

अनगार वह है, जिसने अधिकार की वृत्ति को समाप्त कर दिया, घर को छोड़ दिया। अनगार का अर्थ है—मूल मनोवृत्ति पर प्रहार करने वाला। चिड़िया घोंसला बनाती है। पशु घूरी बनाते हैं। चिड़िया पेड़ पर बैठेगी और एक प्रकार की आवाज करेगी, उसका अर्थ है—इस टहनी पर मेरा अधिकार हो गया है। अब कोई इस पर बैठने का प्रयास न करे। कुछ पशु ऐसे हैं, जिनमें गंध की ग्रंथि होती है। शेर के मूत्र में गंध होती है। सब पशु समझ जाते हैं—वहां शेर रहता है, उस ओर नहीं जाना है। शेर अपना अधिकार जताता है गंध के द्वारा।

छोटे से छोटे प्राणी में अपना घर बनाने की वृत्ति है, अपना अधिकार जताने की मनोवृत्ति है। बहुत कठिन बात है आगार को त्यागना। प्राणी की मूल मनोवृत्ति है घर पर अधिकार करना। जिसने यह अधिकार छोड़ दिया, वह अनगार हो गया, उसने एक नई यात्रा शुरू कर दी।

### परिग्रह : तीन प्रकार

जैन तीर्थंकरों ने दो मूल दोष बतलाए—आरंभ और परिग्रह। इनमें भी मूल है परिग्रह। हमारी धारणा पदार्थ पर अटकी हुई है। पदार्थ परिग्रह है पर मूल परिग्रह नहीं है। परिग्रह के तीन प्रकार हैं—कर्म, शरीर और पदार्थ। जड़ में है कर्म। जहां से मूर्च्छा और अधिकार की भावना आ रही है। दूसरा परिग्रह है शरीर। तीसरा परिग्रह है पदार्थ—घन, धान्य, मकान आदि। आदमी घर छोड़कर भी शरीर की आसक्ति को नहीं छोड़ता तो वह परिग्रह को नहीं छोड़ता। जो शरीर की आसक्ति को छोड़ देता है, वह होता है पूरा अनगार। जब शरीर की आसक्ति छूटेगी तब दूसरे परिग्रह छूटेंगे इसीलिए जैन आचार्यों ने भेद-विज्ञान पर बहुत बल दिया। हम भेद विज्ञान का अभ्यास करें, परिग्रह की वृत्ति पर प्रहार होगा। यह भेद विज्ञान अनेक बीमारियों की चिकित्सा भी है, पर इसके लिए प्रयोग करना आवश्यक है, अन्तर के रसायनों को बदलने की प्रक्रिया का अभ्यास करना अपेक्षित है। विज्ञान कहता है—एक लाख से ज्यादा प्रकार के प्रोटीन हमारे शरीर के भीतर बनते हैं। रसायनों से भरा पड़ा है हमारा शरीर।

इतना बड़ा कारखाना शरीर के भीतर है, उसको चलाने वाला चाहिए, उसका स्विच बोर्ड मिलना चाहिए। न जाने कितना भीतर पड़ा है। हम यह अध्ययन करें कि कैसे इन अध्यात्म के रहस्यों को समझने का प्रयत्न करें ? जब यह प्रयत्न क्रियान्वित होगा, सारी धारणाएं बदल जाएंगी।

### हिंसा मूल नहीं है

परिग्रह की बात छूटती है, अध्यात्म की चेतना अपने आप जाग जाती है। जब तक आदमी परिग्रह के अधिकार को पकड़े रखेगा, तब तक लोभ प्रासंगिक बना रहेगा, हिंसा कभी समाप्त नहीं होगी। हिंसा मूल नहीं है, मूल है परिग्रह। आचारांग सूत्र में भगवान महावीर ने हिंसा के जितने कारण बतलाए हैं, उनमें मुख्य कारण है—लोभ, परिग्रह की मनोवृत्ति। म्यूनिख (पश्चिम जर्मनी) के चिड़ियाघर के डायरेक्टर ने बताया—जब बंदर को जंगल से लाते हैं तब वह यहां रहना पसन्द नहीं करता किन्तु जब वह पिंजड़े पर अपना अधिकार जमा लेता है तब वह अन्दर किसी को घुसने नहीं देता। यह अधिकार और परिग्रह की भावना से प्रभावित प्रवृत्ति है। यह छूटती है तो सब कुछ छूट जाता है अन्यथा कोई भी पदार्थ राग या मूर्च्छा का कारण बन जाता है।

### प्रश्न है मूर्च्छा का

पात्र का रंगने का प्रसंग था। मुनि वेणीरामजी ने आचार्य भिक्षु से कहा—इसे हिंगलू से रंगना अच्छा नहीं है, इसे केलहू से रंग लें, इससे मूर्च्छा नहीं आएगी। आचार्य भिक्षु ने कहा—एक खपरेल कुछ खराब है और एक खपरेल कुछ अच्छा है। तुम कौन सा लोगे? मुनि वेणीरामजी बोले—जो अच्छा है, वही लूंगा। आचार्य भिक्षु ने कहा—तब तो खपरेल भी मूर्च्छा का कारण बन गया।

प्रश्न वस्तु का नहीं है, प्रश्न है—मूर्च्छा का।

### राजा का प्रतिबोध

राजा इषुकुमार को सूचना दी गई—राजा पुरोहित भृगु अपनी पत्नी एवं पुत्रों के साथ अकूत धन-वैभव को छोड़कर प्रव्रजित हो गए हैं। उनकी संपत्ति का वारिस कोई नहीं है। जिस संपत्ति का कोई मालिक नहीं होता, उस पर राज्य का अधिकार होता है। राजा ने उस संपत्ति को राज्य के कोषागार में लाने का आदेश दे दिया। महारानी कमलावती ने इस राजाज्ञा को सुना। उसने राजा को प्रतिबोध देते हुए कहा—राजन्! वमन खाने वाले पुरुष की प्रशंसा नहीं होती। तुम ब्राह्मण के द्वारा परित्यक्त धन को लेना चाहते हो, यह क्या है ? यदि समूचा जगत् मिल जाए या सारा धन तुम्हारा हो

जाए तो वह तुम्हारी इच्छापूर्ति के लिए पर्याप्त नहीं होगा। वह तुम्हें कभी त्राण भी नहीं दे सकेगा।

राजन्! एक दिन इस धन और कामनाओं को छोड़कर मरना होगा। एक धर्म ही त्राण है, दूसरा कोई त्राण नहीं दे सकता। जैसे बंधन को तोड़कर हाथी अपने स्थान (विंध्यारवी) में चला जाता है वैसे ही कामनाओं को छोड़कर संयम और धर्म का आचरण कर हमें अपने स्थान (मोक्ष) में चले जाना चाहिए। यह पथ्य मैंने ज्ञानियों से सुना है।

वंतासी पुरिसो रायं! न सो होइ पसंसिओ।  
 ब्राह्मणेण परिच्चत्तं, धनं मादाउमिच्छसि॥  
 सव्वं जगं जइ तुहं, सव्वं वा वि धणं भवे।  
 सव्वं पि ते पज्जत्तं, नेव ताणाय तं तव॥  
 मरिहिसि रायं जया तया वा, मनोरमे कामगुणं पहाय।  
 एक्को धम्मो नरदेव! ताणं, न विज्जई अन्नमिहेह किञ्चि॥  
 नागोव्व बंधणं छित्ता, अप्पणो वसहिं वए।  
 एयं पत्थं महारायं! उसुयारित्ति मे सुयं॥

### रूपान्तरण

महारानी कमलावती का उपदेश सुन राजा इषुकुमार प्रतिबद्ध हो गया। राजा इषुकुमार और रानी कमलावती—दोनों संयम के पथ पर प्रस्थित हो गए। भृगुपुत्रों का वैराग्य माता-पिता एवं राजा-रानी के रूपान्तरण का हेतु बन गया। उनके वैराग्य और संकल्प ने मूर्च्छा की मनोवृत्ति को पराजित कर दिया। अपरिग्रह और अमूर्च्छा की चेतना के आलोक से वे ज्योतिर्मय बन गए, समस्याओं का अंधकार विलीन हो गया। वह आलोक आज भी दुनिया को प्रकाशित करने वाला है, मूर्च्छा से विरत होने की प्रेरणा देने वाला है।

## साधुत्व की कसौटी

### शिष्य की जिज्ञासा

आचार्यश्री की सन्निधि में ध्यान का प्रयोग शुरू हुआ। ध्यान के प्रारम्भ में एक सूत्र दिया गया—‘क्वाहं’ मैं कहां हूँ, इस विषय पर विचय करो। इस पहेली को बुझाओ कि मैं कहां हूँ। मैं कौन हूँ—कोऽहं के स्थान पर मैं कहां हूँ—क्वाऽहं का ध्यान। आधा घंटा बीता, ध्यान संपन्न हो गया। शिष्य ने जिज्ञासा की—

*प्रश्न : कोऽहमिति ख्यातः क्वाहमित्यस्ति नो श्रुतः।*

गुरुदेव ! मैं कौन हूँ, यह प्रश्न बहुत विख्यात है। इस प्रश्न को अनेक बार सुना है। पर मैं कहां हूँ, इस प्रश्न को कभी सुना ही नहीं, यह नवीन प्रश्न है। मैं कहां हूँ, इसमें खोजना क्या है? सबका अपना-अपना स्थान है, अपना-अपना घर है, अपनी अपनी विशेषताएँ हैं। प्रत्येक व्यक्ति जानता है—मैं कहां हूँ। फिर यह प्रश्न प्रस्तुत क्यों किया ?

### आचार्य का समाधान

आचार्य ने कहा—वत्स ! मैं कौन हूँ, यह जानना जितना जरूरी है, उतना ही जरूरी यह जानना है कि मैं कहां हूँ। मैं कहां हूँ यह जाने बिना व्यक्ति यह निश्चय कैसे करेगा—मुझे कहां जाना है। व्यक्तिकी चेतना कहां है, इसी के आधार पर समझा जा सकता है कि वह कौन है ?

एक प्रश्न है—साधु कौन है ? तैजस केन्द्र का अतिक्रमण करके ही कोई व्यक्ति साधु बन सकता है, सम्यक् दृष्टि बन सकता है, श्रावक या धार्मिक बन सकता है।

*तैजसं समतिक्रम्य, चैतन्यं साधुतां व्रजेत्।*

जब तंक् चेतना तैजस केन्द्र के आसपास परिक्रमा करती रहेगी तब तक व्यक्ति मिथ्यादृष्टि बना रहेगा, उसका कषाय प्रबल बना रहेगा, वह क्रोधी, अहंकारी और कामुक बना रहेगा। जब तक व्यक्ति यह नहीं जान लेता—मैं कहां हूँ, मेरी चेतना कहां है—तब तक साधुता की बात समझ में नहीं आ सकती।

### कर्म के प्रकंपन

हमारे शरीर में अनेक केन्द्र बने हुए हैं। जैन-दर्शन में कर्म के आठ प्रकार

बतलाए गए हैं—ज्ञानावरण, दर्शनावरण आदि। ये सारे कर्म हमारे शरीर के भीतर हैं, कहीं बाहर नहीं हैं, आकाश में टंगे हुए नहीं हैं। इस स्थूल शरीर के भीतर हैं। आठ कर्मों का एक संस्थान बना हुआ है। उस संस्थान का नाम है कर्मशरीर। हमारी पूरी प्रवृत्तियों का संचालन वह संस्थान कर रहा है। कर्मशरीर के निर्देश आते हैं, उनके प्रकंपन आते हैं, वे शरीर में आकर रसायन पैदा करते हैं। इस स्थूल शरीर में स्थान-स्थान पर चौकियां बनाई हुई हैं। उन चौकियों पर निर्देश आता है और उनके द्वारा संचालन होता रहता है। कर्म की सैकड़ों प्रकृतियां हैं, उनके सैकड़ों प्रकार के प्रकंपन हैं, प्रत्येक प्रकंपन ने अपना एक एक स्थान बना रखा है। जिस-जिस प्रकृति का विपाक आता है, उस-उस प्रकृति के प्रकंपन स्थूल शरीर में आते हैं। उन प्रकंपनों को क्रियान्वित करने के लिए उतनी ही चौकियां स्थूल शरीर में बनी हुई हैं।

### नाभिकमल

हमारी नाभि (तैजस केन्द्र) के पास दो ग्रंथियां हैं—एड्रिनल और गोनाड्स। कामवासना का केन्द्र है गोनाड्स और कषाय की अभिव्यक्ति का केन्द्र है एड्रिनल ग्लेण्ड। नाभि के आसपास ये दो मजबूत चौकियां हैं। जब तक मनुष्य की चेतना नाभि के आसपास काम करती है तब तक ईर्ष्या, भय, क्रोध, कलह आदि वृत्तियां जागती रहती हैं। पुराने आचार्यों ने अनेक कल्पनाएं कीं—नाभिकमल, हृदयकमल आदि। कमल की अनेक पंखुड़ियां और उन पंखुड़ियों में एक-एक वृत्ति की स्थापना। एक जैन आचार्य ने कल्पना की नाभि कमल की। उसमें बारह पंखुड़ियां हैं, वहां बारह प्रकार की वृत्तियां जागती हैं। जब तक हमारी चेतना नाभि के आसपास रहेगी तब तक साधुता की कल्पना नहीं की जा सकती। इस स्थिति में काम, क्रोध, ईर्ष्या-मत्सर आदि वृत्तियां ही जागेंगी। जब ये वृत्तियां जागेंगी, साधुता की बात समझ में नहीं आएगी।

### ध्यान क्वाहं पर

आचार्य ने कहा—मैं कहां हूं, इस पर ध्यान देना बहुत महत्त्वपूर्ण है। केवल कोऽहं की ओर ध्यान देना पर्याप्त नहीं है। जब तक क्वाहं पर ध्यान नहीं जाएगा, तब तक अपनी स्थिति का यथार्थ बोध नहीं होगा। यदि स्वार्थ की चेतना जागृत है तो मानना चाहिए—हमारी चेतना नाभि के आसपास काम कर रही है। जो स्वार्थी है, केवल अपनी बात सोचता है, अपना हित देखता है, अपनी रोटी सेकता है, वह दूसरे के हित की बात नहीं सोच सकता। वह तिन्नाणं तारयाणं नहीं हो सकता। वह आत्मानुकंपी और परानुकंपी—दोनों का जोड़ा नहीं हो सकता। वस्तुतः वह अनुकंपी

ही नहीं, केवल स्वार्थी होता है। ऐसे व्यक्ति की चेतना नाभि के इर्द-गिर्द केन्द्रित होती है।

### साधुता की कसौटी

प्रश्न है—साधुता कब आती है? जब चेतना तैजस केन्द्र से ऊपर उठकर आनन्द केन्द्र पर आ जाती है, थाइमस ग्लैंड के प्रभाव में आ जाती है तब मानना चाहिए—चैतन्य में साधुता आ गई। भगवान् महावीर ने साधुता की अनेक कसौटियां बतलाई हैं। कसौटी पर कसे बिना यथार्थ का पता नहीं चलता। व्यक्ति सोना खरीदता है तो पहले कसौटी करता है। सोना है या नहीं? कितनी खाद है और कितना सोना? कहीं पीतल तो नहीं है? साधु की कसौटी भी जरूरी है। आचार्य भिक्षु ने इस बात पर बहुत बल दिया—पहले परखो, कसौटी करो, उसके बाद मानो। जन्मना मत मानो। किसी कुल में पैदा होना कोई मानदण्ड नहीं है। प्रत्येक बात को परखो, आंख मूंद कर स्वीकार मत करो।

उत्तराध्ययन सूत्र के पंद्रहवें अध्ययन में साधु की कसौटियों का प्रतिपादन है। साधु कौन होता है, इसकी संक्षिप्त परिभाषा दशवैकालिक में भी है—

*बहवे इमे असाहु, लोए वुच्चति साहुणो।*

*न लवे असाहुं साहु ति, साहुं साहु ति आलवे॥*

*नाणदंसणसंपन्नं, संजमे य तवे रयं।*

*एवं गुणसमाउत्तं, संजयं साहुमालवे॥*

इस लोक में बहुत असाधु हैं, जिन्हें लोक में साधु माना जाता है। तुम असाधु को साधु मत कहो, साधु को ही साधु कहो।

### साधु कौन ?

कौन साधु है और कौन असाधु? आज यह प्रश्न अधिक महत्वपूर्ण बन गया है। जैन परम्परा के साधु भारतीय परम्परा के निराले साधु रहे हैं। इस तथ्य को जैन ही नहीं, सभी धर्मों के लोग स्वीकार करते हैं। जैन साधु की जितनी तपस्या और त्याग है, वह विस्मयकारी है। लेकिन आज स्थिति चिंतनीय बन गई है इसीलिए साधुता की कसौटी का निर्धारण अधिक प्रासंगिक बन गया है। जैन मुनि की एक पहचान बनी हुई है—जैन मुनि रुपया-पैसा नहीं रखता। वह सर्वथा अकिञ्चन और अपरिग्रही होता है। आज यह पहचान कुछ धुंधली बन रही है। दूसरे धर्म-संप्रदायों में यह माना जाता था—जिसके पास जितना अधिक पैसा है, जितना बड़ा मठ है, वह उतना ही बड़ा संन्यासी है। लेकिन जैनधर्म में साधु का मानदण्ड यह कभी नहीं रहा।



ऐसा लगता है—जैन परंपरा में भी आज यह दरवाजा खुल रहा है, खुलना शुरू हो रहा है। अनेक जैन साधु रुपए-पैसे बटोरने में लगे हुए हैं। एक क्रम शुरू हुआ है—खुले आम पैसा इकट्ठा-करना, बैंक-बैलेंस रखना, घर-घर जाकर रुपए मांगना। लगता है—कुछ संकोच रहा ही नहीं। मुनि यह नहीं सोच पा रहे हैं—मैं जैन मुनि हूँ, समणोऽहं—समण हूँ, अपरिग्रही और अकिञ्चन हूँ, मुझे पैसे को छूना भी नहीं है। इस अवस्था में साधु के सामने एक कसौटी का होना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है और उन कसौटियों को जानना एक श्रावक के लिए भी अनिवार्य हो गया है।

### ज्वलंत प्रश्न

एक श्रावक ने कहा—महाराज! अमुक मुनि हमारे घर आए। उन्होंने रुपये मांगे। हमारी इच्छा तो नहीं थी रुपये देने की पर संकोचवश उनको कुछ रुपये दे दिए। उसके पास खड़े एक व्यक्ति ने कहा—यह तुमने अच्छा नहीं किया। तुम्हें यह कहना चाहिए था—यदि आप साधुवेश को छोड़ दें तो आपको सौ के स्थान पर हजार रुपये दे दूंगा। पर आप इस वेश में रुपये मांगकर साधुत्व को लज्जित न करें।

समस्या यह है—साधुत्व का वेश छोड़ दे तो रुपया न मिले और जैन साधु के वेश में रुपया मांगे, यह लज्जास्पद बात है। यह आज एक ज्वलंत प्रश्न बन रहा है। यदि इस पर श्रावक समाज ने ध्यान नहीं दिया तो शायद साधु समाज को डुबोने वाला कहलाएगा श्रावक समाज। इस संदर्भ में आचार्य भिक्षु का यह श्लोक कितना मार्मिक है—

*साध ने डुबोया श्रावकां, श्रावकां ने डुबोया साध।  
दोनूं डूबा बापड़ा, श्री जिन वयण विराध॥*

यह चित्रण बहुत यथार्थ है। ऐसा लगता है—आज फिर एक बार आचार्य भिक्षु के जन्म लेने की जरूरत है। ऐसा कोई साहसी, अभय और सत्य का प्रवक्ता उभरे, जो साधु समाज को पतन से बचा सके। इसके लिए सगुण भाषा का प्रयोग भी करना पड़े तो करना चाहिए।

### सगुण भाषा

प्रसिद्ध समाजवादी चिंतक डाक्टर राममनोहर लोहिया आचार्यवर की सन्निधि में आए। उन्होंने मेरे साथ लंबे समय तक वार्तालाप किया। डा. लोहिया ने आचार्यवर से प्रार्थना की—आप मुनि नथमलजी (युवाचार्य महाप्रज्ञ) को भिक्षा के लिए मेरे घर भेजिए। मैं डा. लोहिया के घर गया। अनेक संत और श्रावक साथ थे। हम उनके घर थोड़ी देर रुके। बातचीत चल पड़ी। मैंने कहा—डा. साहब ! आपकी काफी बातें

पंसद हैं, पर एक बात अच्छी नहीं लगती। डा. लोहिया ने कहा--मुनिजी ! लगता है--आप भी प्रवाह में बह गए। किसी ने बहका दिया है आपको। मैंने कहा--डा. साहब! मैं किसी के कहने से नहीं कह रहा हूं। डाक्टर लोहिया ने पूछा--आपको कौन सी बात अच्छी नहीं लगी ? मैंने कहा--आप कटु बोलते हैं। कभी-कभी लोकसभा में भी हल्के शब्दों का प्रयोग कर लेते हैं। आप जैसा व्यक्ति इस प्रकार बोले, यह अखरने जैसी बात है। डा. लोहिया यह सुनते ही जोश में आ गए। वे तत्काल अपने अध्ययन कक्ष से कुछ फाइलें उठाकर ले आए। उन फाइलों को मेरे सामने रखते हुए डा. लोहिया ने कहा--ये मेरी लोकसभा में दिए गये भाषणों की फाइलें हैं। आप बताइए--मैंने कौन से ऐसे शब्द का प्रयोग किया है, जो कटु है। आप जिस शब्द के लिए कहेंगे, मैं उसे निकाल दूंगा। डा. लोहिया ने कहा--मुनिजी ! पूजा उपासना की दो पद्धतियां चल रही हैं--सगुण-उपासना और निर्गुण उपासना। सगुण उपासना वाले मूर्ति बनाकर पूजा करते हैं, निर्गुण वाले कोरा अमूर्त का ध्यान करते हैं। आम आदमी अमूर्त को नहीं समझता। उसके लिए सगुण उपासना का महत्त्व अधिक है। उसके सामने कोई आकार होना चाहिए। मैं लोकसभा में किसी को गाली नहीं देता, किन्तु सगुण भाषा बोलता हूं ताकि वह बात किसी को चुभ जाए। यदि निर्गुण भाषा बोलूंगा तो मेरी बात कोई सुनेगा ही नहीं।

### श्रावक समाज की जागरूकता

आचार्य भिक्षु ने जिस भाषा का प्रयोग किया, वह अवश्य ही सगुण भाषा रही है। उन्होंने जो कुछ कहा, वह जनता को प्रभावित कर गया। आज जिस प्रकार जैन परम्परा में विकार आना शुरू हुआ है, यह आवश्यक हो गया है कि सगुण भाषा बोली जाए। सन् १९८६ में कुछ जैन मूर्तिपूजक मुनि विदेश यात्रा के लिए जाना चाहते थे। इस प्रश्न को लेकर बम्बई जैन समाज में काफी हलचल मच गई। जैन-समाज के अग्रणी व्यक्तियों ने कहा--यदि आप विदेश जाना चाहते हैं तो जाइए पर इस वेश में नहीं। साधुत्व का वेश उतार दीजिए और जैन धर्म के प्रचारक बन जाइए। इस घटना के संदर्भ में आचार्यवर ने बम्बईवासियों को एक सदेश प्रदान किया--आज आपने जैन साध्वाचार को लेकर एक प्रश्न खड़ा किया है, यह बहुत जरूरी है। बम्बई का समाज जागरूक समाज है। आपकी जागरूकता की मैं प्रशंसा करता हूं। यह स्थिति कभी नहीं होनी चाहिए कि साधु समाज चाहे जो करता रहे और श्रावक समाज सोया रहे। श्रावक समाज यह न सोचे--साधु जाने साधु का काम जाने, हमसे तो कुछ अच्छे ही हैं साधु। जिस दिन यह बात श्रावक समाज सोचेगा, उस दिन जैन समाज

का अस्तित्व ही खतरे के बिन्दु पर पहुंच जाएगा। खतरे के बिन्दु से सावधान रहना जरूरी है। यदि वहां असावधानी होगी तो विनाश अवश्यभावी हो जाएगा।

### श्रावक का कर्तव्य

नदी में बाढ़ आ गई। कर्मचारियों ने अधिकारी को जानकारी दी। पानी खतरे के बिन्दु के पास आ गया है। अब क्या करें ? अधिकारी प्रमादी था। उसने कहा—चिन्ता मत करो। खतरे के बिन्दु को तीन फीट ऊंचा कर दो।

कितनी मूर्खता है ! खतरे के बिन्दु को ऊपर करने से क्या होगा ? यदि समाज प्रमादी बन जाए तो समस्या का समाधान नहीं हो सकता। आचार्य भिक्षु ने तेरापंथ समाज में जागरूकता के संस्कार बीज बोए। समाज में कुछ भी अवांछित होता है, श्रावक समाज की ओर से प्रश्न प्रस्तुत हो जाते हैं। आचार्य भिक्षु ने श्रावक समाज के हाथ में एक डंडा पकड़ा दिया—किसी साधु में दोष देखो तो छिपाओ मत, तत्काल उसे जता दो, गुरु को जता दो। श्रावक समाज को एक अधिकार दे दिया। कोई साधु-साध्वी अवांछनीय आचरण करता है तो श्रावक-समाज तत्काल जागरूक बन जाता है। वह उस बात को गुरु तक पहुंचा देता है। साधु-साध्वियां बाद में पहुंचते हैं, उनकी शिकायत पहले ही पहुंच जाती हैं। यह जागरूकता साधु-साध्वियों के स्वस्थ एवं निर्दोष आचरण का हेतु बनती है।

### अकेला चले

महावीर ने साधु की जो कसौटियां बतलाई, वे जागरूकता की कसौटियां हैं। उत्तराध्ययन सूत्र के प्रद्वह्वे अध्ययन में चालीस से भी अधिक कसौटियों का उल्लेख है। उनमें कुछ आंतरिक कसौटियां हैं और कुछ बाह्य। प्रस्तुत प्रसंग में मैं दो-तीन कसौटियों की चर्चा करना चाहता हूं। साधु की एक कसौटी है—अकेला होना। जो घर को छोड़कर अकेला चलना जानता है, उसका नाम है साधु। घर छोड़ने मात्र से कोई साधु नहीं बनता। जो केवल घर छोड़कर साधु बनता है और अकेला चलना नहीं जानता, उसकी साधुता में कमी आ जाएगी। बहुत बड़ी साधना है, अकेला चलना। आचार्य भिक्षु ने कहा था—‘भरण धारण सुध मग लथ्यो। उन्होंने संकल्प किया—‘मैं शुद्ध मार्ग पर चलूंगा, चाहे मैं अकेला रह जाऊं।’ जब तक यह एगचारिता का संकल्प दृढ़ नहीं होता, तब तक साधुता की बात पूरी आती नहीं है।

### साधु और शेर का टोला नहीं होता

एक राजा ने कहा—साधुओं का भी कोई टोला होता है ? शेर का कभी टोला नहीं बनता। वह अकेला चलता है। भेड़-बकरियों का टोला होता है। हाथियों का गुप

होता है। मनुष्यों का समाज होता है पर साधु, जिसने दुनिया को छोड़ दिया, घर-बार को छोड़ दिया, उसका क्या टोला होता है। साधु और शेर का कोई टोला नहीं होता।

उस समय इस प्रश्न का उत्तर क्या दिया गया, नहीं कहा जा सकता पर आज इस प्रश्न का उत्तर दिया जा सकता है। वह उत्तर अनेकान्त की भाषा में होगा--साधुओं का टोला होता भी है और नहीं भी। 'साधु अकेला चलना जानता है' इस दृष्टि से उसका कोई टोला नहीं होता। लेकिन यह सत्य है--जो अकेला चलना जानता है, वही वास्तव में टोला बनाने का अधिकारी हो सकता है। जो अकेला चलना नहीं जानते, उनका टोला बनता भी है तो वह लंबे समय तक टिक नहीं सकता।

### साधुत्व का मर्म

साधुता की महत्त्वपूर्ण कसौटी है--अकेला चलना। राग-द्वेष मुक्त होना, इसका अर्थ है अकेला होना। आचारांग सूत्र में मुनि का एक विशेषण है--'ओए'--ओज। इसका अर्थ है--अकेला होना। जब-जब राग-द्वेष आता है, व्यक्ति अकेला नहीं रहता। जब राग-द्वेष से मुक्त रहा, अकेला रह गया। राग और द्वेष--ये दो साथी बने हुए हैं। राग-द्वेष छूटे और व्यक्ति अकेला रह गया। राग और द्वेष--दोनों आदिकाल से हमारे साथी बने हुए हैं। इनका साथ छूटने पर बचता कौन है ? व्यक्ति यह सोचे--चाहे मैं कितने ही व्यक्तियों के साथ रह रहा हूँ पर वास्तव में अकेला हूँ। यह सूत्र जितना स्पष्ट रहेगा, जीवन में कोई खतरा आएगा ही नहीं। दो शब्द हैं--द्वन्द्व और निर्द्वन्द्व। जो राग-द्वेष में जी रहा है, वह द्वन्द्व में जी रहा है। जो इनसे मुक्त है, वह है निर्द्वन्द्व। आचार्य भिक्षु का प्रसिद्ध वाक्य है--गण में रहूँ निरदाव अकेलो, जो द्वन्द्व में उलझ गया, वह खतरे की ओर बढ़ता चला जाएगा। जिन्होंने वास्तव में अकेलेपन का अनुभव किया है, उन्होंने साधुता के मर्म को समझा है।

### अव्यग्र मन

साधुता की दूसरी कसौटी है--अव्यग्र मन। चित्त की दो प्रकार की अवस्थाएं हैं--व्यग्र और अव्यग्र। मन चारों ओर भटकता रहता है। यह उसकी व्यग्रता है। वह एक बिन्दु पर केन्द्रित हो गया, इसका अर्थ है--एकाग्र मन। हम रूपक की भाषा में समझें--बछड़ा इधर-उधर चक्कर लगा रहा है, कूद-फांदकर रहा है, इसका तात्पर्य है--व्यग्र मन। उसे एक खूँटे से बांध दिया। वह केवल उसकी ही परिक्रमा कर जाएगा, इसका तात्पर्य है एकाग्र मन--इधर-उधर भटकते हुए मन को एक स्थान पर केन्द्रित कर देना। मुनि का एक विशेषण है--अबहिल्लेसे उसकी लेश्या बाहर नहीं जाए, भीतर रहे। जिसने लेश्या को भीतर बांध दिया, वह अव्यग्र हो गया। जिसने मन की एकाग्रता

को नहीं साधा, उसने साधना के मर्म को नहीं समझा। मन में चंचलता और विक्षेप न आए, यह साधना की कसौटी है।

**मैं कहां हूँ**

एक भाई ने पूछा--महाराज ! आपको साधु बने कितने वर्ष हुए हैं ? मुनिजी ने उत्तर दिया--पन्द्रह वर्ष। उस भाई ने अगला प्रश्न पूछा--आप कहां तक पहुंचे हैं?

यह प्रश्न प्रत्येक साधनाशील व्यक्ति के सामने है--वह कहां तक पहुंचा है ? अभी वह कहां है और पहले वह कहां था। पांच वर्ष की साधना कर वह कहां तक पहुंचा ? दस वर्ष बाद कहां तक पहुंचा ? जिस साधक ने मन की एकाग्रता को साधा है, वही व्यक्ति इस प्रश्न का उत्तर दे सकता है।

प्रश्न पूछा गया--भगवन् ! एक वर्ष के दीक्षित साधु को कितना सुख उपलब्ध होता है ? महावीर ने उत्तर दिया--एक वर्ष का दीक्षित साधु सर्वार्थसिद्ध के देवताओं के सुखों का अतिक्रमण कर देता है।

हम अभिधा से नहीं, लक्षणा से विचार करें। सर्वार्थ सिद्ध का लाक्षणिक अर्थ है--जिसके अर्थ सिद्ध हो गए। साधक चेतना की उस भूमिका पर पहुंच गया, जहां पहुंचने पर कोई प्रयोजन शेष नहीं रहता। इस संदर्भ में यह प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण है--'मैं कहां हूँ ?' मैं कौन हूँ--इससे पहले यह प्रश्न उभरे--मैं कहां हूँ ? जिसके सामने क्षितिज पर यह प्रश्न लिखा रहेगा, उसकी साधना में निरन्तर निखार आता रहेगा, साधुता की कसौटियां उसके लिए मार्गदर्शक बन जाएंगी।

## ब्रह्मचर्य के साधक-बाधक तत्त्व

### ब्रह्मचर्य : दस स्थान

दो प्रकार की घटनाएं मिलती हैं—निमित्त से प्रभावित होने वाली घटनाएं और निमित्त की उपेक्षा कर उपादान पर चलने वाली घटनाएं। जैन आगम उत्तराध्ययन के सोलहवें अध्ययन में मुनि के लिए ब्रह्मचर्य के दस स्थान बतलाए गए हैं। वे निमित्तों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं—

१. निर्ग्रन्थ स्त्री, पशु और नपुंसक से आकीर्ण शयन और आसन का प्रयोग न करे।
२. केवल स्त्रियों के बीच कथा न कहे।
३. स्त्रियों के साथ एक आसन पर न बैठे।
४. स्त्रियों की मनोहर और मनोरम इन्द्रियों को दृष्टि गड़ा कर न देखे।
५. स्त्रियों के कूजन, रोदन, गीत, हास्य, विलाप आदि के शब्द न सुने।
६. पूर्व क्रीड़ाओं का अनुस्मरण न करे।
७. प्रणीत आहार न करे।
८. मात्रा से अधिक न खाए, न पीए।
९. विभूषा न करे।
१०. शब्द, रूप, रस, गंध और स्पर्श में आसक्त न हो।

### प्रकरण आचारांग का

ब्रह्मचर्य के इन दस स्थानों में उपादान की विशेष चर्चा नहीं है। आचारांग सूत्र का एक पूरा प्रकरण है, जिसमें निमित्त की चर्चा विशेष नहीं है, उपादान की चर्चा प्रमुख है। ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला अनगार—

१. निर्बल भोजन करे।
२. ऊनोदरिका करे, कम खाए।
३. ऊर्ध्व स्थान (घुटनों को ऊंचा और सिर को नीचा) कर कायोत्सर्ग करे।

४. ग्रामानुग्राम विहार करे।
५. यथाशक्ति आहार का परित्याग (अनशन) करे।
६. स्त्रियों के प्रति दौड़ने वाले मन का त्याग करे।
७. काम-कथा न करे।
८. वासनापूर्ण दृष्टि से न देखे।
९. परस्पर कामुक भावों का प्रसारण न करे।
१०. ममत्व न करे।
११. शरीर की साज-सज्जा न करे।
१२. मौन करे।
१३. मन का संवरण करे।
१४. सदा पाप का परिवर्जन करे।

### निमित्त : उपादान

एक ओर प्रश्न है उपादान का तो दूसरी ओर प्रश्न है निमित्त का। एकान्त दृष्टि कभी निमित्तों की ओर झुक जाती है तो कभी उपादान की ओर। सचाई तब सामने आती है जब हम सापेक्ष दृष्टि से विचार करते हैं। हम न केवल उपादान को पकड़ें और न केवल निमित्तों को पकड़ें। ब्रह्मचर्य की सिद्धि के लिए इन दोनों की सापेक्षता अपेक्षित है।

*केवलं न निमित्तानि, साधनानि न केवलं।*

*सापेक्षता भवेदेषां, ब्रह्मचर्यस्य सिद्धये॥*

### स्थूलभद्र का निदर्शन

ब्रह्मचर्य की सिद्धि के लिए हमें दोनों की सापेक्षता को समझना है। घटनाओं की मीमांसा करें या निमित्तों की। विचित्र घटनाएं घटित हुई हैं। स्थूलभद्र का प्रसंग हमारे सामने आता है। एक ओर कहा गया—मुनि वेश्या के मोहल्ले में गोचरी भी न जाए। इसे ब्रह्मचर्य का बाधक तत्त्व मान लिया गया। दूसरी ओर स्थूलभद्र वेश्या के मोहल्ले में ही नहीं गए, वेश्या के घर में गए। वे वेश्या के घर एक-दो दिन नहीं रहे किन्तु चातुर्मासिक प्रवास किया। आचार्य की आज्ञा से चतुर्मास किया, अनाज्ञा से नहीं। ब्रह्मचर्य के संदर्भ में एक निर्देश है—प्रणीत भोजन न करे। स्थूलभद्र ने वेश्या के घर रहते हुए प्रतिदिन षड्रस युक्त भोजन किया। वेश्या ने हाव-भाव से स्थूलभद्र को अपनी ओर खींचने का प्रयत्न किया। स्थूलभद्र के सामने उसने कामोद्दीपक गीत-संगीत और नृत्य प्रस्तुत किया। वेश्या कोशा ने पूर्व भोग की स्मृतियां भी दिखाई

चित्रशाला  
 विशाला  
 मदनालय-सी  
 मलयाचल सी  
 मोहक सी  
 मादक सी  
 अतीत स्मृति सी  
 प्रियकरा  
 कल्पना-सी मनोहरा

.....  
 .....  
 याद करो याद करो  
 पुनः सहवास करो  
 तिमिर का नाश करो।  
 यौवन है दो दिन का  
 सार यही जीवन का।  
 बने हो क्यों योगिराज।  
 उचित नहीं महाराज !  
 आलंबन सहित करो।  
 निराशा का आवरण  
 दूर करो  
 याद करो याद करो  
 पुनः सहवास करो।

वेश्या का यह भावपूर्ण अनुरोध भी स्थूलभद्र के संकल्प को नहीं हिला सका। जिस कोशा वेश्या के साथ स्थूलभद्र बारह वर्ष तक रहे, भोगों में डूबे रहे, वह वेश्या स्थूलभद्र के संकल्प के समक्ष पराजित हो गई। किसे बाधक तत्त्व कहा जाए और किसे साधक तत्त्व ?

**जरूरी हैं नियम**

हम इस सचाई को समझें—जब तक मनोबल का विकास नहीं होता तब तक निमित्तों पर ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है। जो इन पर ध्यान नहीं देता, उसके



लिए विचलन या स्खलन होना अनिवार्य है। जब मनोबल का विकास हो जाता है तब नियम बदल जाते हैं। हम नियम और व्यवस्था को पकड़कर न बैठ जाएं। नियम जरूरी हैं पर जब व्यक्ति एक भूमिका को पार कर जाता है तब वे नियम कृतकृत्य हो जाते हैं। जब साधक सिद्ध हो जाता है, साधकत्व उपलब्ध हो जाता है तब नियम गौण बन जाते हैं। जब तक साधकत्व प्रबल नहीं है तब तक निमित्त बलवान् बना रहेगा। एक बलवान् बनता है तो दूसरा निष्क्रिय बन जाता है। जब उपादान बलवान् होता है तब निमित्त गौण हो जाता है और जब निमित्त बलवान् होता है तब उपादान गौण हो जाता है।

### निमित्त से उपादान की ओर

ऐसी कितनी घटनाएं हैं! सुदर्शन सेठ की घटना को देखें। महारानी उसे विचलित करना चाहती है किन्तु सुदर्शन अडिग है। आचार्य भिक्षु ने इस घटना का बहुत सुन्दर चित्रण किया है। विजय सेठ और विजया सेठानी की घटना को पढ़ें। वर्तमान में देखें तो महात्मा गांधी ने ब्रह्मचर्य के संदर्भ में बड़े विचित्र प्रयोग किए। आचार्य कृपलानी ने लिखा--'गांधी ऐसे विचित्र प्रयोग कर रहे हैं। मेरा ऐसा विश्वास है कि मैं अगर गांधी को अनाचार करता हुआ देख भी लूं तो एक बार सोचूंगा--मेरी आंखें मुझे धोखा दे गईं। वे ऐसा नहीं कर सकते।' तेरापंथ समाज के वरिष्ठ व्यक्ति थे सुगनचंदजी ~~आंचलिया। उनका मनोबल बहुत दृढ़ था। उन्होंने भी ब्रह्मचर्य के अनेक प्रयोग किए।~~ इनकी धृति बहुत प्रशंस्य थी। जो लोग ऐसी स्थिति में चले जाते हैं, उनके लिए निमित्त अकिंचित्कर बन जाते हैं। दूसरी ओर निमित्तों की घटनाएं भी कम नहीं हैं। थोड़ा-सा निमित्त मिला, व्यक्ति मोम की तरह पिघल गया। दोनों प्रकार की घटनाएं हमारे सामने हैं। प्रश्न है--हम क्या करें ? क्या ब्रह्मचर्य के जो दस स्थान बतलाए गए हैं, उनकी उपेक्षा करें ? नहीं, उनकी उपेक्षा न करें। हम अभ्यास करें निमित्तों से उपादान की ओर जाने का। जब तक अभ्यास परिपक्व न हो तब तक निमित्तों की उपेक्षा न करें।

### परिपक्वता बढ़ाएं

एक घटना है। एक व्यक्ति ने पहले अपने आपको पकाया। ब्रह्मचर्य को सिद्ध किया। फिर उसका परीक्षण किया। वह पहले दिन वेश्या के पास गया। वेश्या उसके सामने बैठ गई। वह वेश्या के रंग-रूप और लावण्य को देखता रहा किन्तु उसके मनोबल में न्यूनता नहीं आई। दूसरे दिन वह वेश्या के पास बैठ गया फिर भी मन विचलित नहीं हुआ। चौथे दिन उसने वेश्या का स्पर्श किया, उसके शरीर से सटकर बैठ गया फिर भी मन विचलित नहीं हुआ। कुछ दिन ऐसा अभ्यास चला। उसके बाद

उसने वेश्या को अर्द्धनग्न अवस्था में देखा और एक दिन वेश्या को निर्वस्त्र कर अपनी गोद में बिठा लिया। उसका मन अडोल बना रहा। ब्रह्मचर्य सिद्ध हो गया।

इस घटना का निष्कर्ष निकाला गया—वह व्यक्ति संन्यासी होना चाहता था इसलिए अपने आपको साध रहा था। हम इस प्रश्न पर विचार करें और अपनी परिपक्वता को बढ़ाएं। इस दृष्टि से जो महत्त्वपूर्ण नियम हैं, उनमें से कुछ पर विमर्श करें, यह अपेक्षित है।

### आहार और ब्रह्मचर्य

भोजन के संदर्भ में दो नियम हैं—प्रणीत और अतिमात्र भोजन न करें। शायद ही अध्यात्म का कोई ऐसा विषय होगा, जिसके साथ भोजन की बात न जुड़ी हुई हो। भोजन बहुत प्रभावित करता है। तंत्र-शास्त्र में इस विषय पर बहुत नई दृष्टियां मिलती हैं। एक नया दर्शन तंत्र-शास्त्र में दिया गया—पांच ज्ञानेन्द्रियों के साथ पांच कर्मेन्द्रियों का सम्बन्ध है। उपस्थ का सम्बन्ध है जीभ के साथ। रसनेन्द्रिय को जितना पोषण मिलेगा उतना पोषण मिलेगा जननेन्द्रिय को। रसनेन्द्रिय और जननेन्द्रिय में गहरा सम्बन्ध है इसलिए ब्रह्मचर्य के संदर्भ में भोजन पर विचार करना बहुत जरूरी है।

बहुत मनन के बाद यह नियम बनाया गया—प्रणीत पान-भोजन का वर्जन करें और अतिमात्र भोजन का वर्जन करें। ज्यादा भी न खाएं और रोज-रोज गरिष्ठ भोजन भी न करें। दूध, दही, घी आदि जितनी भी विकृतियां हैं, वे शरीर के लिए आवश्यक भी होती हैं किन्तु ये बाधक भी बनती हैं। आयुर्वेद का एक सिद्धांत है—बल बढ़ाना है तो दूध पीओ। दूसरा सिद्धांत यह आया है—दूध मनुष्य के लिए आवश्यक नहीं है, वह केवल बच्चों के लिए आवश्यक है। दूध हृदय-रोग को भी बढ़ाता है। किसे सच मानें ? दुनिया में विचारों की इतनी संकुलता है कि किसे स्वीकारा जाए और किसे अस्वीकारा जाए ? एक विचार को पकड़कर बैठ जाएं तो बड़ी समस्या हो जाती है इसीलिए यह कहा गया—यत् सारभूतं तदुपासनीयम्—जो सारभूत है, उसकी उपासना करें।

### ध्यान दें उपादान पर

अनेकान्त दर्शन का तात्पर्य है—हम किसी एक विचार को पूरा सत्य मानकर न बैठें। हम यह मानें—दुनिया में विचारों की बहुत संकुलता है। समाधान यही है—हम स्वयं सत्य खोजें। विचारों को सुनें, जानें और स्वयं खोज करें। ब्रह्मचर्य के क्षेत्र में भी विचारों की कमी नहीं है। इन्द्रियों का संयम कैसे करें ? कितना करें ? क्यों करें ? वर्तमान युग में ही नहीं, महावीर के युग में भी इस संदर्भ में अनेक विचित्र विचार

उभरे थे। सूत्रकृतांग सूत्र को पढ़ने वाला इस सचाई को जानता है। ब्रह्मचर्य पर सबसे अधिक बल भगवान् महावीर ने दिया। महावीर ने सब विचारों का सार प्रस्तुत किया, निमित्तों का भी और उपादान का भी। इस संदर्भ में एक बात कहने में संकोच नहीं होता--आज जितना ध्यान केवल निमित्तों पर है उतना उपादान पर नहीं दिया जा रहा है। मानसिक शुद्धि कैसे करें ? मन पवित्र कैसे बना रहे ? उस पर बहुत ध्यान नहीं दिया जा रहा है इसलिए जितना विकास होना चाहिए उतना नहीं हो पा रहा है।

### ब्रह्मचर्य : परिणाम

ब्रह्मचर्य का लाभ है--प्रतिभा का विकास। ब्रह्मचर्य का लाभ है--धृति का विकास। बहुत बार प्रश्न होता है--गांधी जैसा दुबला-पतला आदमी, इतने कष्ट कैसे सहे ? इतने विरोध का सामना कैसे किया ? उनमें इतनी धृति का विकास कैसे हुआ? यह स्वीकार करना चाहिए--जैसे-जैसे ब्रह्मचर्य की आंतरिक साधना परिपक्व होती है वैसे-वैसे धृति का विकास होता है, प्रतिभा का विकास होता है। ब्रह्मचर्य से सिद्ध होता है--प्रातिभ ज्ञान, धृति, अपने मन एवं इन्द्रियों पर नियन्त्रण करने की क्षमता। शरीर के विकास के साथ-साथ इन आंतरिक शक्तियों के विकास का सम्बन्ध नहीं जोड़ा जा सकता।

### आराधना साधक तत्त्वों की

भगवान् महावीर ने ब्रह्मचर्य के साधक-बाधक तत्त्वों की सुन्दर विवेचना दी। हम बाधक तत्त्वों का निरसन कर साधक तत्त्वों की आराधना करें। निमित्तों का निरन्तर ध्यान रखते हुए उपादान की दिशा में अपनी यात्रा को आगे बढ़ाएं। इससे चित्त और अन्तःकरण की निर्मलता बढ़ती चली जाएगी। इसके लिए प्रयोग भी बहुत अपेक्षित है। शरीर-शास्त्र का अध्ययन करने वाला व्यक्ति जानता है--वृत्ति कहां पैदा होती है ? कौन उसे उभारता है ? उसकी क्रियान्विति कहां होती है और उसके निवारण के कौन-कौन-से स्थान हैं ? इनके बारे में जितनी स्पष्ट जानकारी आज मिल रही है शायद उतनी पहले भी थी, यह नहीं कहा जा सकता। इन दस शताब्दियों में तो ऐसा युग आया कि इन नियमों की जानकारी बहुत कम रह गई। इस विषय को एक प्रकार से लज्जनीय विषय मान लिया गया। जानकारी के अभाव में भी समस्याएं पैदा होती हैं। आचार्य भिक्षु ने 'शील की नवबाड़' ग्रन्थ लिखा। उस ग्रन्थ में ब्रह्मचर्य के साधक-बाधक तत्त्वों का सुन्दर विश्लेषण है।

### ब्रह्मचर्य : ध्यान के प्रयोग

ब्रह्मचर्य के विकास में ध्यान के कुछ प्रयोग बहुत उपयोगी हैं। हम आनन्द केन्द्र

पर अहं का ध्यान करते हैं। आज वैज्ञानिक दृष्टि से भी यह माना जाने लगा है कि इससे वृत्तियों पर नियन्त्रण होता है। दर्शन-केन्द्र, ज्योति-केन्द्र—ये सारे नियन्त्रण करने वाले केन्द्र हैं। इन पर ध्यान करने से वृत्तियों का दमन नहीं, उदात्तीकरण होता है। दमन करना, रोकना एक बात है, उदात्तीकरण उससे बिल्कुल भिन्न है। प्रश्न है—क्या दस-बीस या पचास वर्ष बीत जाने पर भी केवल नियंत्रण की ही बात रहेगी? इस दिशा में विकास होना चाहिए। हम ऐसा प्रयास करें—नियन्त्रण स्वयं उदात्तीकरण की दिशा में आगे बढ़ता चला जाए। हमारी चेतना अधिक से अधिक स्वाध्याय, ध्यान और आत्म-गवेषणा में लगे। जैसे-जैसे चेतना का नियोजन इन सबमें होगा, अन्य बातें गौण होती चली जाएंगी। विकास की दिशा में आगे बढ़ते हुए, वर्जनाओं और निमित्तों का ध्यान रखते हुए अपनी चेतना को पवित्र और निर्मल बनाते चले जाएं, ब्रह्मचर्य सिद्ध हो जाएगा। ब्रह्मचर्य केवल उपस्थ का संयम ही नहीं है। उसका अर्थ है—इन्द्रियों का संयम। उसका व्यापक अर्थ है आचार। जीवन का आचार, ब्रह्मचर्य का आचार या ब्रह्म विद्या का पूरा विकास होगा तो जीवन में एक नया तेज और एक नई अनुभूति का आविर्भाव होगा।

## जहां साधुता सिसकती है

हमारी दोनों आंखें जब इस जगत को देखती हैं, तब भेद ही भेद नजर आता है। अभेद खोजने पर मिलता है और मिलता है तो आश्चर्य भी होता है। भेद में कोई आश्चर्य नहीं होता।

हम जिस जगत् में जीते हैं, वह स्थूल है। जिस जगत् को हमारी इन्द्रियां देख रही हैं, वह भी स्थूल है। स्थूल का अर्थ होता है भेद। हम भेद को ही पकड़ पाते हैं। भेद में कम से कम तीन भूमिकाएं की जा सकती हैं—आदि, मध्य और अन्तिम। दुनिया के प्रत्येक पदार्थ में तारतम्य है, भूमिका-भेद है। मकान, पहाड़, नदी और पेड़—इन सबमें तारतम्य है। मनुष्य-मनुष्य में भी तारतम्य स्पष्ट दिखाई देता है। जिन्होंने घर छोड़ दिया, जो साधु बन गए, उनमें भी बहुत तारतम्य होता है।

### भूमिका भेद

साधु बनना एक बात है किन्तु साधु बनने के बाद उसकी जो भूमिकाएं हैं, उन पर ध्यान केन्द्रित होना, उनका सम्यक् निर्वहन करना बिल्कुल दूसरी बात है। सब साधु समान नहीं होते। वे व्यक्ति ढोखे में रहते हैं, जो सब साधुओं को समान मान लेते हैं। एक साधु दूज के चांद जैसा होता है और एक साधु पूनम के चांद जैसा होता है। यह भूमिका-भेद या तरतमता के आधार पर ही कहा गया। इस भूमिका-भेद या तरतमता को समझना आवश्यक है। इस भूमिका-भेद का यथार्थ ज्ञान नहीं होता है तो व्यक्ति भ्रान्ति का जीवन जीता है। जब कभी यह भ्रान्ति टूटती है, तब व्यक्ति को कष्ट होता है। वह अनास्था से भर जाता है, विचलित हो जाता है किन्तु यदि इस तरतमता का स्पष्ट भेद ज्ञात होता है तो व्यक्ति भ्रान्ति में नहीं उलझता, उसकी आस्था विचलित नहीं होती।

### मुनि : तीन श्रेणियां

साधना के स्तर पर साधु की कई भूमिकाएं हैं। भगवान महावीर ने एक मुनि को तीन श्रेणियों में विभक्त किया—भिक्षु कौन होता है ? पूजनीय साधु कौन होता है? पाप श्रमण कौन होता है ? पाप श्रमण का अर्थ है दुष्ट साधु, स्वलना करने

वाला, दोष पूर्ण जीवन जीने वाला मुनि। इन प्रश्नों के आधार पर भगवान् महावीर के तीन तालिकाओं का निर्माण किया—

- जो साधु की न्यूनतम आचार-संहिता का पालन करता है, वह भिक्षु होता है।
- जो साधु की आचार-संहिता का सजगता से पालन करता है, निरन्तर अप्रमाद का जीवन जीता है वह पूजनीय साधु होता है।
- जो साधु की न्यूनतम आचार-संहिता का अतिक्रमण करता है, उसका सम्यग् पालन नहीं करता, सतत प्रमाद का जीवन जीता है, वह पापश्रमण होता है।

### मर्म की बात

उत्तराध्ययन में पापश्रमण के लक्षणों का विस्तृत निर्देश है। जो व्यक्ति मुनि जीवन को स्वीकार कर उसके नियमों का सम्यक्तया पालन नहीं करता, साधना की दिशा में आगे नहीं बढ़ता, यह पापश्रमण होता है। ऐसे मुनि को देख कर साधुता सिसकती है, लज्जित होती है। आचार्य प्रवर बहुत बार कहते हैं—कोई साधु बना और किसी काम में लग गया तो संतोष होता है। यह विश्वास जम जाता है कि वह अपने जीवन को ठीक चलाएगा। साधु बन गया और किसी काम में नहीं लगता है, न स्वाध्याय करता है, न ध्यान, न सेवा और न तपस्या करता है तो बड़ा खतरा बना रहता है। जो साधु बातों में, प्रमाद में, आलस्य में लग गया, उसके जीवन में खतरा बना रहता है।

पूज्य कालूगणी कहा करते थे—जो साधु प्रारंभ में ही बातों में लग जाता है, वह बिगड़ जाता है, उसका जीवन नहीं सुधर सकता।

आहार करना, पानी पीना, नींद लेना, कपड़े पहनना और जीवन चर्या चलाना एक साधु के लिए सामान्य बात है। यह तो एक गृहस्थ भी करता है। इसमें साधुता की कोई अतिरिक्त बात नहीं है। साधु की अतिरिक्त बात आहार से शुरू नहीं होती।

### स्वाध्याय

स्वाध्याय, ध्यान, पवित्र भाव और तप—ये चार साधु की कसौटियां हैं, जो इन कसौटियों का पालन नहीं करता, इनसे विरत रहता है, वह पापश्रमण होता है।

पवित्र श्रमण की पहली कसौटी है—स्वाध्याय। पवित्र श्रमण स्वाध्यायशील होता है। पापश्रमण का स्वाध्याय में मन नहीं लगता। बात करने में जितना रस है, पढ़ने में उतना रस नहीं है। यह केवल आज की बात नहीं है, हजारों वर्ष पूर्व भी ऐसी मनोदशा रही है।

नव दीक्षित शिष्य से आचार्य ने कहा--तुम स्वाध्याय करो, पढ़ना शुरू करो।

शिष्य ने कहा--महाराज ! क्यों पढ़ूं ?

गुरु ने कहा--पढ़े बिना पूरा ज्ञान नहीं होता।

शिष्य ने कहा--महाराज ! मुझे ज्ञान की जरूरत क्या है ? आपकी कृपा प्राप्त हो गई है, आपका वरदहस्त प्राप्त हो गया है, फिर चिन्ता किस बात की है ? एक व्यक्ति को मकान, कपड़े, रोटी और पानी चाहिए, ये सभी आपकी कृपा से मिल रहे हैं।

आचार्य ने कहा--सारी बातें तो मिल रही हैं पर पढ़े बिना पता कैसे चलेगा कि कहां क्या हो रहा है ?

शिष्य बोला--महाराज ! मुझे सारा पता है कि कहां, कौन, क्या कर रहा है।

आचार्य बोले--तू समझता नहीं है। ये तो सारी लौकिक बातें हैं। खाना, पीना, कपड़ा, मकान--ये तो लौकिक हैं। ये इस जीवन यात्रा को चलाने वाली बातें हैं। इनसे साधुपन का क्या विशेष लाभ मिला ?

### दो प्रेक्षाएं

आचार्य ने आगे कहा--प्रेक्षा दो प्रकार की होती हैं। एक का नाम है अपरा और दूसरी का नाम है परा। अपरा विद्या और परा विद्या। अपरा प्रेक्षा और परा प्रेक्षा। जो अपरा प्रेक्षा है, वह लौकिक है, वर्तमानदर्शी है। परा प्रेक्षा अलौकिक है, दूरदर्शी है। वह केवल जो सामने है, उसी को नहीं देखती, वर्तमान में उपलब्ध है, उसी को नहीं देखती, दूर तक की बात को देखती है।

*अपरा तोषमायाति प्रेक्षा संग्राह्य लौकिकम्।*

*परा तु दूरदर्शित्वाद् अलौकिकपदं व्रजेत् ॥*

सबसे कठिन है पर को देखना। हमारी इन्द्रियों की, बुद्धि और चिंतन की सीमा अत्यन्त छोटी है। जो लोग इनकी सीमा में जीते हैं वे छोटी बात को सोचते हैं और छोटी बात को देखते हैं। बड़े लक्ष्य की ओर उनका ध्यान ही नहीं जाता। वे केवल दृश्य में उलझ जाते हैं, अदृश्य जगत् उनके लिए अगम्य बन जाता है। जब तक परा प्रेक्षा नहीं जागे, तब तक अलौकिक पद प्राप्त नहीं होगा।

### ज्ञानार्जन का मूल्य

शिष्य ने पूछा--गुरुदेव ! यह अलौकिक पद क्या है ? गुरु ने कहा--पढ़े बिना पता नहीं चलता। श्रुत स्वाध्याय ही एक ऐसा उपाय है जिसके द्वारा हम परोक्ष को प्रत्यक्ष कर सकते हैं। स्वर्ग किसने देखा है ? नरक किसने देखा है ? स्वाध्याय के

द्वारा प्रत्यक्ष हो सकता है। श्रुतज्ञान प्रत्यक्ष करा देता है। नई-नई बातें श्रुत के द्वारा प्राप्त होती हैं। जब श्रुत नहीं होता है तो अज्ञान होता है। आदमी नई बात से भी भड़क जाता है।

स्वाध्याय का, ज्ञानार्जन का बहुत बड़ा मूल्य है। अगर वर्तमान की पीढ़ी ज्ञानवान् नहीं होती है, दूरदर्शी नहीं होती है तो उसका परिणाम भावी पीढ़ियों को भुगतना पड़ता है। यह एक बहुत बड़ा शाश्वत सत्य है। वर्तमान की पीढ़ी पर दो दायित्व होते हैं—अतीत का दायित्व यानी अपने पुरखों के प्रति दायित्व और भावी पीढ़ी के प्रति दायित्व यानी अपने बच्चों के भविष्य-निर्माण का दायित्व। जो वर्तमान की पीढ़ी अपनी बात सोचती है, अपने तक सोचती है, वह बहुत खतरनाक पीढ़ी होती है। अपने द्वारा किया हुआ कार्य भावी पीढ़ी पर क्या प्रभाव डालेगा ? यह सोचना दूरदर्शिता है। यदि यह दूरदर्शिता नहीं होती है तो भावी पीढ़ी वर्तमान पीढ़ी को सदा कोसती रहती है।

### जीवन का लक्ष्य

रोटी, कपड़ा और मकान जीवन का लक्ष्य नहीं है। जीवन का लक्ष्य होना चाहिए—निरन्तर नए तथ्य की प्राप्ति और वह स्वाध्याय से संभव है। जो गृहस्थ एक दिन में कोई नई बात नहीं पढ़ता और नई जानकारी नहीं लेता, तो क्या वह केवल खाने-पीने के लिए ही जीवन धारण करता है ? यदि वह केवल इनके लिए ही जी रहा है तो मनुष्य जीवन की व्यर्थता इससे बड़ी क्या होगी ? मनुष्य जीवन की सार्थकता ज्ञानार्जन से है। मनुष्य को ज्ञान की शक्ति मिली है। जानने की शक्ति मिली है। अगर उसका वह कोई उपयोग नहीं करता है तो उससे बड़ी जीवन की कोई निरर्थकता नहीं हो सकती।

एक अच्छे मुनि का लक्षण है—स्वाध्यायशील होना। पर स्वाध्याय में बड़ी बाधा है—आलस्य और नींद। महावीर ने कहा—जो साधु बन गया और केवल आहार, पानी और नींद में अपना जीवन बिताता है, वह पापश्रमण है।

### चिन्तनीय प्रश्न

चिन्तन का प्रश्न है—यदि साधु का सारा समय प्रमाद में बीतता है, केवल आहार, पानी, गोचरी आदि में बीतता है, न उसके स्वाध्याय होता है, न ध्यान होता है, न कोई विकास के लिए चिन्तन होता है और न अध्यात्म की यात्रा आगे बढ़ती है तो इस स्थिति में क्या साधुता नहीं सिसकती है ? साधुता सोचती है—मुझे कहां जाना था और मैं कहां आ गई !



जब कभी लक्ष्मी किसी कृपण आदमी या दुष्ट आदमी के पास चली जाती है तब वह भी रोती है। वह सोचती है—मैं किसके पल्ले पड़ गई। गलत स्थान पर आ गई। जैसे लक्ष्मी जैसी शक्तियां गलत स्थान को पाकर सिसकने लग जाती हैं, वैसे ही साधुता जैसी पवित्र शक्ति किसी असाधुचरित व्यक्ति के पास चली जाती है तो सिसकने लग जाती है।

### पुण्यश्रमण

महावीर ने मार्गदर्शन दिया—हर साधु सावधान रहे, साधुता को सिसकने न दे। एक साधक मुनि-धर्म की आराधना करता है, पांच महाव्रतों को ठीक पालता है, किन्तु वह व्यवहार में कुशल नहीं है, शान्ति-पूर्ण जीवन जीना नहीं जानता है तो साधुता सुबक उठती है। मुनि जीवन में समस्या पैदा हो जाती है।

भगवान् महावीर ने पुण्यश्रमण के लिए जो बातें बतलाई हैं, उनमें कोरे महाव्रत ही नहीं हैं, पूरी जीवन की शैली का निरूपण है। मुनि एक प्रकार की जीवन-शैली को अपनाकर पापश्रमण बन जाता है और सम्यक् प्रकार की जीवन-शैली अपनाकर पुण्यश्रमण बन जाता है।

### बड़ा कौन बनता है

पूज्य कालूगणी टमकोर से राजगढ़ पधार रहे थे। एक दिन मध्यवर्ती छोटे ग्राम में ठहरे। शाम का समय था। मैं और मेरे सहपाठी मुनि बुद्धमल्लजी आचार्यश्री की उपासना में बैठे थे। कालूगणी ने कहा—तुम बड़ा बनना चाहते हो या छोटा ? हमने तत्काल कहा—बड़ा। प्रत्येक आदमी बड़ा होना चाहता है, छोटा होना कोई नहीं चाहता। कालूगणी ने कहा—लो ! तुम यह श्लोक सीखो—

*बालसखित्वमकारणहास्यं, स्त्रीषु विवादमसज्जनसेवा।*

*गर्दभयानमसंस्कृतवाणी, षट्सु नरो लघुतामुपयाति ॥*

बाल-सखित्व, अकारण हास्य, स्त्रियों से विवाद, दुर्जन की सेवा, गधे की सवारी और असंस्कृत भाषा—इन छह कारणों से व्यक्ति लघुता को प्राप्त होता है।

### विवाद से बचें

जो बच्चों के साथ ज्यादा हंसी-मजाक करता है या मित्रता करता है, जो अकारण हंसता है, बात-बात पर हंसता है, ऐसा व्यक्ति छोटा बन जाता है। जो व्यक्ति स्त्रियों के साथ विवाद करता है, वह भी छोटा बन जाता है। पुरुष को बड़ा माना जाता है और स्त्री को छोटा। स्त्री के साथ विवाद करे और जीत जाए तो लोग कहेंगे—आखिर स्त्री को ही तो जीता, क्या बड़ा काम किया ? हार जाएगा तो लोग कहेंगे—नपुंसक

है, स्त्री से हार गया। दोनों ओर से हानि है। कहीं भी विजय की बात नहीं। शायद इसी अपेक्षा से कहा गया होगा—स्त्रियों के साथ विवाद करना एक छुटपन का कार्य है। इस संदर्भ को व्यापक रूप दिया जा सकता है। स्त्रियों के साथ ही नहीं, किसी भी व्यक्ति के साथ विवाद करने वाला छोटा बन जाता है।

*यदिच्छंसि गुरोर्भावं विवादं त्यज दूरतः।*

*आग्रहेन विवादेन, लघुतां मानवो व्रजेत्॥*

यदि तुम महान् बनना चाहते हो तो विवाद को छोड़ दो। आग्रह और विवाद से मनुष्य छोटा बन जाता है।

### मनुष्य की मनोवृत्ति

भगवान् महावीर ने कहा—

*विवादं च उदीरेद्, अहम्मे अतपन्नहा।*

*वुग्गहे कलहे रत्ते, पावसमणे ति वुच्चई॥*

जो शान्त हुए विवाद को फिर से उभारता है, जो सदाचार से शून्य होता है, जो कुतर्क से अपनी प्रज्ञा का हनन करता है, जो कदाग्रह और कलह में रत होता है, वह पापश्रमण कहलाता है। कुछ व्यक्तियों की मनोवृत्ति विवाद को उकसाने की होती है। विवाद का प्रसंग नहीं होता है तो भी वे जानबूझ कर विवाद को पैदा कर देते हैं। वे हर बात को विवाद का रूप दे देते हैं। भगवान् महावीर ने इसी मनोवृत्ति की ओर संकेत किया है।

### संवाद : विवाद

दो शब्द हैं—संवाद और विवाद। संवाद का अर्थ होता है जुड़ जाना। विवाद का मतलब है टूट जाना, बिखर जाना। प्रत्येक बात को सम्यक् ग्रहण करने से संवाद बनता है किन्तु मनुष्य ऐसा नहीं करता। वह हर बात में विवाद खड़ा कर देता है। मूल बात तो जहां की तहां रह जाती है और एक नया अध्याय उसके साथ जुड़ जाता है। यह मानवीय प्रकृति की बहुत बड़ी समस्या है। महावीर ने जीवन शैली का महत्त्वपूर्ण सूत्र दिया—विवाद के स्थान पर संवाद करना सीखो।

### विवाद और कलह

विवाद, विग्रह और कलह—यह एक श्रृंखला है। पहले विवाद शुरू होता है, फिर बढ़ते-बढ़ते विग्रह बन जाता है। विवाद बढ़ा, खींचातानी हुई और कलह हो गया। कलह की समस्या शाश्वत समस्या है। आदमी बहुत कलह करता है पर कलह होता क्यों है ? अगर हम इस प्रश्न की मीमांसा करें तो साफ होगा—कलह सीधा नहीं

होता। वह शुरू होता है विवाद से। विवाद बढ़ते-बढ़ते विग्रह का रूप ले लेता है, उनमें आग्रह और जुड़ जाता है। विवाद, आग्रह और विग्रह की परिणति है कलह।

महावीर ने कहा—जो मुनि महाव्रती होते हुए भी इन तीन चीजों का प्रयोग करता है, वह पापश्रमण है। आग्रह करने वाला, विग्रह करने वाला और विवाद करने वाला मुनि पापश्रमण है। मुनि के लिए कहा गया—जहां विवाद बढ़े, वहां वह तत्काल अपनी आत्मरक्षा करे। आत्मरक्षा का उपाय है—मौन हो जाना। विवाद वहीं समाप्त हो जाएगा।

### प्रकृति का चित्रण

उत्तराध्ययन के सतरहवें अध्ययन में सर्वांग जीवन शैली के पक्ष और प्रतिपक्ष का बहुत सुन्दर चित्रण हुआ है। जयाचार्य ने दो गीतिकाएं बनाई—खोड़ीली प्रकृति नो घणी और चोखी प्रकृति नो घणी।

इन दोनों गीतिकाओं में मनुष्य की प्रकृति का जीवन्त वर्णन है। इस संदर्भ में जयाचार्य ने एक सुन्दर घटना प्रस्तुत की है—

कोई व्यक्ति कपड़ा सी रहा है और बात भी कर रहा है। किसी ने कहा—कपड़ा भी सी रहे हो और बात भी कर रहे हो। कहीं सूई की लग न जाये, इसलिए बातें मत करो। वह प्रत्युत्तर में कहता है—मुझे क्या कह रहे हो, तुम सावधान रहना, कहीं तुम्हारे न लग जाए। जयाचार्य ने कहा—ऐसा व्यक्ति खोड़ीली प्रकृति का घणी होता है।

महावीर की भाषा में ऐसा मुनि पापश्रमण होता है, साधुओं के ऐसे आचरण से साधुता सिसक उठती है।

### संक्रामक बीमारी

यदि अच्छी बात कोई बच्चा भी कहे तो उसे स्वीकार कर लेना चाहिए। किन्तु जिसकी प्रकृति अच्छी नहीं होती है, वह कहेगा—मुझे सलाह देने आया है। खुद तो अपना ध्यान ही नहीं रखता और मुझे सीख देता है।

‘सम्यक् ग्रहण न करना’—एक बहुत बड़ी संक्रामक बीमारी है। एक-दो नहीं, किन्तु प्रत्येक व्यक्ति इससे ग्रस्त है। प्रत्येक व्यक्ति कहता है—तुम अपना ध्यान रखो, दूसरे की चिन्ता को छोड़ो। वह अच्छी प्रेरणा को भी सम्यक् स्वीकार नहीं करता किन्तु प्रतिक्रिया करता है। वह सोचता है—कब मैं उसकी बात को पकड़ूं और कहूं—तुम स्वयं क्या कर रहे हो ? जब तक यह नहीं कह देता तब तक उसे पूरा चैन भी नहीं पड़ता। एक प्रकार से मानसिक बेचैनी जैसी स्थिति बन जाती है। उसे तब तक संतोष नहीं मिलता जब तक वह सामने वाले व्यक्ति की बुराई को पकड़ नहीं लेता।

## साधुता की शोभा

विनम्रता साधुता की शोभा है। प्राचीन साधुओं की जीवनियां पढ़ें। जितने भी अच्छे साधु हुए हैं, वे अत्यन्त विनम्र थे। जैन परम्परा में और अन्य पराम्पराओं में भी ऐसे साधुओं का प्रचुर उल्लेख मिलता है। साधु कहीं भी मिल सकता है, सज्जनता कहीं भी मिल सकती है। भद्रता, उच्चता और विशालता—ये किसी देशकाल से बंधे हुए नहीं हैं। ऐसे ऐसे विलक्षण सन्त हुए हैं, जिन्होंने हर बात को सहा है। आचार्य भिक्षु की जीवनी को पढ़ें, उन्होंने बहुत कुछ सहा है। प्रत्येक बात को सम्यक् ग्रहण करना उनके जीवन की विशेषता थी। जो आदमी हर बात को सम्यक् ले लेता है, उसका कोई कुछ भी बिगाड़ नहीं सकता।

## महान् बनने का बिन्दु खोजें

बुद्धिमान आदमी वही होता है, जो बुराई में से अच्छे प्रसंग निकाल लेता है। जिस आदमी में विशालता होती है, उसमें महानता जागती है। गुरुता और बड़प्पन के लिए इन छोटी-छोटी बातों से बचना बहुत आवश्यक है। आदमी को अनेक बार सहना पड़ता है। यह सहना उसमें बड़प्पन लाता है और न सहना छुटपन लाता है। अगर छोटे व्यक्तियों से निम्नता का व्यवहार करोगे तो जीवन भर वे तुम्हारे सामने बोलते ही रहेंगे। खुद में महानता नहीं होती है, छिछलापन होता है तो व्यक्ति जीवन भर छोटा ही बना रहता है। जब एक मुनि की महानता और विशालता कम होती है, उसमें शुद्धता की वृत्ति जन्म नहीं लेती है तब साधुता सिसक उठती है। साधुता के सिसकते रूप को बदलने के लिए बुद्धिमानी और शालीनता की जरूरत है, विशालता और महानता की जरूरत है। यदि व्यक्ति बुद्धिमान होता है, उदात्त और महत्तम प्रकृति का होता है तो प्रत्येक घटना में से महान् बनने का बिन्दु खोज लेता है।

जो व्यक्ति सम्यग् आचरण और व्यवहार करना जानता है, वह सारे विवादों को शान्त कर देता है, समाधि का जीवन जीता है और पुण्यश्रमण बन जाता है। इस सूत्र पर निरन्तर मनन किया जाये तो साधुता समर्थ और शक्तिशाली बनती चली

## अभयो पत्थवा तुभं

प्रत्येक व्यक्ति अभय होना चाहता है। वह सदा भय से मुक्त होने की चर्चा करता रहता है। वस्तुतः जो दूसरों को डराता है, वह डर की चर्चा करने का अधिकारी नहीं है। अभय के लिए सबसे पहले डराने की बात छोड़ें, फिर डरने की बात ही न आएगी। डरो मत, अभय बनो, इसके स्थान पर यह सूत्र होना चाहिये—‘डराओ मत’। यह सूत्र बनेगा तभी ‘न डरो’ का सूत्र मजबूत बनेगा। भगवान महावीर ने दोनों बातें एक साथ कही—*णो भायए नो वि य भावियप्पा*—डरो मत और डराओ मत। इन दोनों को अलग नहीं किया जा सकता।

### बुद्धि और अभय

राजर्षि ने राजा संजय से कहा—मैं तुम्हें अभयदान देता हूँ पर तुम भी दूसरों को मत डराओ। यह अभय का बहुत महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। जहां व्यवहार का जीवन है, सामाजिक और संस्थागत मूल्यों का जीवन है, वहां बहुत बार डरना पड़ता है और डरना जरूरी भी हो जाता है।

हम डरें तो बुद्धिमानी के साथ डरें। बुद्धि और डर एक बात है। जड़ और डर दूसरी बात है। मूर्ख वह होता है, जिसमें मूर्खता होती है और जड़ वह होता है, जो अपने खतरों से भी अनजान रहता है। न मूर्खता, न जड़ता किन्तु बुद्धि के साथ डरें। चूल्हा जलता है तो आदमी उसमें हाथ नहीं डालेगा। चूल्हा बुझा हुआ है तो वह हाथ से उसे साफ कर देगा क्योंकि उसमें समझ होती है। बुद्धि और अभय, बुद्धि और भय—ये दोनों बातें साथ में होनी चाहिए। हम जड़ नहीं हैं कि खतरों से अनजान रहें।

### अभय कहां है ?

कहा जाता है—एक आतंकवादी डरता नहीं, सैनिक भी डरता नहीं। यह सही नहीं है। सैनिक अभय कहां है ? वह तो इतना भयभीत है कि शस्त्रों से लदा रहता है। अगर अभय होता तो शस्त्र कभी हाथ में लेता ही नहीं। एक योद्धा कभी अभय नहीं हो सकता, आतंकवादी कभी अभय नहीं हो सकता और अभय कोई जड़ भी

नहीं हो सकता। जड़ में खतरे का भान नहीं होता। अभय वह होता है, जिसमें बुद्धि का विकास होता है। अभय की पहली शर्त है—बौद्धिक विकास। जो बुद्धिहीन हैं, वे अभय नहीं हैं क्योंकि उनमें चेतना विकसित ही नहीं है। इस तथ्य में भी अब संशोधन करना चाहिए। कुछ मनुष्य खतरे से अनजान होते हैं, परन्तु बहुत से छोटे प्राणी खतरे को बहुत पहले भांप जाते हैं। वह प्राणी में अतीन्द्रिय चेतना होने का प्रभाव है। ज्वालामुखी फटने वाला है, सारे प्राणी वहां से चले जाएंगे। उनके भागने के आधार पर अनुमान किया जाता है कि ज्वालामुखी फटने वाला है। वेकस्टर ने वनस्पति पर बहुत प्रयोग किए। इस संदर्भ में उनकी एक पुस्तक है—मार्डन रिसर्व। उसने सात व्यक्तियों को भेजा पर पौधे शांत बने रहे। फिर उस व्यक्ति को भेजा, जिसकी मनोवृत्ति पौधों को तोड़ने-मोड़ने की थी। वह व्यक्ति जैसे ही पौधों के सामने आया, गेल्वेनोमीटर की सूई घूमने लग गई। पोलिग्राफ पर भय जताने वाली रेखाएं अंकित हो गई। भय को भांपने की बुद्धि हर छोटे प्राणी में होती है। त्रस की गति ही यह बता देती है कि वे भयभीत होते हैं। *त्रसिताः पलायिताः*—वे भय से पलायन कर जाते हैं। पलायन एक प्रवृत्ति है। उसका सवेग है भय।

### डर जरूरी भी है

मुनि ने कहा—राजन् ! तुम अभय रहो। मैं तुम्हें अभय देता हूं। मैं तुम्हारा कोई अनिष्ट नहीं करूंगा पर साथ-साथ तुम्हारी यह चेतना भी जागे कि तुम भी किसी का अनिष्ट नहीं करोगे, किसी का प्राण-हरण नहीं करोगे। यह है अभय का विकास। हर व्यक्ति में भय और अभय—दोनों होते हैं। अभय आवश्यक है तो भय भी आवश्यक है। प्रश्न है—कितना डरना चाहिए और कितना नहीं डरना चाहिए। कब डरना चाहिए और कब नहीं डरना चाहिए ? कैसे डरना चाहिए और कैसे नहीं डरना चाहिए ? यह विवेक हमें करना चाहिए। कहा गया—‘भय बिनु प्रीति न होय।’ यह भी एक सच्चाई है। प्रीति भय के बिना नहीं होती। भय निकल गया और चेतना जागी नहीं तो व्यक्ति उहड़, आक्रामक बन जाएगा। हमारे सवेग भी नियामक होते हैं। समाज भय के आधार पर चलता है, राज्य भय के आधार पर चलता है क्योंकि भय नियामक होता है। इसका निदर्शन है यह श्लोक—

*हर डर गुरु डर गांव डर, डर करणी में सार।  
तुलसी डरै तो ऊबरै, गाफिल खारै मार॥*

### डरें किससे

कब, किससे डरना चाहिए और कब नहीं डरना चाहिए ? इसमें विवेक और बुद्धि की जरूरत है। जहां मूढ़ात्मा विश्वस्त है, वहां व्यक्ति के लिए उससे बड़ा कोई

भय और खतरा नहीं होता। जो भयभीत है, उसके लिए अभय का कोई दूसरा स्थान नहीं है।

*मूढात्मा यत्र विश्वस्तः ततो नान्यद् भयास्पदम्।  
यतो भीतस्ततो नान्यद्, अभयस्थानमात्मनः॥*

आदमी धन में बहुत विश्वास करता है। वह सोचता है—धन काम आएगा पर पता नहीं वह उसके काम आएगा या औरों के काम आएगा। जो अभय देने वाला स्थान है, उससे वह घबराया हुआ रहता है और जो भय का स्थान है, उसे अभय का स्थान मान लेता है। यह विपर्यय भय का सबसे बड़ा कारण है।

**अभय है आत्मस्थ**

अभय को छोड़कर महावीर की व्याख्या नहीं की जा सकती। महावीर को छोड़कर अभय की व्याख्या नहीं की जा सकती। अभय का दूसरा कारण बनता है—आत्मस्थ हो जाना। जहां बुद्धि का विकास बढ़ता है, वहां आदमी झूठे भयों से मुक्त होता चला जाता है। माताएं बच्चों को अपने स्वार्थ के लिए हौवा का डर बहुत दिखाती हैं, परिणामतः बच्चे कमजोर और डरपोक बन जाते हैं। यदि किसी पचास वर्ष के आदमी से कहा जाए—भीतर मत जाना, हौवा बैठा है, तो वह बिल्कुल नहीं डरेगा क्योंकि उसमें बुद्धि का विकास हो गया है। जो आत्मस्थ हो जाता है, संतुलित बन जाता है, वह भी कभी नहीं डरता। असंतुलन भय पैदा करता है। क्रोध आया, भय पैदा हो जाएगा, झूठ बोला, भय पैदा हो जाएगा। भय परिणाम है। माया और भय का संबंध है। आजकल अनेक व्यक्तियों का छोटी अवस्था में हार्टफैल हो जाता है। इसके दो कारण हैं—लौभ और भय। भय से आदमी का हार्ट कमजोर बनता चला जाएगा। जहां आत्मस्थता नहीं आती वहां भय बना का बना रहता है।

**भयग्रस्त कौन ?**

अभय के संदर्भ में कहा गया—जो अतिमात्र भय है, पहले उसे क्षय करना सीखो। पहले यह बात न करो कि सीधे अभय के बिन्दु पर पहुंच जाएं। भय का सर्वथा क्षय बड़ा कठिन है। कितना डरना चाहिए या कितना नहीं डरना चाहिए, क्यों डरना चाहिए और क्यों नहीं डरना चाहिए, इन सूत्रों का विवेक करना हमारे लिए बहुत जरूरी है।

एक प्रश्न है—भयग्रस्त कौन ? (जो मूढ़ है, वह भयग्रस्त है। जो भयग्रस्त है, वह मूढ़ है। मूढ़ और मूर्ख एक नहीं हैं। मूढ़ वह होता है, जिसमें धनीभूत मूर्च्छा होती है और धूर्व वह होता है, जिसमें समझ कम होती है। जो जड़ है, वह भय के स्थान

को पकड़ ही नहीं पाता। जो मन से दुर्बल है, वह भी भयभीत रहता है। सारा जगत् मय से आकुल है। अभय वास्तव में वह होता है, जो न मूढ़ होता है और न जड़।

*मूढो नित्यं भयग्रस्तः, मूर्खो भाति भयद्रुतः।*

*मनसा दुर्बलो भीतो, भयभीतमिदं जगत्॥*

*जड़ो भयास्पदं सम्यग्, न गृह्णाति न चाभयः।*

*स एवास्त्यभयो लोके, यो न मूढो न वा जड़॥*

### दूसरों को न डराएं

भगवान महावीर की साधना का एक महत्वपूर्ण सूत्र है—अभय। वह तभी सिद्ध हो सकता है, जब हम यह संकल्प करें—हम दूसरों को डराएंगे नहीं, सताएंगे नहीं, दूसरों को कष्ट नहीं देंगे, अपनी ओर से दूसरों का तिलमात्र भी अनिष्ट नहीं करेंगे। जैसे जैसे यह चेतना जागती जाएगी, अभय की चेतना अपने आप विकसित होती चली जाएगी। एक ओर अभय की अनुप्रेक्षा करें, दूसरी ओर आरम्भ और परिग्रह का भाव पुष्ट बनता चला जाए तो अभय की साधना विफल हो जाएगी। हम भय और लोभ की भावना को पुष्ट न होने दें, अभय हमारे जीवन में स्वतः घटित होगा।



## राजर्षियों की परंपरा

शिष्य ने जिज्ञासा की--गुरुदेव ! हमारी दुनिया में बहुत सारी कलाएं हैं। पुरुषों के लिए बहत्तर और स्त्रियों के लिए चौसठ कलाएं बतलाई गई हैं। क्या कोई ऐसा व्यक्ति है, जो सारी कलाओं को जानता है ? एक व्यक्ति बहत्तर कलाओं को पढ़ सकता है, पर उन्हें जान जाए, यह बहुत मुश्किल है। पढ़ना जितना आसान है उतना ही कठिन है उसमें दक्ष या निपुण होना। क्या इस स्थिति में एक व्यक्ति इतनी सारी कलाओं का ज्ञाता हो सकता है ?

गुरु ने कहा--जो दो कलाओं को जान लेता है, वह सब कलाओं को जान लेता है।

### दो कलाएं

उपनिषद्कारों ने कहा--जो आत्मा को जानता है, वह सब को जान लेता है। जो आत्मविद् है, वह सर्वविद् है। आचार्य ने दो कलाओं की ओर संकेत किया है। व्यंग्य की दो कलाएं मानी जाती हैं। एक है अपनी बुद्धि या समझ का न होना और दूसरी है--दूसरे की बात को न मानना। राजस्थान की प्रसिद्ध लोकोक्ति है--स्वयं की उपजें नहीं, औरों की माने नहीं--स्वयं में अक्ल का न होना और दूसरे के परामर्श को अस्वीकार कर देना। आचार्य ने जिन कलाओं की ओर दिशा निर्देश किया है, उनका संबंध इन कलाओं से नहीं है।

आचार्य की भाषा में दो कलाएं हैं--जीने की कला और मरने की कला।

*जीवनं च कलापूर्णं, मृत्युः साप्यतिशायिनी।*

*स कलां सकलां वेत्ति, रहस्यमनयोद्युवम्॥*

जीवन की कला से भी अतिशायी है मृत्यु की कला। जीवन की कला और मृत्यु की कला के रहस्य को जानना सब कलाओं के रहस्य-सूत्र को जानना है। जो इन कलाओं को जानता है, वह सब कलाओं को जानता है। प्रश्न हो सकता है, क्या जीवन का भी कोई रहस्य है ? मृत्यु का भी कोई रहस्य है ?

### महत्त्वपूर्ण प्रश्न

आरण्यक पुत्र श्वेतकेतु पांचाल की सभा में पहुंच गया। राजा प्रवाहण ने

पूछा—तुम्हारे पिता ने तुम्हें क्या पढ़ाया है ?

श्वेतकेतु—महाराज ! मुझे सब विद्याओं में निष्णात बनाया है।

कुमार ! बताओ, मरने के बाद प्रजा कहां जाती है ?

महाराज ! मैं यह नहीं जानता। मुझे यह नहीं बताया गया ।

यह प्रजा कहां से आती है? कैसे आती है ?

महाराज ! इसका भी मुझे पता नहीं है ?

देवयान और पितृयान के मार्ग अलग कहां होते हैं ? पहले ये साथ-साथ चलते हैं। आगे जाकर कहां अलग हो जाते हैं ?

इस प्रश्न का उत्तर भी मुझे ज्ञात नहीं है।

पितृलोक मरता क्यों नहीं है ?

यह भी मैं नहीं जानता ।

पाँचवीं आहुति के हवन करने पर आप, सोम, रस आदि पुरुष की संज्ञा को कैसे प्राप्त होते हैं ? क्या तुम्हें इनका ज्ञान है ?

नहीं।

कुमार ! तुम्हारे पिता ने तुम्हें क्या सिखाया ? तुम कहते हो—मैं शिक्षित हूँ, शिक्षा को उपलब्ध कर चुका हूँ। जब तुम इन बातों को नहीं जानते तब तुमने कैसी शिक्षा पायी है ?

आज के किसी भी विद्यार्थी से ये प्रश्न पूछ लिए जाए तो क्या वह उत्तर दे पाएगा ? जो स्नातक हैं, ग्रेजुएट या पोस्ट ग्रेजुएट हैं, डाक्टर या वकील हैं, उनसे यह पूछा जाए—बताइए ! प्रजा कहां से आती है ? प्रजा कहां चली जाती है? कैसे चली जाती है ? क्या वे इन प्रश्नों को समाहित कर पाएंगे ?

### आत्मविद्या

कुमार श्वेतकेतु सीधा अपने पिता के पास आया। उसने पिता से कहा—पिताजी! आप कहते हैं—आपने मुझे सारी विद्याएं पढ़ा दी। आपने सारी विद्याएं कहां पढ़ाई हैं ? आज मुझे कितनी लज्जास्पद स्थिति का सामना करना पड़ा। राजा प्रवाहण ने मुझसे पांच प्रश्न पूछे। मैं एक भी प्रश्न का उत्तर नहीं दे सका। मेरे लिए यह कितनी लज्जा की बात है ?

पिता गौतम ने श्वेतकेतु से कहा—पुत्र ! इस विद्या पर ब्राह्मणों का अधिकार नहीं है। इस विद्या को क्षत्रिय लोग ही जानते हैं।

गौतम स्वयं राजा प्रवाहण के पास आए। गौतम ने कहा—राजन् ! मैं कुछ प्रश्न लेकर आया हूँ, आप इन्हें समाहित करें।

राजा प्रवाहण बोले—प्रियवर ! आज तक इस विद्या पर क्षत्रियों का अधिकार रहा है। आज पहली बार यह विद्या मैं तुम्हें बता रहा हूँ।

यह छांदोग्य उपनिषद् की घटना है। ऐसी ही घटना का उल्लेख बृहदारण्यक उपनिषद् में मिलता है। उसमें राजा प्रवाहण आरण्यक से कहता है—इससे पूर्व यह विद्या किसी ब्राह्मण के पास नहीं रही है। आज पहली बार मैं तुम्हें यह विद्या बताऊंगा।

उपनिषदों को पढ़ने वाला व्यक्ति इस बात को बहुत सरलता से जान सकता है—आत्मविद्या पर एक मात्र क्षत्रियों का अधिकार रहा है। क्षत्रियों ने ब्राह्मणों को यह विद्या सिखलाई। इस सच्चाई को पुष्ट करने वाले अनेक प्रमाण मिलते हैं।

### आत्मविद्या की परंपरा : अग्निविद्या की परंपरा

दो परंपराएं स्पष्ट रूप से सामने आती हैं। एक परंपरा थी—आत्मविद्या की परंपरा, क्षत्रियों की परंपरा। जैन आगमों में कहा गया—तीर्थंकर क्षत्रिय होता है। इस कथन में एक रहस्य छिपा है। क्षत्रिय का अर्थ क्षत्रिय जाति नहीं, क्षत्रिय की परंपरा। क्षत्रिय परंपरा का तात्पर्य है—आत्मविद्या का ज्ञाता। जो आत्मविद्या को जानता है, वही तीर्थंकर होता है। जो आत्मविद्या को नहीं जानता, वह जैन परंपरा का, ऋषभ या काश्यप की परंपरा का तीर्थंकर नहीं हो सकता।

दूसरी परंपरा थी अग्निविद्या की परंपरा, यज्ञ की परंपरा। उस पर एक मात्र ब्राह्मणों का अधिकार रहा। भविष्य में दोनों परंपराओं का मिलन हो गया। जो आत्मविद्या की परंपरा क्षत्रियों में थी, वह ब्राह्मणों में चली गई। अग्निविद्या को जैनों ने अपना लिया।

### उपनिषद् और श्रमण परंपरा

अध्ययन करने वाले व्यक्ति के ध्यान में यह रहना चाहिए—जितने उपनिषद् हैं, वे आज वैदिक परंपरा से जुड़ गए हैं, किन्तु सारे उपनिषद् वैदिक परंपरा के नहीं हैं, बहुत सारे उपनिषद् श्रमण परंपरा के भी हैं। कुछ ऐसा योग बना, श्रमण परंपरा के अनेक संप्रदाय नष्ट हो गए। नष्ट होने के बाद जो धन बचता है, उसका कोई उत्तराधिकारी नहीं रहता। जहां कोई उत्तराधिकारी नहीं होता वहां धन को कोई भी अपने अधिकार में ले लेता है। श्रमण परंपरा के उपनिषदों को वैदिक परंपरा ने अपने अधिकार में ले लिया और वे उपनिषद् भी वैदिक परंपरा के माने जाने लगे। वस्तुतः अनेक उपनिषदों में वैदिक परंपरा के प्रतिकूल तत्त्व बहुत हैं। उपनिषदों में यज्ञों का खण्डन किया गया है, वेदों का खण्डन किया गया है। यदि उपनिषद् वैदिक परंपरा से जुड़े होते तो उनमें ये बातें कैसे लिखी जातीं ? इससे यह स्पष्ट होता है—उपनिषद् किसी अन्य परंपरा के रहे हैं। किन्तु कालान्तर में उनको स्वीकार कर लिया गया।

ब्राह्मण परंपरा अपनाने में बहुत उदार रही है। यह इन शताब्दियों की घटना नहीं है, किन्तु ऐतिहासिक तथ्य है। हर्मन जेकोबी आदि पाश्चात्य विद्वानों ने भी यह स्वीकार किया है—वैदिक परंपरा बहुत उदार रही है और उसने बहुत सारे दूसरों के तत्त्वों को अपना लिया।

आज श्रमण और ब्राह्मण—दोनों परंपराओं का संगम हो गया। वर्तमान में शुद्ध रूप में न किसी को श्रमण परंपरा कहा जा सकता है और न किसी को ब्राह्मण परंपरा। दोनों में तत्त्वों का इतना मिश्रण है कि पृथक्करण करना आसान नहीं है। बहुत गहरे अध्ययन के बाद ही दोनों परंपराओं में पृथक्ता के बिन्दुओं का उद्घाटन संभव बन सकता है।

### राजाओं की परंपरा

आत्मविद्या के अधिकारी थे क्षत्रिय, इसका एक साक्ष्य है उत्तराध्ययन का अठारहवाँ अध्ययन। इसमें क्षत्रिय राजाओं की एक लंबी परंपरा का वर्णन है। प्रायः शासक क्षत्रिय होते रहे हैं। जो क्षत्रिय शासक मुनि बने हैं, उनकी एक प्रलंब श्रृंखला जैन परंपरा में है। उत्तराध्ययन में दो प्रकार के राजाओं का इतिहास मिलता है। कुछ वे हैं, जो प्राग ऐतिहासिक काल में हुए हैं और कुछ वे हैं, जो ऐतिहासिक हैं। भरत, सगर, सनत्कुमार आदि प्रागैतिहासिक हैं। राजा दशार्णभद्र, उद्रायन आदि ऐतिहासिक हैं—

- |                        |                     |
|------------------------|---------------------|
| १. राजा संजय           | १०. चक्रवर्ती जय    |
| २. चक्रवर्ती भरत       | ११. राजा द्विमुख    |
| ३. चक्रवर्ती सगर       | १२. राजा दशार्णभद्र |
| ४. चक्रवर्ती मघवा      | १३. राजा करकुण्डु   |
| ५. चक्रवर्ती सनत्कुमार | १४. राजा नमि        |
| ६. चक्रवर्ती शातिनाथ   | १५. राजा नग्गति     |
| ७. राजा कुन्धु         | १६. राजा उद्रायण    |
| ८. चक्रवर्ती महापद्म   | १७. काशीराज         |
| ९. चक्रवर्ती हरिषेण    |                     |

### ज्ञात था जीवन का रहस्य

ये सारे राजा अपने विशाल साम्राज्य को छोड़कर मुनि बने। राज्य का संचालन किया, उसे त्यागा और मुनि बन गये। ऐसा लगता है—प्राचीन काल में एक जीवन शैली विकसित रही है। यह रहस्य ज्ञात रहा है—कैसे जीना चाहिए ? कैसे मरना चाहिए ? वर्तमान स्थिति को देखकर यह नहीं कहा जा सकता कि आज का आदर्म

जीवन की शैली को जानता है या मरने की कला को जानता है। एक आदमी जन्मा, सत्तर-अस्सी या नब्बे वर्ष तक जीए और इतने वर्ष तक एक ही प्रकार का जीवन जीए, यह सचमुच आश्चर्य की बात है।

एक सोलह वर्ष के लड़के से पूछा--पढ़ाई करते हो।

उत्तर मिला--नहीं।

मैंने पूछा--इतनी जल्दी पढ़ाई क्यों छोड़ी ?

व्यापार में लग गया।

अठारह वर्ष का युवक भी यही उत्तर देगा और बीस वर्ष या बाईस वर्ष का युवक भी यही उत्तर देगा। सोलह वर्ष का अठारह या बीस वर्ष का होकर व्यक्ति जिस काम में लग गया, वह जीवन भर उसी काम में लगा रहेगा। जब तक सांस लेगा, खाट नहीं पकड़ेगा तब तक उसे नहीं छोड़ेगा। यह जीना भी कोई जीना है। कार्यों का परिवर्तन होना जरूरी है। वह जीवन शैली महत्त्वपूर्ण होती है, जिसमें कार्यों का काल के साथ निर्धारण होता है। कब क्या करना चाहिए, इसका बोध आवश्यक है। यह नहीं हो सकता कि सुबह नाश्ता शुरू करें तो शाम तक वही करते चले जाएं। यदि व्यक्ति ऐसा करने लग जाए तो क्या होगा ? उसका परिणाम बहुत हानिप्रद होता है इसीलिए मनुष्य निरन्तर नहीं खाता, बीच बीच में विराम लेता है।

### प्राचीन जीवन शैली

प्राचीन काल में जीवन की जो शैली थी उसका थोड़ा-सा चित्रण कालिदास ने रघुवंश में किया है। रघुकुल के राजाओं की जीवन शैली का विश्लेषण करते हुए लिखा गया--

*शैशवेभ्यस्तविद्यानां, यौवने विषयैषिणाम्।*

*वार्धक्ये मुनिवृत्तीनां, योगेनान्ते तनुत्यजाम्॥*

रघुकुल के राजा शैशव में विद्या का अभ्यास करने वाले, यौवन में विषय की एषणा करने वाले, बुढ़ापे में मुनिवृत्ति को धारण करने वाले और अन्त में योग के द्वारा शरीर त्यागने वाले होते थे।

जीवन की एक शैली रही है--पच्चीस वर्ष तक अध्ययन करे। केवल अध्ययन, व्यापार-व्यवसाय नहीं। आत्मविद्या और लौकिक-विद्या--दोनों का संतुलित अध्ययन। उसके बाद २५ वर्ष तक व्यापार व्यवसाय करे, काम-भोग आदि सांसारिक प्रवृत्तियों में बिताए। पचास वर्ष का होने पर सारे सांसारिक झंझटों को छोड़ विरक्त हो जाए। पच्चीस वर्ष तक वानप्रस्थ आश्रम में रहे। उसके बाद योग के द्वारा शरीर का त्याग करे। यह बात शायद कालिदास के समय में दूसरों के प्रभाव से आई है। आश्रम-व्यवस्था

में भी यह संन्यास परंपरा का प्रभाव है। तीन पुरुषार्थ में संन्यास की बात नहीं थी और यह बाद में जुड़ी है।

### जैन परंपरा की जीवन शैली

हम जैन परंपरा की जीवन शैली को देखें। प्राचीन काल में कुछ लोग मध्यम वय में दीक्षा लेते थे, कुछ अल्पवय में और कुछ अंतिमवय में। उस समय मध्यमवय या अल्पवय में दीक्षित कम होते थे। इस अवस्था में दीक्षा लेना सामान्य बात नहीं थी। ऐसा लगता है—प्राचीन काल में अधिकांश लोग अंतिमवय में दीक्षा लेते थे। आज कोई वृद्ध व्यक्ति दीक्षा लेता है तो लोग आश्चर्य करते हैं।

एक परंपरा रही—पहले राजा बने, राज्य का संचालन किया और फिर ऋषि बने। चक्रवर्ती भरत ने पूरे भारत वर्ष पर शासन किया, लम्बे समय तक राज्य का संचालन किया और उसे छोड़ अंतिम वय में मुनि बन गए। राजा सगर भी ऐसे ही मुनि बने थे। सगर के साठ हजार पुत्र थे। इतने पुत्रों का पिता राज्य और परिवार को छोड़कर मुनि बन गया। एक नगर की जितनी आबादी होती है, उतना राजा सगर का परिवार था। वह एक युग था—प्रायः राजा राज्य का संचालन करते और उसका त्याग कर मुनि बन जाते। अंतिमवय में मुनि बनने वाले राजाओं की प्रलम्ब परंपरा इसका साक्ष्य है।

### केवली नौ वर्ष का

एक परंपरा रही है जघन्य अवस्था में मुनि बनने वालों की। महावीर से पूछा गया—भंते ! केवली किस अवस्था में बनता है ? भगवान ने उत्तर दिया—नौ वर्ष की अवस्था में व्यक्ति केवली बन जाता है। नौ वर्ष, गर्भ के नौ महीनों सहित हैं। बाल मुनि की दीक्षा हो रही थी। लोगों ने कहा—इतनी छोटी अवस्था में दीक्षा! अभी तो मात्र नौ वर्ष का है। मैंने कहा—यह तो नौ वर्ष की अवस्था में मुनि बन रहा है किन्तु आगम कहते हैं—नौ वर्ष का बालक केवली बन जाता है। जब नौ वर्ष का बच्चा केवली बन जाता है तब श्रमण बनना कौनसी बड़ी बात है। सत्तर-अस्सी वर्ष के व्यक्ति मुनि नहीं बन पाते और नौ वर्ष का बालक मुनि बन जाता है। मुनित्व की दृष्टि से पहली अवस्था नौ वर्ष की है। दूसरी है मध्यमवय की अवस्था। बीस वर्ष से चालीस वर्ष के बीच की आयु वाले व्यक्ति मुनि बनते हैं। ऐसे मुनियों की संख्या भ्रं कम नहीं है। तीसरी अवस्था है वार्द्धक्य की। प्रथमवय—बचपन में मुनि बनना आश्चर्य नहीं है। दूसरीवय—यौवन में मुनि बनना भी आश्चर्य नहीं है किन्तु तीसरी अवस्था में मुनि न बनना सबसे बड़ा आश्चर्य है। व्यक्ति साठ वर्ष का हो जाए और उसमें मुनि बनने की भावना न जागे, क्या यह आश्चर्य नहीं है ? यह नहीं कहा जा सकता—

प्रथमवय में मुनि न बने, मध्यमवय में मुनि न बने, किन्तु पचास-साठ वर्ष के बाद भी मुनि बनने की भावना न जागे, योग के द्वारा शरीर को त्यागने की भावना न जागे, इसे जैन जीवन शैली का आश्चर्य या विडम्बना ही माननी चाहिए।

### युगीन अपेक्षा

आज अपेक्षा है—जैनों की जीवन-शैली निश्चित की जाए। एक भाई ने लिखा—आचार्यजी ! मैंने सुना है—आपने जीवन की शैली निर्धारित की है, उसका प्रशिक्षण दिया जा रहा है। मेरे मन की प्रबल भावना है—मैं आपकी सन्निधि में आकर उसका प्रशिक्षण लूँ। जीवन शैली का ज्ञान बहुत महत्त्वपूर्ण है। हम राजर्षियों के इतिहास को केवल पढ़ने की दृष्टि से न पढ़ें। हम इतना ही न मानें—राजा भरत भारत वर्ष के राज्य को त्याग कर मुनि बने, राजा सनत्कुमार भी राज्य त्याग कर मुनि बन गए। राजा दशार्णभद्र और उद्रायण भी राज्य को त्याग मुनि बने। शातिनाथ भी चक्रवर्तित्व को छोड़कर मुनि बने, जिनका नाम मंगल मंत्र बना हुआ है। उनके नाम से जुड़ा प्रसिद्ध मंत्र है—

*चइत्ता भारहं वासं चक्कवट्टी महड्डियो।*

*संती सतिकरे लोएं, पत्तो गई मणुत्तरं !!*

### जीवन की नई दिशा

हम केवल मंत्र और परंपरा की दृष्टि से ही नहीं, जीवन शैली की दृष्टि से विश्लेषण करें। जर्मन विचारक नीत्से ने कहा था—एक व्यक्ति जिस विचार में जन्म लेता है, उसी विचार में मर जाता है। किसी विचार में जन्म लेना नियत है किन्तु उसी विचार में मरना मूर्खता है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि सब गृहस्थी को छोड़कर साधु बन जाएं। यह बहुत कठिन काम है और सबके लिए संभव नहीं है। पर कम से कम व्यक्ति गृहस्थी में न मरे। इसका तात्पर्य है—या तो मुनिदीक्षा को स्वीकार करे, और ऐसा न कर सके तो घर के प्रपन्चों से सर्वथा मुक्त हो, त्याग-वैराग्य का, संन्यास जैसा जीवन जीना शुरू कर दे। वह गृहस्थी के झंझटों में न रहे। यह एक बहुत अच्छी जीवन शैली है। यदि ऐसा होता है तो न पुत्र पिता का तिरस्कार करेंगे, न पिता के मन में घर के प्रति द्रोह जन्मेगा। उसे यह कहना नहीं पड़ेगा—मैंने किस आशा से बेटों को पाल पोषकर बड़ा किया था। आज बेटे मुझे पूछते ही नहीं हैं। जैसे ही पक्षी के पंख आते हैं, वे विभिन्न दिशाओं में उड़कर माता-पिता से दूर चले जाते हैं। शायद पक्षी भी यह सोचते होंगे—इन्हें कितने परिश्रम से पाला, पोषा, बड़ा किया, आज आते ही हमें छोड़कर चले गए। जिन लड़कों को प्रेम से पाला-पोषा,

बड़ा किया जाता है, पढ़ाया जाता है, वे जब बड़े होते हैं तब सबसे पहले चूल्हे अलग जलते हैं। पिता-माता गांव में रहते हैं और पुत्र अपनी पत्नी के साथ प्रदेश चला जाता है। शायद कई बार पिता-पुत्र वर्षों तक मिलते ही नहीं हैं। कभी-कभी तो पिता पुत्र कोर्ट में ही मिलते हैं। इस स्थिति में जीवन-शैली में परिवर्तन आवश्यक है। एक अवस्था के बाद पारिवारिक झंझटों से मुक्त रहकर अलग प्रकार का जीवन जीया जाए। त्याग वैराग्य का जीवन जीया जाए तो जीवन की एक नई दिशा का उद्घाटन संभव बन सकता है।

### मोह कम करें

सबसे महत्वपूर्ण बात है--घर का मोह कम हो जाए। अलगाव का सा जीवन जीया जाए। व्यापार चल रहा है, पुत्र दुकान पर बैठते हैं पर वह उसमें लिप्त न हो। घर में रहना गृहस्थी नहीं है। गृहस्थी का मतलब है घर में लिप्त हो जाना। व्यक्ति घर में इतना लिप्त हो जाता है कि मृत्यु-शय्या पर भी उसका मोह नहीं छूटता।

पिता की मौत सन्निकट थी। सारे पुत्र पिता की सेवा में उपस्थित थे। पिता ने आंखें खोली, देखा--बड़ा लड़का भी यहीं बैठा है, मझला और छोटा लड़का भी यहीं बैठा है। पिता से रहा नहीं गया, उसने अपने पुत्रों से पूछा--दुकान पर कौन है ? बड़ा लड़का बोला--पिताजी ! दुकान पर कोई नहीं है। बेवकूफों ! तुम सब यहां बैठे क्या करोगे, दुकान पर जाओ। यह कहते-कहते पिता के प्राण पखेरु उड़ गए।

अंतिम सांस तक घर का मोह नहीं छूटता। यह अत्यंत लिप्तता का जीवन अच्छा जीवन नहीं है। यह न जीने की कला है और न मरने की कला है।

### जीवन और मृत्यु का रहस्य

हम अपने जीवन की शैली को बदलें, अपनी शांति के लिए बदलें। त्याग केवल अपनी शांति के लिए होता है, वह किया नहीं जाता। जो व्यक्ति यह निश्चय कर लेता है--मुझे शांति का जीवन जीना है, वह स्वतः त्याग में चला जाता है। त्याग का अर्थ केवल खाना छोड़ना नहीं है। त्याग का एक अर्थ यह भी है--मैं अधिकतम मौन रहूंगा। जितना बोलना आवश्यक होगा, उतना ही बोलूंगा। मैं शरीर की भी अनावश्यक प्रवृत्ति नहीं करूंगा। मन की प्रवृत्ति का संयम, शरीर की प्रवृत्ति का संयम, वाणी की प्रवृत्ति का संयम--यह त्याग का व्यापक सन्दर्भ है। मुनि बन जाना कोई अंतिम बात नहीं है। मुनि बनना साधना के मार्ग को स्वीकार करना है, मंजिल बहुत दूर है। जैसे-जैसे वृद्धता आए वैसे-वैसे वैराग्य बढ़ता जाए तो शांति और समाधि बढ़ेगी। शांति और समाधि देना किसी दूसरे के हाथ में नहीं है। शांति और अशांति का, समाधि और



असमाधि का निमित्त दूसरा बन सकता है पर उपादान व्यक्ति स्वयं है। हम इस सूत्र को हृदयंगम करें—जिस मूर्च्छा के वातावरण में पलें-बढ़ें, उसी वातावरण में मरना मूर्खता है। यह बात समझ में आए तो जीवन और मृत्यु का रहस्य पकड़ में आ जाए। जो इनके रहस्य को जान लेगा, वह सारी कलाओं का पारगामी बन जाएगा। प्राचीन राजर्षियों की जीवन चर्या के विश्लेषण से इसी सचाई का अनावरण होता है।

## याद पिछले जन्म की

### महत्त्वपूर्ण घटना

यह सौरमण्डल हमारे आस-पास परिक्रमा कर रहा है और काल को अभिव्यक्त कर रहा है। जहां सौरमण्डल नहीं है, क्या वहां अतीत है ? वर्तमान और भविष्य है? इस प्रश्न का उत्तर देना बहुत कठिन है। अतीत किसने बनाया? वर्तमान का सृजनहार कौन है ? भविष्य का निर्माण कौन करता है ? इन सबका कारण है सूर्य। जहां सूरज नहीं है, सूरज की गति या क्रिया से होने वाला काल नहीं है वहां अतीत, वर्तमान और भविष्य को किस आधार पर माना जाए ? दिन उगा, रात अतीत बन गई और सांझ भविष्य। दिन है तो अतीत भी है, वर्तमान और भविष्य भी है। दिन कौन करता है ? सूरज आता है तो दिन होता है। सूरज न आए तो न दिन होगा और न रात। क्या सौधर्म कल्प देवलोक में दिन होता है ? इस प्रश्न का उत्तर यही होगा—दिन और रात होती ही नहीं है। न दिन न रात। घड़ी का कोई उपयोग नहीं है। वहां काल का नियम ही बदल जाता है। जहां सौरमण्डल है, वहां काल का नियम दूसरा है। हम सबको एक नियम से देखते हैं तो उलझन पैदा होती है। अंतरिक्ष में भी घड़ी की सूई कैसे घूमेगी ? वहां काल की गति बहुत मंद हो जाती है। काल का नियम परिवर्तित हो जाता है। गुरुत्वाकर्षण में जो काल का नियम है, वह उससे परे नहीं है। हम सौरमण्डल की सीमा में जी रहे हैं, इसलिए हमारा अतीत भी है, वर्तमान और भविष्य भी है। ये सब हैं तो जन्म भी बंट जाएगा—एक पहले का जन्म—पूर्व जन्म, एक वर्तमान का जन्म, एक होने वाला जन्म—पुनर्जन्म। एक ही आत्मा अनेक जन्मों में बंट जाएगी। एक ही जीव अनेक जीवों में बंट जाएगा। ऐसा होता है इसलिए स्मृति भी होती है। स्मृति समस्या भी है और उपयोगी भी है। जीवन की एक महत्त्वपूर्ण घटना है—पूर्वजन्म का ज्ञान।

### घाटक : सम्मोहन का अनिर्वाय अंग

मृगापुत्र अपने वातायन से राजपथ की ओर देख रहा था। उसने एक व्यक्ति को जाते हुए देखा। वह देखता ही रह गया। एकटक उस व्यक्ति को देखने लगा।

सहज त्राटक सिद्ध हो गया। त्राटक का दूसरा नाम है सम्मोहन। सम्मोहन का अनिवार्य अंग है त्राटक। जब तक त्राटक की साधना अच्छी नहीं है, सम्मोहन की साधना सफल नहीं होती। आत्म-सम्मोहन हो या पर सम्मोहन-त्राटक की साधना अनिवार्य है। जैन पारिभाषिक शब्द है अनिमेष प्रेक्षा। महावीर जब ध्यान करते, अनिमेष दृष्टि से करते थे। एक पुद्गल पर अनिमेष दृष्टि से ध्यान करते हैं तो वस्तु का स्वरूप बदल जाता है। एक वस्तु को देखें, पुस्तक, पेंसिल या किसी भी पदार्थ को दस मिनट तक एकटक देखते चले जाएं, उस वस्तु का स्वरूप बदल जाएगा। पहले सब कुछ दिखाई देता है और उसके बाद कुछ अन्यथा दिखाई देने लग जाता है। देखते-देखते ऐसी प्रकाश की किरणें फूटने लगती हैं कि सारी वस्तु बदल जाती है। बदलते-बदलते वस्तु भी गायब हो जाती है, कोरा आभामण्डल ही शेष रह जाता है। जैसे व्यक्ति का आभामण्डल होता है वैसे ही पदार्थों का भी अपना आभामण्डल होता है।

### सम्मोहन का हार्द

मृगापुत्र ने अनिमेष दृष्टि से देखा-ध्यान केन्द्रित हो गया, वह चिंतन की गहराई में उतरा, मन में विकल्प उठा--ऐसा कहीं देखा है, इस रूप को कहीं देखा है। वह उसी विकल्प में उलझ गया, सम्मोहित हो गया। मृगापुत्र सम्मोहन की अवस्था में चला गया। सम्मोहित हुए बिना कोई व्यक्ति विशिष्टता को उपलब्ध नहीं हो सकता। आज सम्मोहन हल्के प्रयोगों के कारण काफी बदनाम हो चुका है पर वह है बहुत महत्वपूर्ण। एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है योग वाशिष्ठ, जिसमें ऋषि वशिष्ठ ने राम को संबोधन दिया था, वह गहन आध्यात्मिक ग्रन्थ है। योग वाशिष्ठ में लिखा है--भावना का प्रयोग किये बिना कोई व्यक्ति अध्यात्म की गहराइयों में नहीं जा सकता, अपने भीतर दुबकियां नहीं लगा सकता। भावना का ही दूसरा नाम है--सम्मोहन। किसी भावना से स्वयं को भावित कर लेना या सम्मोहित कर लेना। एक व्यक्ति अर्हम् का जप करता है, वह अर्हम् मंत्र का बार-बार उच्चारण करता है। उच्चारण का अपना मूल्य है, किन्तु उच्चारण के साथ भावना का प्रयोग हो, व्यक्ति अर्हत् की अनुभूति करने लग जाए तो वह अर्हत् के रूप में बदल जाता है। यह योग का गुण-संक्रमण का सिद्धांत है। गरुड़ की भावना करने वाला गरुड़ की शक्ति से और हाथी की भावना करने वाला अपने मन में उसके बल की अनुभूति करता है। भावना या सम्मोहन के प्रयोग का हार्द है--जिसकी भावना करे, उसमें तन्मय या तल्लीन हो जाना। व्यक्ति केवल उसी भाव में लीन हो जाता है, शेष सारे विकल्प क्षीण हो जाते हैं।

## सम्मोहन : जाति स्मृति

मृगापुत्र उस अवस्था में चला गया। सारे विकल्प समाप्त हो गए, वह केवल इसी विकल्प में डूब गया—मैंने ऐसा रूप कहीं देखा है। उस सम्मोहित अवस्था में मृगापुत्र को जातिस्मृति ज्ञान उपलब्ध हो गया। जैसे ही पूर्वजन्म की स्मृति हुई, अतीत वर्तमान बन गया। आदमी को तब कितना आह्लाद होता है, जब अतीत वर्तमान बनता है। किसी व्यक्ति से पूछा जाए—पांच दिन पहले क्या खाया था ? यदि उसे यह याद आ जाए और वह उस वस्तु का नाम बता दे तो मन में बड़ा हर्ष उत्पन्न होता है। बहुत कम लोगों को यह याद रहता है कि पांच दिन पहले क्या खाया था। यदि किसी को यह पूछा जाए कि एक वर्ष पहले क्या खाया था तो शायद उत्तर देना अत्यन्त मुश्किल हो जाए। व्यक्ति संभवतः इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे पाएगा।

## ग्रहण, धारणा और स्मृति

अतीत में लौटना बहुत कठिन होता है। वही अतीत याद रहता है, जिसकी धारणा मजबूत बन जाती है। ग्रहण, धारणा और स्मृति—इन तीनों की एक श्रृंखला है। पहला तत्त्व है—ग्रहण—अवग्रह कितना मजबूत हो रहा है। अवग्रहण सामान्य है तो धारणा कमजोर बनेगी। अवग्रह से ईहा और ईहा से अवाय—यह एक पूरा क्रम है—ग्रहण का। अवाय के बाद होती है धारणा। जिस व्यक्ति में धारणा की शक्ति जितनी मजबूत है उस व्यक्ति में स्मृति की शक्ति भी उतनी ही मजबूत होगी। जब तक विषयों में और शरीर में मन चंचल बना रहता है तब तक धारणा स्थिर नहीं होती। मन की चंचलता के कम होने पर ही धारणा सुदृढ़ हो सकती है।

*विषयेषु शरीरे च, मनश्चांचल्यमश्नुते।*

*ताभ्यां विरतिमापन्ने, धारणा स्थिरतां व्रजते॥*

## समस्या स्मरण शक्ति की

बहुत लोग कहते हैं—स्मरण शक्ति कमजोर है पर वे इस बात को भुला देते हैं—स्मृति कमजोर नहीं है, धारणा कमजोर है। धारणा की शक्ति कमजोर है। स्मृति अपने आपमें स्वतंत्र नहीं है, वह धारणा से बंधी हुई है।

इस संदर्भ में हम जैन मनोविज्ञान का विश्लेषण करें। विस्मृति की समस्या कहां पैदा नहीं होती ? एक व्यक्ति बहुत विद्वान् है, हजारों ग्रन्थ याद कर लेता है। जो भी पढ़ता है, उसे भूलता नहीं। उसने एक व्यक्ति से पूछा—तुम्हारा नाम क्या है ? उस व्यक्ति ने अपना नाम बता दिया। दो घंटे बीते। फिर वही व्यक्ति मिला। उसने फिर वही प्रश्न दोहराया—तुम्हारा नाम क्या है ? उस व्यक्ति ने कहा—अभी दो घंटे पहले

आपको नाम बतलाया था। आप इतनी देर में भूल गए। आपको मेरा नाम भी याद नहीं रहता। दूसरे दिन फिर वही व्यक्ति मिला और वे ही प्रश्न फिर पूछे गए—तुम कौन हो, कहां से आए हो ? तुम्हारा नाम क्या है ? व्यक्ति सोचता है—यह क्या ? मैंने सुना था—इनकी स्मृति बहुत तेज है। इन्हें हजारों पद्य कंठस्थ हैं। इनको तो एक नाम भी याद नहीं रहा। तीन बार बता दिया। फिर भी भूल गये। वह आश्चर्य में डूब जाता है।

### धारणा से जुड़ी है स्मृति

प्रायः प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में ऐसी घटनाएं घटती हैं। इसका कारण है—व्यक्ति जिस बात की धारणा मजबूत नहीं करता, वह बात बीस बार पूछने पर भी विस्मृत हो जाती है। जैसे-जैसे आदमी समझदार होता है, काम की बातों की धारणा करता चला जाता है, निकम्मी बातों को छोड़ता चला जाता है। जिस बात को छोड़ते चले जाएंगे, उसकी धारणा नहीं बनेगी। जिसकी धारणा नहीं होगी, उसकी स्मृति नहीं रहेगी। इस स्थिति में अनेक बार समस्या पैदा हो जाती है। एक व्यक्ति कहता है—मैंने तुम्हें यह बात कही थी। दूसरा व्यक्ति कहता है—नहीं ! तुमने मुझे कुछ कहा ही नहीं। उस व्यक्ति ने कहा—तुम झूठ बोलते हो। दूसरा व्यक्ति भी उसी भाषा में बोलने लग जाता है। एक व्यक्ति कह रहा है—तुम झूठ बोलते हो और दूसरा कह रहा है—तुम झूठ बोल रहे हो। इस स्थिति में किसे सही माने ? क्या निर्णय करे ? मनोविज्ञान के क्षेत्र में यह बड़ी उलझन है। इसका समाधान यही होगा—दोनों झूठ नहीं बोल रहे हैं। जिसने कहा—मैंने अमुक बात कही है, वह भी सही कहता है। जिसने कहा, मैंने यह बात सुनी, वह भी सही है।

### तुम दोनों सही हो

पत्नी ने आईस्टीन से कहा—आपका नौकर कमजोर है, निकम्मा है। कोई काम नहीं करता। ऐसे निकम्मे आदमी को रखने का अर्थ ही क्या है ? आईस्टीन बोले—तुम ठीक कहती हो, वह ऐसा ही है। नौकर दूर खड़ा सुन रहा था। पत्नी चली गई। नौकर ने आईस्टीन से कहा—मालिक ! मैं सब काम करता हूँ, कभी काम से जी नहीं चुराता हूँ फिर भी मुझे दिन भर टोका जाता है। मालकिन बात-बात पर मुझे डांटती है। आईस्टीन बोला—तुम ठीक कहते हो। पत्नी ने यह सुना, वह आवेश से भर उठी। उसने कहा—यह क्या ? यह भी सही और मैं भी सही। या तो यह झूठा होगा या मैं। दोनों सही कैसे हो सकते हैं ? आईस्टीन ने फिर वही उत्तर दिया—तुम भी सही हो, यह भी सही है और जो मैं कहता हूँ, वह भी सही है।

कहीं-कहीं सब बातों को सही प्रमाणित करना होता है। जिस व्यक्ति ने कहा, वह सही है और जिसने कहा, मैंने नहीं सुना, वह भी सही है क्योंकि उसने उस बात को पूरा ग्रहण ही नहीं किया। जब ग्रहण ही नहीं किया तो धारणा और स्मृति कैसे होगी ? व्यक्ति जिस बात को सुनता है, उसे अवधानपूर्वक या रुचिपूर्वक नहीं सुनता है तो उसकी स्मृति नहीं रहेगी। यह तथ्य प्रत्येक व्यक्ति के संदर्भ में घटित होता है।

**अपनी बात**

मैं स्वयं अपने आपको देखता हूँ तो यह लगता है--अनेक बातें विस्मृत हो जाती हैं। साठ वर्ष पहले कंठस्थ किए हुए श्लोक आज भी याद हैं। साठ वर्ष पहले दीक्षा ली, तब क्या-क्या घटित हुआ, यह याद है। आज कुछ ऐसी बातें भी भूल जाते हैं, जो दस दिन पहले ही सुनी हैं। ऐसा क्यों होता है ? कहा जाता है--पुरानी स्मृतियाँ, बचपन की बातें याद रह जाती हैं। किन्तु एक अवस्था आने पर स्मृति कमजोर होने लग जाती है। ऐसा कुछ कारण हो सकता है पर यह भी पूर्णतः सही नहीं है। काम की बात आज भी याद रह जाती है। कोई नया श्लोक सुना, कोई अच्छी कथा पढ़ी, जिस बात के प्रति आकर्षण पैदा हुआ, वह याद रह जायेगा। उस कथा तथा श्लोक का उचित अवसर पर उपयोग भी कर लेंगे। वस्तुतः स्मृति कमजोर नहीं है, धारणा कमजोर है। जिसका अंकन हमारे धारणा के केन्द्र में नहीं होती, वह याद नहीं आती। आदमी सारी बातों की धारणा कर ही नहीं पाता। यदि वह दिन भर होने वाली निकम्मी बातों की धारणा करता चला जाए तो पागल बन जाए, उसका दिमाग खोखला हो जाए। आदमी समझदार और चतुर है, वह केवल काम की बात को दिमाग में रखता है। जो कबाड़खाना लगता है, उसे बाहर फेंक देता है। कबाड़खाना धारणा करने की जरूरत भी क्या है? मैं यह यह मानता हूँ--जैसे जैसे मुनि योगी बनेगा, अच्छा साधक बनेगा उसकी स्मृति कमजोर होती चली जाएगी, वह निकम्मी बातों को भूलता चला जाएगा। बहुत बातें ऐसी ही होती हैं, जिन्हें सुनें और तत्काल विसर्जित कर दें। ग्रहण किया और रेचन कर दिया। ऐसा करने वाले व्यक्ति का दिमाग कबाड़खाना नहीं बन सकता।

### **ध्यान दें धारणा पर**

हम ध्यान केन्द्रित करें धारणा पर। किस बात की धारणा करें और किसकी धारणा न करें। जैन ज्ञान मीमांसा के तीन शब्द हैं--धारणा, वासना और संस्कार। पहले धारणा होती है फिर वह वासना में बदल जाती है, उसका एक संस्कार बन जाता है। उसकी विच्युति नहीं होती। जैसे ही कोई निमित्त मिला, पूर्व जन्म की स्मृति

उभर आई। महर्षि पतंजलि ने भी यही कहा—जब संस्कार का साक्षात्कार होता है, तब पूर्व जन्म की स्मृति हो जाती है। अनुप्रेक्षा का प्रयोग धारणा को पुष्ट करने का प्रयोग है। अभय की अनुप्रेक्षा करेंगे तो अभय का भाव पुष्ट होता चला जाएगा। अभय की धारणा बनती चली जाएगी, भय की धारणा क्षीण हो जाएगी। जब तक अभय की भावना पुष्ट नहीं होगी, भय के भाव क्षीण नहीं होंगे। एक घड़ा, जो अभी आवे से निकला है, हमें उसे गीला करना है। वह पानी की एक-दो बूंद डालने से कभी गीला नहीं होगा। उस पर पानी की बूंद गिरती रहेगी तो एक क्षण ऐसा आया घड़ा गीला हो जाएगा। गर्म एवं शुष्क घड़े को भिगोने की एक प्रक्रिया है। घड़े पर एक-एक बूंद डालते चले जाओ, घड़ा आर्द्र हो जाएगा।

### जाति स्मृति का हेतु

हम नियम और प्रक्रिया को महत्त्व दें। हर बात की एक प्रक्रिया होती है। प्रक्रिया सही होती है तो कार्य में सफलता मिल जाती है। मृगापुत्र ने ठीक प्रक्रिया को अपनाया, वह सम्मोहित हो गया। उस अवस्था में जाति स्मृति ज्ञान उपलब्ध हो गया। उसने देखा—मैं पूर्वजन्म में ऐसा ही मुनि था, मैंने ऐसी ही साधना की थी। जाति-स्मृति होते ही आदमी की स्थिति बदल जाती है। यदि गहरा विपाक न हो तो व्यक्ति में रूपान्तरण घटित हो जाता है। यद्यपि जाति-स्मृति ज्ञान का संबंध है ज्ञानावरणकर्म के क्षयोपशम से किन्तु साथ में मोहनीय कर्म का भी गहरा संबंध है। भाष्य साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण गाथा है—

*जायमाणस्स जं दुक्खं, म रमाणस्स वा पुणो।*

*तेण दुक्खेण संमूढो, जाइं सरइ न अप्पणो॥*

जन्म के समय भी दुःख होता है और मरण के समय भी दुःख होता है। यह यंत्रों से मापा जाने वाला दुःख नहीं है। हम यह साक्षात् देखते हैं—जब शरीर के कण-कण में, कोशिका में गुथ्यमगुत्था हुआ प्राण, उनके साथ एकमेक जैसा बना हुआ प्राण उसमें से निकलता है तब उसे निकलने में कितना कष्ट होता है। आकस्मिक निकले या प्रेरणा से, किन्तु सम्बन्ध विच्छिन करने में क्या कठिनाई नहीं होती ? अंतर वेदना नहीं होती? उस समय अत्यंत वेदना होती है पर उसे यंत्रों से मापा नहीं जा सकता। दुःख मूढ़ता या मूर्च्छा पैदा करता है। मरते समय भी आदमी मूर्च्छा में चला जाता है। शरीर का नियम है—जब तक कष्ट सहन करने की स्थिति है, आदमी जागता रहता है और जब कष्ट को सहने की शक्ति नहीं रहती है, तब व्यक्ति मूर्च्छा या बेहोशी में चला जाता है। व्यक्ति दुःख से मूढ़ बनता है। जब तक मूढ़ता रहती है,

दुःख सघन रहता है। मूर्च्छा के चक्रव्यूह को तोड़े बिना पूर्व जन्म की स्मृति नहीं हो सकती। पूर्व जन्म की स्मृति के लिए मूर्च्छा को तोड़ना जरूरी है। प्रस्तुत प्रसंग में मोहनीय कर्म का तात्पर्य यही है—जो प्रबल मूर्च्छा स्मृति में व्यवधान डाल रही है, उसे तोड़ो।

### प्रतिक्रमण

सम्मोहन के कुछ प्रयोग किए गए। एक व्यक्ति को सम्मोहित किया, उसे अतीत को देखने का सुझाव दिया। दो वर्ष की अवस्थाओं की स्मृतियां सजीव हो गईं। जैसे-जैसे सम्मोहन या सुझाव द्वारा, आत्म-सवेदन द्वारा मूर्च्छा टूटती चली जाती है वैसे-वैसे अतीत की स्मृति तीव्र होती चली जाती है। दो वर्ष की ही नहीं, एक वर्ष की और उससे पहले की भी स्मृति में व्यक्ति लौट सकता है। सम्मोहन के प्रयोग द्वारा ऐसी अनेक घटनाएं उजागर हुई हैं। प्रतिक्रमण की भी यही प्रक्रिया है। हम यथाक्रम आलोचना करें। सुबह चार बजे उठने के बाद से लेकर सांयकाल तक क्या-क्या किया, उसकी स्मृति और आलोचना करें। प्रातः और सायं प्रतिक्रमण का अर्थ यही है। प्रतिक्रमण यानि अतीत की स्मृति करते चले जाओ—आज मैंने किस-किस क्षण क्या-क्या किया? अतीत के सिंहावलोकन अतीत की ओर प्रस्थान की यह प्रक्रिया मूर्च्छा को तोड़ने की प्रक्रिया है। यदि प्रतिक्रमण नहीं होता है तो मूर्च्छा गहरी होती चली जाएगी। इस दृष्टि से प्रतिक्रमण का बहुत महत्व है। हम इसे रूढ़ि न मानें। इसका समुचित मूल्यांकन करें। जब तक प्रतिक्रमण के महत्व को नहीं जाना जा सकता तब तक ही उसे रूढ़ि के रूप में लिया जाता है। अच्छी चीज रूढ़ि बन जाती है, इसका बड़ा कारण है अज्ञान।

### गलती उनकी है

एक प्रशासक को कृषि विभाग का अधिकारी बनाया गया। अधिकारी को सूचना मिली—आलू की फसल बहुत बढ़िया हुई है। अधिकारी फसल का निरीक्षण करने के लिए आया। उसने देखा—आलू के खेत हरे भरे हैं। आलू एक भी दिखाई नहीं दे रहा है। वह चारों तरफ घूमा, निराश हो गया। उसने क्षुब्ध होकर कर्मचारियों से कहा—तुमने मुझे गलत सूचना दी है। मुझे धोखे में रखा है। तुम कह रहे थे—आलू की फसल बहुत बढ़िया हुई है और यहां एक भी आलू दिखाई नहीं दे रहा है। मेरे साथ इतना बड़ा धोखा किया है। कर्मचारी और काश्तकार देखते रह गए—कैसा अधिकारी आया है? इसे इतना भी पता नहीं कि आलू कहां होते हैं। एक कर्मचारी ने मुस्कुराते हुए कहा—श्रीमान्। आलू ऐसे ऊपर दिखाई नहीं देते हैं। उन्हें देखने के



लिए जमीन को थोड़ा-सा कुरेदना होगा। उसने आलू के एक पादप को उखाड़ते हुए कहा—देखिए, आलू ही आलू हैं। अधिकारी का सिर शर्म से नीचे झुक गया। वहीं खड़े एक व्यक्ति ने व्यंग्य किया—महाशय ! हमने गलत सूचना नहीं दी है। गलती हमारी नहीं है, गलती तो उनकी है जिन्होंने आपको कृषि विभाग का अधिकारी बना दिया।

**प्रतिक्रमण : अतीत में लौटने का प्रयोग**

हमारा ज्ञान भी फसल के नीचे उगाया हुआ है। वह उसके फल को जानने नहीं देता। यदि अज्ञान और मूर्च्छा का पर्दा हट जाए तो अतीत को जानना आसान हो जाए। अतीत की घटनाओं को जानना, अतीत के लिखे ग्रंथों को जानना एक ही बात है। मूल बात यह है—हम जिस दिशा में प्रस्थान करेंगे, वह दिशा स्पष्ट हो जाएगी। हजार वर्ष पहले किसी ने काव्य लिखा, आज हम उसका अर्थ पकड़ते हैं। यह क्या है ? यह इन्द्रिय का काम तो नहीं है? यह कोई अतीन्द्रिय ज्ञान है हजार वर्ष पहले लिखे का अर्थ पकड़ना। आज का वैज्ञानिक दो हजार वर्ष, पांच हजार वर्ष पूर्व लिखी गई लिपि को पकड़ने का प्रयत्न कर रहा है, उसका अर्थ खोज रहा है। कोई वैज्ञानिक पशुओं की भाषा को पढ़ रहा है, कोई चिड़िया और कबूतर की भाषा को पढ़ रहा है। प्रत्येक व्यक्ति में यह क्षमता होती है। जब व्यक्ति अतीत में लौटता है, तब उसे बहुत सारे नए तथ्य मिलते हैं। प्रतिक्रमण अतीत में लौटने का महत्वपूर्ण प्रयोग है और इसके द्वारा अनेक नई दिशाएं उद्घाटित हो सकती हैं।

### अतीत में लौटना सीखें

अपेक्षा है—हम अतीत में लौटना सीखें, वर्तमान में जीना सीखें और भविष्य का सपना देखना सीखें। हम सौरमण्डल के वातावरण में जी रहे हैं इसलिए एक काल में जीकर हमें पूरी बात नहीं कर सकते। जिन लोगों ने अतीत में लौटना सीखा है, उन्हें पूर्व जन्म की स्मृतियां हुई हैं या अन्य विशेष क्षमताएं उपलब्ध हुई हैं। क्षमता एक प्रकार की नहीं होती।

आचार्य हेमचंद्र, आचार्य मलयगिरी और आचार्य देवसूरी—तीनों ने एक साथ सरस्वती की आराधना की, सरस्वती सिद्ध हो गई। सरस्वती ने प्रसन्न होकर कहा—वरदान मांगो। आचार्य हेमचन्द्र ने कहा—मुझे राजाओं को प्रतिबोध देने की क्षमता दो। उनका प्रयत्न इस दिशा में चल पड़ा। आचार्य मलयगिरी ने कहा—मैं आगमों की टीकाएं लिखूँ। उन्होंने अपनी शक्ति का नियोजन उस दिशा में किया और समर्थ टीकाकार कहलाए। आचार्य मलयगिरी आज भी आगम के समर्थ टीकाकार और व्याख्याकार माने जाते हैं। दुर्लभ हैं ऐसे टीकाकार।

प्रश्न है—हम किस दिशा में अपनी शक्ति का नियोजन करें, अपनी क्षमता का विकास करें। मृगापुत्र को केवल जाति स्मृति की घटनाएं जानने के लिए न पढ़े किन्तु अपनी क्षमताओं को विकसित कर सकें, इसलिए पढ़ें। ऐसा करने पर ही हम आगम के दर्पण में अपना प्रतिबिम्ब देख सकेंगे, स्वयं को अधिक सक्षम और संपन्न बना सकेंगे।

## जहां एक भी क्षण आराम नहीं मिलता

शिष्य आचार्य की सन्निधि में आया। वंदना कर अवग्रह की याचना की—भते ! क्या मैं आपके अवग्रह में आ जाऊं ? यह बहुत शिष्ट परंपरा रही है—आचार्य के पास जाना हो तो पहले दूर से अनुमति लें, फिर निकट जाएं। शिष्य अनुमति प्राप्त कर आचार्य के उपपात में पहुंचा। उसने वंदना कर निवेदन किया—भते ! आज मैंने बड़ा आश्चर्य देखा। मैं उस आश्चर्य का कारण जानना चाहता हूं।

आचार्य ने कहा—वत्स ! तुमने क्या नया आश्चर्य देखा ? इस दुनिया में अनेक आश्चर्य माने जाते हैं, यह स्थूल कल्पना है। वस्तुतः दुनिया आश्चर्यों का घर है। इतने बड़े आश्चर्य हैं, जिन्हें शब्दों में बांधना ही कठिन हो सकता है। तुमने कैसा आश्चर्य देखा है आज ?

### शिष्य का आश्चर्य

गुरुदेव ! मैंने देखा—एक प्रौढ़ आदमी बाजार में खड़ा था। वह आईसक्रीम की दुकान पर गया, आईसक्रीम खाई। फिर दूसरी दुकान पर गया, कुछ मिठाइयां खा ली। एक दुकान पर गरमागरम कचौरी बन रही थी। उसका मन फिर ललचा गया। वह तीन-चार कचौरियां खा गया। थोड़ी देर बाद वह फिर मिठाइयों की दुकान में घुस गया। दूसरी ओर मैंने देखा—एक चौदह वर्ष का बालक बाजार से गुजर रहा था। किसी ने कहा—आईसक्रीम खाओ। उस बालक ने कहा—मुझे त्याग है। कचौरी-पकौड़ी खाओ। बालक ने फिर अस्वीकार कर दिया। उसने कहा—मैं बार-बार नहीं खाता। जब भोजन करता हूं तभी खाता हूं और उस समय भी एक साथ दस-ग्यारह द्रव्यों से अधिक नहीं खाता। यह मुझे बड़ा आश्चर्य लगा—पचास वर्ष का आदमी एक के बाद दूसरी चीजें खाता चला जा रहा है और एक चौदह वर्ष का बालक स्वादिष्ट चीजों को अस्वीकार करता चला जा रहा है। व्यक्ति-व्यक्ति में इतना अंतर क्यों ? यदि चीन की ऐतिहासिक दीवार आश्चर्य है तो क्या यह मानवीय व्यवहार आश्चर्य नहीं है ? इसका कारण क्या है ? एक बड़ा है, एक छोटा है। जीभ दोनों के हैं, खाने की भावना दोनों में है फिर इतना अन्तर क्यों ?

## गुरु का समाधान

आचार्य ने कहा—वत्स ! मनुष्य की दो श्रेणियां हैं। कुछ लोग आत्मस्थ होते हैं और कुछ देहस्थ होते हैं। इन दो श्रेणियों में सारे मनुष्य समा जाते हैं। इन दोनों प्रकार के लोगों के आचार और व्यवहार में, आहार और चर्या में अन्तर रहेगा। इसका कारण है—एक आदमी शरीर में बैठा है और एक आदमी आत्मा में बैठा है। जो शरीर में बैठा है, उसका आचार-व्यवहार एक प्रकार का होगा। जो आत्मा में बैठा है, उसका आचार-व्यवहार एक प्रकार का होगा।

*देहस्थाः मानवाः केचित्, केचिदात्मस्थिताः जनाः।*

*आचारे व्यवहारे च, भेदस्तेषामतो भवेत्॥*

जहां हम सबको एक दृष्टि से देखते हैं, वहां समस्या और संकट पैदा होते हैं। जब दो प्रकार के लोगों को दो प्रकार की श्रेणियों में बांट दिया जाता है तब कोई आश्चर्य नहीं होता।

## राग : विराग

जब तक विषयों में राग रहेगा, संयम से राग नहीं होगा। संयम से राग का अर्थ है—विषयों से विराग। विषयों में राग का अर्थ है—संयम से विराग। जब तक मृगापुत्र को जाति स्मृति नहीं हुई तब तक उसका विषयों से राग बना रहा। जैसे ही जाति स्मृति हुई, उसकी चेतना बदल गई। जब तक वह शरीर में बैठा था, विषयों के प्रति आकर्षण था। जाति स्मृति ज्ञान हुआ, वह आत्मा में अवस्थित हो गया, उसकी स्थिति बदल गई। उसकी विषयों में आसक्ति नहीं रही, वह संयम में अनुरक्त हो गया। उसने माता पिता के पास पहुंच कर अपनी भावना अभिव्यक्त की—

*विसर्गिं अरज्जंतो, रज्जंतो संजमग्नि य।*

*अम्मापियरं उवागम्म, इमं वयणमब्बवी॥*

## मृगापुत्र की भावना

मृगापुत्र ने माता-पिता से कहा—मात-तात ! मैंने पांच महाव्रतों को सुना है, मैं मुनि धर्म को जानता हूं। मैं संसार समुद्र से विरक्त हो गया हूं। मैं प्रव्रजित होकर मुनि बनूंगा। आप मुझे अनुज्ञा दें।

*सुयाणि मे पंच महव्वयाणि, नरएसु दुक्खं च तिरिक्ख जोणिसु।*

*निष्णिणवण्णकामो मि महण्णवाओ अणुजाणह पव्वइस्सामि अम्मो॥*

माता-पिता यह सुनकर अवाक् रह गए। उन्होंने सोचा—यह क्या हो गया ?

इतने दिन कभी यह स्वर नहीं सुना। आज अचानक ऐसे कैसे बोल रहा है ? वे कुछ बोल ही नहीं पाए। ऐसा लगा—आशाओं पर तुषारापात हो गया है। पूरे वातावरण में सन्नाटा सा छा गया।

मृगापुत्र बोला—आपको यह बात सुनकर आश्चर्य हो रहा होगा। मैं संयम क्यों लेना चाहता हूँ। आप देखें—हम शरीर में डूबे हुए हैं, यह सबसे बड़ी अविद्या है। जो यह जान लेता है—मैं शरीर में नहीं हूँ, चैतन्यमय आत्मा हूँ उसे सारी विद्याएं उपलब्ध हो जाती हैं।

जिस क्षण यह अनुभूति होती है—मैं शरीर नहीं हूँ उसी क्षण अविद्यावान विद्यावान बन जाता है। एक क्षण में अनपढ़ आदमी विद्वान् बन जाता है। न बहुत लम्बे समय तक पढ़ने की जरूरत है, न कुछ और करने की आवश्यकता है। मैं शरीर हूँ, यह अनुभूति इस रूप में बदल जाए—मैं शरीर नहीं हूँ।

### वैराग्य का कारण

मृगापुत्र शरीर से हटकर आत्मा की अनुभूति में उतर चुका था। उसका सारा दृष्टिकोण बदल गया। अपने वैराग्य के कारणों को प्रस्तुत करते हुए मृगापुत्र ने कहा—

1. यह शरीर अनित्य है।
2. यह शरीर अशुचि है।
3. यह शरीर अशुचि से उत्पन्न हुआ है।
4. यह शरीर दुःख और क्लेशों का भाजन है। इसका उत्पत्ति स्थान भी अशुचिमय है।
5. यह शरीर अशाश्वत है। एक दिन इस शरीर को छोड़कर चले जाना है।
6. यह मनुष्य जीवन असार है। यह व्याधि और रोगों का घर है, जन्म और मरण से ग्रस्त है।
7. यह संसार दुःख बहुल है। जन्म दुःख है, मरण दुःख है, रोग और बुढ़ापा दुःख है। इस संसार में दुःख ही दुःख है, जिसमें जीव क्लेश पा रहे हैं।
8. मनुष्य भूमि, घर, पुत्री, स्त्री, बांधव और धन—इन सब को छोड़ कर अवश होकर चला जाता है।

जिस संसार की यह स्थिति है, उसमें मुझे एक क्षण भी आनंद नहीं मिल रहा है इसलिए मैं मुनि बनना चाहता हूँ, विराग के पथ पर बढ़ना चाहता हूँ।

इम शरीर अणिच्चं, असुई असुइसंभवं।  
 असासया वा समिणं, दुक्खं केसाण भायणं॥  
 माणुसत्ते आरस्मि, वाही रोगाण आलए।  
 जरा मरण धत्थम्मि खणं पि न रमामहं॥  
 जम्म दुक्खं जरा दुक्खं रोगाय मरणाणिय।  
 अहो दुक्खो हु संसारे जत्थ कीसति जंतवो॥  
 खेतं वत्थु हिरण्णं च, पुत्तदारं च बंधवा।  
 च३ ताण इमं देहं, गंतव्वमवसस्स मे॥

### शरीर की नश्वरता

मृगापुत्र ने अपनी बात को फिर दोहराया—मुझे इस अशाश्वत स्थान में कोई रति नहीं मिल रही है, आनंद और सुख नहीं मिल रहा है।

मृगापुत्र ने एक सचाई का उद्घाटन कर दिया। यह शरीर क्षणभंगुर है। पानी के बुद्बुदे की तरह है। किसी भी क्षण विलीन हो सकता है। यह एक दिन नष्ट होगा। दो वर्ष बाद, पांच वर्ष बाद या दस वर्ष बाद कभी भी यह शरीर छूट सकता है। इसका कोई भरोसा नहीं किया जा सकता। एक युवक ने कहा—मेरा भाई बीस वर्ष का था। एक दिन रात को दो बजे उठा। वह एक गिलास पानी पीकर पुनः सो गया और सोया तो ऐसा सोया कि फिर कभी उठा नहीं। पानी पिया तब तक जीवित था। सोकर उठने के समय मृत था। जहां शरीर की यह स्थिति है वहां कैसे भरोसा किया जा सकता है? ऐसी घटनाएं प्रतिदिन घटित हो रही हैं—अमुक व्यक्ति का तीस वर्ष की अवस्था में हार्ट फैल हो गया और देखते ही देखते इस संसार से चला गया। शरीर की नश्वरता का जीवन्त साक्ष्य हैं ये घटनाएं।

### शरीर से सार निकालें

जब तक अविद्या में व्यक्ति रहता है तब तक वह सोचता है—मुझे शरीर में रति मिले, मुझे शरीर से सुख मिले, शरीर को सुख-सुविधा मिलती रहे। जब तक असुविधा का पर्दा है तब तक वह शरीर से परे की बात सोच ही नहीं सकता। जब अविद्या का पर्दा हटता है, व्यक्ति की चिन्तन धारा बदल जाती है—मैं शरीर नहीं हूँ चैतन्यमय आत्मा हूँ। मैंने आत्मा को जान लिया है, अब इस शरीर में कोई रति नहीं है। जब शरीर में रति नहीं है तो विषयों में भी रति नहीं है। इस शरीर में सार नहीं है, इस शरीर से सार को निकाला जा सकता है। मुझे इस शरीर में नहीं रहना है, इस शरीर का सार निकालना है।

## शरीर के तीन स्तर

हमारा यह स्थूल शरीर है औदारिक शरीर। उसके भीतर है एक सूक्ष्म शरीर—तैजस शरीर। उसके भीतर एक और है सूक्ष्मतर शरीर—कर्मण शरीर। तैजस शरीर विद्युत् का शरीर है। शरीर के भीतर विद्यमान विद्युत् को पकड़ लिया गया है। आज शरीरशास्त्री बतलाते हैं—हमारे शरीर के भीतर बीस वॉट बिजली है और उस बिजली से एक छोटी-मोटी फैक्ट्री चलाई जा सकती है। एक है कर्म शरीर। हमने जो सोचा है, देखा है, जाना है, बाहर से जितना लिखा है, उन सबका भण्डार भरा है कर्म शरीर में। कर्म शरीर के एक एक परमाणु को यदि पृथ्वी पर बिछाएं तो पूरा लाडनूँ शहर ही नहीं, राजस्थान भी छोटा पड़ जाए। हिन्दुस्तान ही नहीं, पूरा विश्व भी भर जाएगा कर्म के परमाणुओं से। आज की दुनिया जैसी असंख्य दुनिया भी भर जाएगी। इतने परमाणु भरे हैं कर्मण शरीर में। अनंतानंत परमाणु हैं इस शरीर में। वैज्ञानिक कहते हैं—इस शरीर में साठ खरब कोशिकाएं हैं। यह बहुत स्थूल बात है। साठ खरब और छह सौ खरब ही नहीं, अनंत अनंत हैं कर्म शरीर के परमाणु। इतने परमाणु हैं कि सारे लोक में भर जाएं तो भी अंत न आए। लोकाकाश के प्रदेश हैं असंख्य और कर्म परमाणु है अनंतानंत। औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कर्मण शरीर—इन तीन दीवारों को लांघकर आगे जाएं, चेतना का स्पर्श होगा। आत्मा के भीतर परमात्मा है। वह भी सीधा प्राप्त नहीं होगा। पहले गुण और पर्याय आएगा, मूल आत्मा तो उससे आगे है।

### द्रव्य आत्मा : नया अर्थ

तत्त्वार्थ भाष्य में एक प्रसंग है—द्रव्य जीव क्या है? कहा गया—गुण पर्याय रहित जो मूल द्रव्य है, उसका नाम है द्रव्य जीव। यह द्रव्य जीव का एक नया अर्थ है। द्रव्य जीव का एक अर्थ यह भी किया जाता है—पहले जीव था, वह जीव शरीर से मुक्त हो गया या जो जीव पैदा होने वाला है, उसमें भी द्रव्य जीव का आरोपण किया जा सकता है। किन्तु द्रव्य जीव मूल शुद्ध द्रव्य आत्मा है, यह एक नई अवधारणा है। आत्माएं आठ हैं। एक द्रव्य आत्मा है, शेष सारी भाव आत्माएं हैं। पहले हमारा सम्पर्क भाव आत्मा से होगा, हम सीधे मूल तक नहीं पहुंच पाएंगे। वह राजा भीतर बैठा है। उस तक पहुंचने के लिए न जाने कितनी घाटियां पार करनी पड़ेंगी। जो उन्हें पार करता है, वह मूल आत्मा को पा लेता है। यह एक सुन्दर परिभाषा है—द्रव्य आत्मा—गुण पर्याय रहित आत्मा।

### धारणा बदल गई

मृगापुत्र ने कहा—तात ! मात ! मैं इन सारे शरीरों को पार कर आत्मा में चला

गया। अब मेरी सारी धारणा बदल गई है। मुझे न राज्य अच्छा लगता है, न आपका महल अच्छा लग रहा है, न यह अंतःपुर अच्छा लग रहा है। मेरे मन में एक तड़फ और प्यास जाग गई है—मैं अतिशीघ्र अपनी स्थिति को प्राप्त करूं, इन सबको छोड़ कर अकेला हो जाऊं।

माता-पिता न कुछ कहने की स्थिति में थे और न कुछ सुनने की स्थिति में थे। माता-पिता सोच रहे थे—यह ऐसी बातें कैसे कर रहा है? मृगापुत्र की बात माता-पिता नहीं समझ पा रहे थे और माता-पिता की बात को मृगापुत्र नहीं समझ पा रहा था। दोनों की समझ और स्थिति में अन्तर आ गया।

मृगापुत्र ने कहा—आप चाहे मानें या न मानें, मेरी बात सुनें या न सुनें। आपका मुझ पर कोई असर होने वाला नहीं है। मैं इस बात पर अटल हूँ। मेरी यह निश्चित मान्यता है। इस असार संसार में, क्षणभंगुर संसार में यह शरीर जरा और मरण—दोनों से ग्रस्त है। बुढ़ापा और मौत—ये दो राहु मेरे सामने खड़े हैं ग्रसने के लिए। इस शरीर में मेरी कोई रुचि नहीं रह गई है, आर्कषण नहीं रह गया है। मेरी करबद्ध प्रार्थना है—आप मुझे इस बंधन से मुक्त होने की अनुज्ञा दें, अकेला होने की आज्ञा दें। मैं हिरण की तरह अकेला होना चाहता हूँ।

### बॉडी इमेज

जब शरीर के प्रति एक नई कल्पना बन जाती है, स्थितियां बदल जाती हैं। समाजशास्त्रियों और मनोवैज्ञानिकों ने एक सिद्धान्त की परिकल्पना की उसका नाम है “बॉडी इमेज”। व्यक्तित्व की व्याख्या का यह महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। प्रत्येक व्यक्ति शरीर के साथ एक अवधारणा लिए चलता है। मृगापुत्र की शरीर के प्रति अब तक यह धारणा थी—शरीर को खूब सजाना है, अत्यन्त साफ और स्वच्छ रखना है, उसे हर प्रकार से सुख-सुविधा देना है। व्यक्ति इसी धारणा के अनुरूप सुबह उठते ही सबसे पहले स्नान करता है, शरीर की साज-सज्जा करता है, दर्पण में अपने शरीर का प्रतिबिम्ब देखता है, अपने सौन्दर्य को निरखता है, परखता है। कपड़े और गहने धारण करता है। यह सारा शरीर के सौन्दर्य और साज-सज्जा के लिए होता है। इसके पीछे शरीर के प्रति हमारी एक प्रकार की धारणा काम कर रही है। मृगापुत्र की यह धारणा बदल गई। उसके मन में एक नई अवधारणा प्रस्फुटित हुई—शरीर से काम लेना है, शरीर एक नौका है, इसका उपयोग सागर को पार करने के लिए है। नदी को पार करने के लिए एक नौका का उपयोग करना है। जैसे ही नदी को पार कर तट तक पहुंच जाएंगे, इस नौका को छोड़ देंगे। हम बॉडी इमेज के सिद्धांत की व्याख्या



करें तो उसमें ये दोनों धारणाएं प्रस्तुत होंगी। जिस धारणा में शरीर केवल साधन मात्र है, उसमें शरीर के प्रति आसक्ति सधन नहीं होती। केवल शरीर की सार-संभाल होती है पर आसक्ति नहीं होती। एक धारणा वह है, जिसमें शरीर से लाभ तो नहीं उठाया जाता किन्तु उसमें भरपूर आसक्ति होती है। एक है लाभ उठाने वाला, उसे नौका मानने वाला और दूसरा है उसे डुबोने वाला, जिसमें वह भी डूब जाता है। इतना डूब जाता है कि वह उसी में फंस जाता है, कुछ भी लाभ नहीं उठा सकता। उसके सामने कभी नदी का दूसरा तट आता ही नहीं है, वह नदी के बीच में ही रह जाता है।

यह एक महत्वपूर्ण तत्त्व है—बॉडी इमेज या बॉडी कन्सेप्ट। हमारा शरीर के प्रति क्या कन्सेप्ट है ? बॉडी इमेज क्या है ? मृगापुत्र की शरीर के प्रति धारणा बदल गई। धारणा बदलती है, व्यक्ति बदल जाता है, उसका आचार और व्यवहार बदल जाता है।

### सम्मान का अधिकारी कौन ?

सुलतान महमूद गजनबी शेख अब्दुल हसन फुरवान के पास आया। शेख फुरवान प्रसिद्ध संत था। प्राचीन परंपरा रही है—शासक या सम्राट् फकीरों सन्यासियों के पास जाया करते थे, उनका आशीर्वाद लेते थे। महमूद गजनबी शेख फुरवान के पास गया, उसे नमस्कार किया। जरूरत थी सुलतान को। सुलतान ने संत को प्रणाम करते हुए अशर्फियों की थैली भेंट की। संत फुरवान मुस्कुराया। उसने थैले से एक रोटी का टुकड़ा निकाला और सुलतान को दिया। सुलतान उस सूखे और कठोर रोटी के टुकड़े को देखकर अवाक् रह गया। वह बेचारा सम्राट् ! अमीरी में पला-पुसा इस सूखे रोटी के टुकड़े को कैसे खा सकता था ? पर करता भी क्या ? खाने के सिवाय कोई विकल्प नहीं था। सम्राट् रोटी के टुकड़े को मुंह के पास ले गया, उसे दांतों पर रखा। न वह रोटी को तोड़ ही पा रहा था और न खा पा रहा था।

संत फुरवान ने कहा—सुलतान ! रहने दो। यह रोटी तुम्हारे काम की नहीं है और तुमने जो थैली यहां रखी है, वह मेरे काम की नहीं है।

सुलतान को अपनी भूल का एहसास हुआ। मैंने संत को अशर्फियों की थैली भेंट कर भूल की है।

कुछ क्षण बीते। सुलतान जाने लगा। फकीर अपने आसन से उठा। सुलतान यह देख विस्मित रह गया—मैं आया तब शेख अकड़ कर बैठा था और अब जा रहा हूँ तो सम्मान कर रहा है। सुलतान से रहा नहीं गया, उसने पूछा—दीदारप्रवर ! यह

क्या ? मैं आया तब आप बैठे रहे और मैं जा रहा हूँ तब सम्मान में खड़े हो गए।  
ऐसा क्यों ?

शेख फुरवान ने कहा--पहले तुम सम्मान के अधिकारी नहीं थे और अब सम्मान  
के अधिकारी बन गए हो ?

संतवर ! इसका रहस्य क्या है ? पहले मैं सम्मान का अधिकारी क्यों नहीं था  
और अब कैसे हूँ ?

सुलतान ! जब तुम आए तब तुम्हारे सिर पर इन अशर्फियों का अहंकार सवार  
था। मैं किसी अहंकारी को सम्मान नहीं देता। अब जब तुम जा रहे हो तब अहंकार  
का भूत तुम्हारे सिर से नीचे उतर गया है। तुम विनम्र बन गए हो। विनम्रता को  
सम्मान देना एक फकीर का कर्तव्य है इसलिए मैं तुम्हें सम्मान दे रहा हूँ।

दो प्रकार की धारणाएं, कल्पनाएं, मनोवृत्तियां या दो प्रकार की दुनिया है। एक  
प्रकार की दुनिया का चिन्तन और कल्पना अलग होती है दूसरी प्रकार की दुनिया  
की कल्पना और चिन्तन अन्यथा प्रकार का होता है, इसलिए जब दस-पंद्रह वर्ष का  
बालक दीक्षा लेता है, तब लोग आश्चर्य करते हैं। दीक्षा लेते हैं एक या दो व्यक्ति  
और आश्चर्य होता है सब लोगों को। वे कहते हैं--देखो ! बेचारा दीक्षा ले रहा है !  
इसने क्या सुख भोगा ? दुनिया में आकर क्या देखा ? सबको छोड़कर जा रहा है !  
इसके मन में कैसे जाग उठा वैराग्य ? ऐसे न जाने कितने प्रकार के बोल लोगों के  
मुख से निकलते हैं। लोगों की ये बातें स्वाभाविक हैं। जिस दुनिया में जी रहे हैं, जिस  
मनोवृत्ति में जी रहे हैं, उसमें आश्चर्य होना स्वाभाविक है। उनकी सारी धारणा बॉडी  
इमेज से जुड़ी हुई है। उनकी सारी कल्पना शरीर केन्द्रित है इसलिए उससे परे की  
बात सामने आती है तो उन्हें आश्चर्य होता है। मृगापुत्र को आश्चर्य हो रहा  
था--माता-पिता वृद्ध होने को आए हैं। उन्हें मेरी बात समझ में क्यों नहीं आ रही  
है? वे यह क्यों नहीं सोचते--मेरा प्रिय पुत्र एक अच्छे मार्ग पर जा रहा है ? उसको  
सहारा देना चाहिए। उन्हें यह कहना चाहिए--तुम दीक्षा ले रहे हो, हम भी तुम्हारे  
साथ चलते हैं। वे मुझे रोकना क्यों चाह रहे हैं ?

माता-पिता को मृगापुत्र के आचार-व्यवहार पर आश्चर्य हो रहा था और मृगापुत्र  
को माता-पिता के आचार-व्यवहार पर। ये दोनों प्रकार के आश्चर्य हमारी दुनिया में  
चलते हैं।

### अपना-अपना चिन्तन

सन् १६८७ की घटना है। एक मां अपने पुत्र की शिकायत लेकर मेरे पास  
आई। उसने कहा--महाराज ! यह बहुत आग्रही है, यह कहता है--यह नहीं खाऊंगा,

वह नहीं खाऊंगा। हम सब खाते हैं और यह नहीं खाता। इससे हमें दुःख होता है। आप इसे समझाएं। हम तो अच्छी चीजें खाते हैं और यह सबका त्याग कर देता है।

मैंने कहा--क्या मैं खाने के लिए समझाऊँ ? त्याग और संयम तो अच्छी बात है।

मेरे पास बंगाल के संभ्रांत नागरिक दत्ता साहब बैठे थे। वे निःस्पृह साधक हैं। उन्होंने कहा--तुम इसके चिन्तन में हतक्षेप क्यों करती हो ? इसका अपना चिन्तन है, तुम्हारा अपना चिन्तन है। तुम अपने ढंग से जीओ और यह अपने ढंग से जीए। यदि तुम्हें इसकी इतनी ही ज्यादा चिन्ता है तो तुम भी ये चीजें खाना छोड़ दो।

### शाश्वत स्वर

माता-पिता मृगापुत्र को यह समझाना चाहते थे--तुम साधु मत बनो किन्तु उनके मन में यह भावना नहीं जागी--तुम साधु बन रहे हो तो हम भी साधु बनेंगे। ऐसे काम में साथ देना कोई नहीं चाहता। जब तक धारणा नहीं बदलती, व्यक्ति का दृष्टिकोण नहीं बदलता। जब तक व्यक्ति शरीर में बैठा हुआ है तब तक वह आत्मा में रहने वाले का साथ देना भी नहीं चाहता और दे भी नहीं सकता। शरीर की सीमाओं को समझना होगा। जब तक हम शरीर और चेतना के विभिन्न स्तरों को नहीं जानेंगे तब तक सबकी व्याख्या नहीं कर सकेंगे। आज मनोविज्ञान भी बहुत सारी समस्याओं की व्याख्या नहीं कर सकता। वह इसलिए नहीं कर सकता कि उसकी सीमा चेतना के कुछ स्तरों तक जाती है। वह आत्मा के स्तर पर अभी नहीं पहुंचा है। जब तक हम आत्मा के स्तर पर नहीं चले जाते तब तक सारे प्रश्नों का विवेचन और समाधान नहीं कर सकते। सारे प्रश्नों का उत्तर पाने के लिए देह की सीमा को पार कर आत्मा की सीमा में प्रवेश करना होता है। एक आदमी के मन में नरम, गरम और मुलायम पदार्थ खाने की लालसा होती है और एक आदमी सब कुछ छोड़ कर अनशन ले लेता है। यह आश्चर्य ही है। ऐसा क्यों होता है ? यह देह की सीमा से परे का स्वर है। जब व्यक्ति देह की सीमा को पार कर जाता है, आत्मा की सीमा में प्रवेश कर जाता है तब सारा चिन्तन का प्रकार, खान-पान और व्यवहार का प्रकार बदल जाता है। ऐसा ही परिवर्तन मृगापुत्र में घटित हुआ। परिवर्तन के क्षणों में निकला वह स्वर शाश्वत स्वर बन गया--मुझे इस संसार में क्षण भर के लिए भी आनंद नहीं मिलता, मैं वहां जाना चाहता हूँ, जहाँ आनंद ही आनंद है। केवल मृगापुत्र की ही नहीं, आत्मा की झलक पाने वाले प्रत्येक व्यक्ति की भाषा यही होगी। इस भाषा में शाश्वत सुख के अन्वेषण और उपलब्धि की घोषणा है, जिसका अनुभव देह की सीमा से परे जाने वाला कोई भी व्यक्ति कर सकता है।

## मोम के दांत और लोहे के चने

### मृगापुत्र का प्रस्ताव

मृगापुत्र ने कहा—मैं मुनि बनूंगा। इस प्रस्ताव पर माता-पिता ने चिन्तन किया। उन्होंने सोचा—मनाही नहीं करना है, निषेध नहीं करना है। निषेध किया जाएगा तो विचार और पक्का बन जाएगा। हम निषेध न करें, कोई मनोवैज्ञानिक तरीका अपनाएं।

उत्तराध्ययन का मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन करना बहुत जरूरी है। इस दृष्टि से मृगापुत्र अध्ययन बहुत महत्त्वपूर्ण है। माता-पिता ने ऐसे दृष्टिकोण अपनाए, मानसिक दृष्टि से उसके सामने कुछ प्रश्न रखे। यदि कोई कच्चा होता तो मुनि बनने की बात वहीं छोड़ देता, आगे बढ़ता ही नहीं किन्तु मृगापुत्र धीर था, विशिष्ट ज्ञानी था इसलिए वह अविचल बना रहा।

यदि किसी व्यक्ति को लक्ष्य से विचलित करना है तो उसके दो मनोवैज्ञानिक तरीके हैं—भय दिखाना और हीन भावना का निर्माण करना। जो धीर होता है, वह इनसे प्रकंपित नहीं होता।

*लक्ष्यं विचलितुं कर्तुं भयं दर्शयते जनः।*

*हीनभावं च निर्माति, तत्र धीरो न कम्पते॥*

### भय और हीन भावना

लक्ष्य से विचलित करने के दो तरीके बतलाए गये हैं—या तो भय दिखाओ या हीन भावना पैदा करो। उसके दुर्बल पक्षों को सामने रखो। हर व्यक्ति में दुर्बल पक्ष होता है। दुर्बलता की इतनी विभीषिका पैदा कर दो कि वह विचलित हो जाए। लक्ष्य से विचलित करने के ये दो तरीके हैं और ये तरीके समय-समय पर काम में लिए जाते रहे हैं। जब भी कोई प्रसंग आता है बड़ा काम करने का, तब आदमी सबसे पहले भय दिखाता है—देखो ! तुम चले तो हो किन्तु आगे क्या-क्या होगा ? क्या तुम्हें पता है, सामने क्या स्थितियां आएगी ? इस प्रकार एक भय का वातावरण तैयार किया जाए, जिससे व्यक्ति डर जाए और वहीं उसके पैर थम जाएं। या फिर हीन भावना पैदा कर दी जाए—तुम काम तो इतना बड़ा करने जा रहे हो और तुम्हारी

शक्ति क्या है ? अपनी शक्ति को तोलो। बिना शक्ति को तोले बड़ा काम करने जा रहे हो। हीनता की भावना और अनुभूति पैदा कर दो, वह वहीं थम जाएगा, आगे नहीं बढ़ेगा। ये दो ऐसे तरीके हैं, जिसमें कहीं निषेध नहीं करना पड़ता। यह अनिषेध होकर भी अपने आप निषेध का काम कर देता है। जिस कार्य के लिए सीधा निषेध किया जाता है, व्यक्ति उस कार्य को करने के लिए कटिबद्ध बन जाता है।

### निषेध का परिणाम

फ्रायड अपनी पत्नी के साथ घूम रहे थे। साथ में लड़का भी था। बगीचे में घूमते-घूमते काफी देर हो गई। थोड़ी देर बाद पत्नी ने मुड़कर देखा तो लड़का दिखाई नहीं दिया। पत्नी घबड़ा गई। उसने फ्राइड से कहा--तुम जल्दी करो। लड़का कहां गया है, खोजो।

फ्रायड ने कहा--घबरा क्यों रही हो ? कोई खास बात नहीं है।

'नहीं, देखो ! इतनी भीड़ है, कहीं गुम हो जाएगा। कहीं अन्यत्र चला गया तो पता ही नहीं चलेगा।

फ्रायड ने शान्त भाव से कहा--चिन्ता की कोई बात नहीं है।

मैं बहुत चिन्तित हूँ।

क्या तुमने उसे कहीं जाने की मनाही की थी ?

हां, मनाही तो की थी।

कहां जाने के लिए ?

वह तालाब के पास जाना चाहता था। मैंने उससे कहा--तुम तालाब के पास मत जाना।

फ्रायड ने कहा--लड़का वहीं मिलेगा।

दोनों उसी मार्ग पर चल पड़े, तालाब के पास पहुंचे, लड़का वहीं खड़ा था।

पत्नी विस्मय भरे स्वर में बोली--क्या आपको कोई ज्ञान हो गया ? आपको कैसे पता चला कि लड़का वहीं मिलेगा ?

फ्रायड बोला--तुम जानती नहीं हो--यह मनोविज्ञान का नियम है। जिस काम के लिए बच्चे को मनाही करो, बच्चा वह काम जरूर करेगा। तुमने मनाही की थी तालाब के पास मत जाना और मैंने जान लिया, बच्चा जरूर वहीं गया है।

### मनोविज्ञान का नियम

फ्रायड ने मनोविज्ञान का एक सामान्य नियम बना दिया और वह नियम बच्चों के लिए ही नहीं, बड़ों के लिए भी लागू होता है--जिस कार्य का निषेध किया जाएगा,

उसके प्रति आकर्षण अधिक पैदा होगा। जैन रामायण के प्रसंग में एक कहानी कही जाती है।

एक सेठानी को जिस काम के लिए मनाही करते वह उस काम को जरूर करती। सेठ ने कहा—आज सावण की तीज है। आज मेला लगेगा, तुम्हें वहां नहीं जाना है।

उसने कहा—मैं जरूर जाऊंगी।

ठीक है। जाओ तो अकेले मत जाना, बच्चों को साथ लेते जाना।

नहीं ! अकेली ही जाऊंगी। क्या मैं निकम्मी हूँ, जो बच्चों को पीछे-पीछे ले जाती रहूँ ?

कोई बात नहीं। पर जाओ तो अच्छे कपड़े और गहने पहन कर जाना। नहीं तो अच्छा नहीं लगेगा। लोग कहेंगे—देखो इतने बड़े सेठ की पत्नी है और सीधे-सादे फटे-पुराने कपड़ों में आई है।

मैं अच्छे वस्त्र नहीं पहनूंगी।

वहां जाओ तो नदी के पास में तो मत जाना।

नदी के पास में ही नहीं, भीतर जाऊंगी।

सेठ को जो करना था, वह कर लिया। सेठानी फटे-पुराने कपड़े पहनकर मेले में गई, नदी के मध्य चली गई। ऐसी गई कि फिर वापस आई ही नहीं।

यह एक मानवीय दुर्बलता है। मानवीय प्रकृति ही ऐसी है कि निषेध भी एक अभिप्रेरक तत्त्व बन जाता है, प्रेरणा बन जाता है।

मनोविज्ञान का एक विद्या के रूप में इन शताब्दियों में विकास हुआ है किन्तु मनोवैज्ञानिक तथ्य नए विकसित नहीं हुए हैं। न जाने कब से शाश्वत काल से मनुष्य में ये वृत्तियां रही हैं। जैसा आज हो रहा है, वैसा अतीत में भी होता रहा है। चाहे व्याख्या करना कोई जाने या न जाने।

### भय का चित्र

मृगापुत्र के माता-पिता ने मनोवैज्ञानिक तरीके से काम लिया। पिता बोला—पुत्र! तुम मुनि बनना चाहते हो पर देखो—तुम कौन हो ? तुम बहुत सुकुमार हो और श्रामण्य का आचरण करना कितना कठिन है। तुम यह असंभव बात मत करो। तुम साधु भले बनो, हमें क्या आपत्ति है। तुम्हारी इच्छा है तो हम क्यों रोकें पर पहले वस्तु स्थिति का अंकन तो करो। क्या तुम्हें पता है, यह साधुत्व क्या है ? किसने तुम्हारे कान में फूंक मार दी ? तुम साधु बनने की बात कर रहे हो पर इस बात को सोचो—साधुपन कितना कठोर होता है। वह मोम के दांत से लोहे के चने चबाने जैसा है। क्या मोम के दांत से लोहे के चने चबाए जा सकते हैं ?

*अहिवेगन्तदिदृष्टीए, चरित्ते पुत्तदुच्चरे।*

*जवा लोहमया चैव, चावेयव्वा सुदुक्करं॥*

माता-पिता के भय का एक चित्र बना दिया। बिना तूलिका और बिना रंग के इतना भीषण चित्र बनाया, यदि कोई कमजोर होता तो उसे देखकर कांप उठता।

### अहं का उद्दीपन

पिता ने कहा—पुत्र ! तुम राजकुमार हो, तुम्हें जनता पर शासन करना है। तुम्हारे पर स्वामित्व का भार है। तुम्हारा हाथ दाता जैसा रहेगा किन्तु याचक जैसा नहीं होगा। कौन दाता है और कौन याचक है, यह कहने और पूछने की जरूरत नहीं होती। हाथ की मुद्रा अपने आप सूचित कर देती है। तुम दाता हो पर साधु बनने पर तुम्हें भिक्षा मांगनी पड़ेगी। यह कापोती वृत्ति तुम्हें स्वीकार करनी पड़ेगी। घर-घर भिक्षा के लिए जाना पड़ेगा। क्या तुम्हारे जैसे राजकुमार के लिए यह उचित है ?

माता-पिता ने उसके अहं को पकड़ा। अहं बहुत जटिल वृत्ति है। हिंसा, अब्रह्मचर्य, वीरी और परिग्रह की वृत्तियां जटिल हैं किन्तु अहंकार की वृत्ति इनसे कम जटिल नहीं है। पता नहीं, इसका महाव्रत क्यों नहीं बना ? एक महाव्रत है विनम्रता का, अहंकार विलय का। बहुत सारी बातें छूट जाती हैं पर अहंकार की ग्रन्थि का भेदन नहीं होता। शायद सबसे ज्यादा साधुता में कोई कठिन बात है तो वह है अहंकार की वृत्ति का विलय। बड़े-बड़े त्यागी-तपस्वी ब्रह्मचारी और अपरिग्रही हो जाते हैं फिर भी अहंकार का नाग समय-समय पर फुफकारने लग जाता है। संप्रदायों में जो बहुत सारे अलग-आए हैं, जो पद लोलुपता की समस्या बढ़ी है, उसके पीछे अहंकार ही मुख्य कारण है। दिनभर होना और अहंकार का विसर्जन करना शायद कठिनतम काम है।

माता-पिता ने मृगापुत्र के अहंकार को उभारा—तुम कौन हो पुत्र ? तुम राजकुमार हो। कितना वैभव है तुम्हारे पास ! क्या तुम भीख मांगते ! फिरोने ?

### मृगापुत्र का उत्तर

मृगापुत्र ने इन बातों को गंभीरता से सुना। माता-पिता ने सोचा—अंगुली घाव पर टिकी है, कुमार अपना मन बदल लेगा। किन्तु कुमार का मन विचलित नहीं हुआ।

मृगापुत्र बोला—तात ! मुझे कोई कठिनाई नहीं है। मैंने सत्य का साक्षात्कार कर लिया है।

### किसका साक्षात्कार ?

आपको उसका पता नहीं है। आप भी भूल गए होंगे, काफी लम्बा समय बीच में निकल गया है।

कौन-सा साक्षात्कार कर लिया है तुमने ?

मैंने सचाई का, अपने अस्तित्व का साक्षात्कार कर लिया है।

क्या इतना सरल है सत्य का साक्षात्कार ?

आप कैसी बात कर रहे हैं? आप सिर्फ मुझे देख रहे हैं, राज्य को देख रहे हैं, किन्तु मैं सारे चक्र को देख रहा हूँ।

कौन सा चक्र ?

आपको पता है कि मैं पहले जन्म में क्या था ? उससे पहले क्या था ? और उससे पहले क्या था ?

### पूर्व जन्म की स्मृति का परिणाम

जब व्यक्ति अपने पूर्व जन्मों का साक्षात्कार करता है, उस समय सारी मनोदशा बदल जाती है। वह व्यक्ति सोच ही नहीं सकता, जिसने अपने पूर्व जन्म का साक्षात्कार नहीं किया है। जब उसके सामने सच्चाईयाँ आती हैं तब क्या होता है, कुछ कहा नहीं जा सकता। इन वर्षों में कुछ व्यक्तियों के पूर्व-जन्म के साक्षात्कार की बातें सुनीं। व्यक्ति उन्हें सुनकर अवाकू रह जाए। किस प्रकार व्यक्ति अपने जीवन के चक्र में क्या-क्या करता रहता है, कहाँ नहीं जा सकता, सोचा नहीं जा सकता। ऐसी घटनाएँ सामने आई हैं, जिन पर विश्वास भी न किया जा सके और अविश्वास करना भी ठीक नहीं है। वस्तुतः जब जीवन का चक्र चलता है और साक्षात्कार होता है, तब जो स्थितियाँ बनती हैं, व्यक्ति की दुनिया ही बदल जाती है।

माता-पिता दूसरी दुनिया की बात कर रहे हैं, वे एक दुनिया की बात कर रहे हैं और मृगापुत्र के सामने न जाने कितनी दुनिया के चित्र साक्षात् आ जा रहे हैं।

### नीरस है साधुपन

मृगापुत्र बोला--मात ! तात ! आपको बड़ा कष्ट हो रहा है मेरे कारण। आप मुझे समझाने का प्रयत्न कर रहे हैं पर मेरी अक्षमता यह है कि आप चाहे जितना श्रम करें, वह सफल नहीं होगा। अब मैं इस राज्य की भूमिका में नहीं हूँ। मैं दूसरी भूमिका में चला गया हूँ। मेरे लिए न तो भिक्षा मांगना कठिन है, न कुछ और करना कठिन है। अहंकार का सारा वलय टूट चुका है। यह कवच और सांप की केंचुली मेरे लिए कोई काम की नहीं रही है। इसका उपयोग चाहे जैसा कोई दूसरा करे।

माता-पिता समझ नहीं पाए। एक दिन में ही यह क्या हो गया ? एक दिन में ही इतना बदलाव कैसे आ गया ? कल तक कोई बात ही नहीं थी, आज सब कुछ बदल गया, हुआ क्या ? माता पिता बोले--तुम भिक्षा भी मांग लोगे ! अहंकार तुमने



छोड़ दिया है पर जरा यह भी सोचो--आदमी को वही काम करना चाहिए, जिसमें कोई न कोई रस हो। बालू को कोई खाए तो कैसा स्वाद आता है, उसमें कोई स्वाद नहीं होता। एक कण भी कवल के साथ आ जाए तो उसे थूकना पड़ता है। कितना निःस्वाद है। साधुपन भी ऐसा ही नीरस है। इस जीवन में कितना रस है ! कितना सरस है यह जीवन ! इसमें रस ही रस है। परमात्मा क्या है ? जो रस है, वही परमात्मा है। यह नीरस जीवन अच्छा नहीं लगता। साधुपन बालू की तरह बिल्कुल नीरस है।

### निराशावाद

पश्चिमी लोग भारतीय दर्शन पर यह आरोप लगाते हैं--भारतीय दर्शन निराशावाद या नीरसवाद है। कहीं सरसता है ही नहीं। जीवन को सुखाओ, जीवन को नीरस बनाओ। कोरा पलायनवाद है। यह आरोप उन्होंने ही नहीं, मृगापुत्र के माता पिता ने भी लगाया--बेटा ! यह श्रामण्य बालू खाने की तरह नीरस है। इस नीरस मार्ग को चुनकर तुम क्या करोगे ?

माता-पिता ने अनेक तर्क प्रस्तुत किए--देखो ! तुम अपने को तौलो। तुम्हारी शक्ति कितनी है ! तुम इसमें सफल कैसे बनोगे ? हमें कोई कठिनाई नहीं है। तुम भले ही साधु बनो, हम मनाही नहीं करेंगे। पर ऐसा न हो जाए--तुम कल फिर विचलित हो जाओ।

मुनि बनने वाले व्यक्ति के सामने आज भी यह तर्क आता है--साधु बन रहे हो, हमें कोई कठिनाई नहीं है। यदि भविष्य में साधु-जीवन के कष्टों को न सह पाए तो क्या होगा ? इस तर्क के पीछे चिन्ता शायद भविष्य की नहीं होती, चिन्ता वर्तमान मूर्च्छा की होती है।

### चिन्ता माता-पिता की

माता-पिता की भी यही चिन्ता थी--आगे क्या होगा ? कैसे सफल बनोगे ? कितना कठोर मार्ग है ! तुम इस पर जरा ध्यान दो। साधुपन में निरंतर एक दृष्टि से रहना है। सांप एक दृष्टि वाला होता है। सांप में त्राटक की शक्ति बड़ी तेज होती है। अनिमेष दृष्टि सांप में जितनी तेज होती है उतनी साधना शायद आदमी के लिए भी कठिन है। अजगर शिकार के लिए जाता नहीं है, पर उसकी दृष्टि के सामने कोई आ जाता है और यदि वह उसकी ओर दृष्टि फेंक देता है तो व्यक्ति सम्मोहित हो जाता है, उसके लिए शिकार बन जाता है। सांप भी ऐसा ही होता है। वह जिस पर दृष्टि डाल देता है, खतरा बन जाता है। कुछ सर्प ऐसे होते हैं, जिन्हें हम दृष्टि विष सर्प कहते हैं। दृष्टि विष का एक अर्थ यह है--सांप ने अपनी अनिमेष दृष्टि से जिस

पर त्राटक कर लिया और वह व्यक्ति उसकी रेंज में चला गया तो आगे सरक नहीं पाएगा, उसे वहीं का वहीं रहना पड़ेगा। जो जानकार लोग होते हैं, वे सांप की सीध में नहीं जाएंगे, टेढ़े-मेढ़े जाएंगे। वे उसकी दृष्टि के सामने नहीं आएंगे। कई सर्प ऐसे होते हैं कि उनकी दृष्टि के सामने जाने वाले के पैर वहीं धम जाते हैं और फिर सांप जो चाहे, सो कर सकता है।

### कठोर कर्म है गृहस्थी चलाना

माता-पिता ने कहा—बेटा ! तुम जानते हो, एक लक्ष्य रखना, एक दृष्टि रहना, कितना कठोर काम है।

मृगापुत्र बोला—मात-तात ! आपने जो कहा, वह बिल्कुल ठीक बात है। मैं जानता हूँ—साधुपन कठोर चर्या है। क्या गृहस्थ जीवन कम कठोर है ? यह कष्ट की बात साधु जीवन के लिए कही जाती है पर अगर तुलनात्मक दृष्टि से देखें तो गृहस्थ जीवन भी कम कठोर नहीं है। कितनी कठोर चर्या है गृहस्थ की। प्रातः उठता है और शाम को सोता है तब तक कोल्हू के बैल की भांति पिसता चला जाता है। व्यक्ति को यह शिकायत रहती है—एक मिनट का समय मेरे पास नहीं है। उठता हूँ, जल्दी-जल्दी नाश्ता कर दुकान जाता हूँ। रात को आठ बजे आता हूँ और आते ही रोटी खाता हूँ, फिर सो जाता हूँ। बीच में करने को कुछ बचता ही नहीं।

आज के जमाने में गृहस्थी चलाना तो बहुत कठोर कर्म है। चारों ओर भय का वातावरण, इतनी महंगाई और जटिल आर्थिक समस्याएं ! ऐसी स्थिति में गृहस्थ साधु को धन्यवाद दे—आप बहुत कठोर चर्या कर रहे हैं या गृहस्थ साधु को धन्यवाद दे? यह शायद प्रश्न हो सकता है। गृहस्थ की समस्याएं भी कम नहीं है फिर भी एक मूर्च्छा ऐसी है, जिससे प्रभावित व्यक्ति यह मानता है—गृहस्थ जीवन सुविधापूर्ण है और साधु जीवन कठोर। समाज चलता है पूर्वाग्रह के कारण। पूर्वाग्रह होता है तो समाज चलता है और पूर्वाग्रह छूट जाए तो शायद समाज भी न चले। चले तो अन्यथा चले। एक मान्यता, धारणा और आग्रह बन गया, उस लीक पर सारे चलते चले जा रहे हैं। जो भी कष्ट आता है, सहते चले जा रहे हैं। अगर पुरानी धारणाएं और पूर्वाग्रह टूट जाएं तो शायद समाज की स्थिति भी अन्यथा बन जाए।

### मल्ल का काम : गुरु का काम

मृगापुत्र बोला—माता पिता ! आपने मेरी दुर्बलताओं को समझा है और मैं भी मानता हूँ कि मैं दुर्बल हूँ। पर जितना आप मानते हैं मैं उतना दुर्बल नहीं रहा हूँ। दुर्बलताएं हर व्यक्ति के मन में होती हैं। अब मेरी दुर्बलताएं दूर होती जा रही हैं। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं अपने लक्ष्य में बहुत सफल बनूंगा। मैं आपसे

एक प्रार्थना करूं, आप बुरा न मानें। बड़ों का काम छोटों की दुर्बलता को उकसाना, उन्हें दुर्बलता में ले जाना, उनमें हीन भावना पैदा करना है या उनमें उदात्त भावना पैदा करना है ? बड़ों का काम क्या है ? हीन भावना पैदा करनी चाहिए या उदात्त भावना ? आपका काम यह है कि आप मुझे सहारा दें, प्रोत्साहन दें। आप यह प्रेरणा दें—बेटा ! तुमने बड़ा लक्ष्य चुना है। बड़ा अच्छा मार्ग चुना है। हम तुम्हारा सहयोग करेंगे, पर आपने ऐसा नहीं किया। आपने मल्ल का काम किया, गुरु का काम नहीं किया। मल्ल का काम होता है पछाड़ना और गुरु का काम होता है उठाना। आपने वही काम किया है पर मैं पूरे आत्म-विश्वास के साथ कहता हूँ—मैं अपने लक्ष्य में सफल बनूंगा और अपनी दुर्बलता को छोड़ूंगा। दुर्बलताओं को भी मैंने साक्षात् देख लिया है। मैं इसीलिए साधु बन रहा हूँ कि उन वृत्तियों को जीतकर दुर्बलताओं को मिटा सकूँ।

जिस व्यक्ति में यह आत्म-विश्वास जाग जाता है, वह सफल बन जाता है। मृगापुत्र का आत्म-विश्वास जाग गया। यह केवल मृगापुत्र की बात नहीं है, दुनिया में सैकड़ों ऐसी घटनाएँ हुई हैं। जहाँ जहाँ आत्म विश्वास जगा है, आदमी सफल बना है।

### आत्म-विश्वास की निष्पत्ति

बेंजामिन फ्रेंकलिन १७ वर्ष की आयु में घर से निकल गया। कारण बना बड़े भाई का व्यवहार। वह घर से बेघर हो गया। एक भाषा में वह अनगार हो गया। न्यूयार्क गया और वहाँ दूसरा काम किया। उसे प्रेस में नौकरी मिली और वहाँ काम शुरू किया। माता-पिता को बड़ी चिन्ता हुई, खोज शुरू की और पता मिलते ही पत्र लिखा। पत्र के उत्तर में बेंजामिन ने जो पत्र लिखा, वह बहुत ही मार्मिक पत्र था। उसने लिखा—माता-पिता ! आप मेरी चिन्ता न करें, मैं प्रसन्न हूँ। मुझे नौकरी मिल गई है, काम कर रहा हूँ। आपको यह सदेह नहीं होना चाहिए कि मैं सफल होऊंगा या नहीं ? उन्होंने लिखा—यदि इस दुनिया में ईमानदारी, अध्यवसाय, मितव्ययता, परिश्रम और मादक द्रव्यों से परहेज करना—ये सफल होंगे, तो निश्चित ही मैं अपने जीवन में सफल बनूंगा और ये सफल नहीं होते हैं तो फिर कोई बात नहीं है। सचमुच ऐसा ही हुआ। उसने ईमानदारी और दृढ़ अध्यवसाय से काम किया, बुराइयों से बचा रहा, इसका परिणाम यह आया—वह सफल हो गया, दुनिया का एक बड़ा आदमी बन गया।

जिस व्यक्ति में यह आत्म-विश्वास जाग जाता है कि मैं अपने गुणों के कारण अपने जीवन में महान बन सकता हूँ और बड़ा काम कर सकता हूँ, सफल हो सकता

हूँ, वह निश्चित ही सफल हो जाता है। मृगापुत्र के मन में यह विश्वास पैदा हो गया—मैं मुनि बनूंगा और बहुत सफल मुनि बनूंगा। इसमें मुझे कोई संदेह नहीं। उसने पूरे आत्म-विश्वास के साथ माता-पिता के सामने अपनी बात रखी, अपना तर्क संगत पक्ष रखा।

### अकाट्य तर्क

जहां तर्क चलता है वहां जिसका तर्क कमजोर होता है, वह दब जाता है। मृगापुत्र का तर्क बहुत मजबूत था, माता-पिता सचमुच सोचने के लिए विवश बन गए। मृगापुत्र के सामने सत्य एक समुद्र जैसा था। माता-पिता के सामने एक छोटी सी तलैया थी। राज्य और वैभव एक छोटी तलैया है, जिसमें आदमी डूबकी लगाता है तो पूरा डूब भी नहीं पाता और पूरा ऊपर भी नहीं आ पाता। उस तलैया में नीचे तो दल-दल भरा पड़ा है। मृगापुत्र के सामने सत्य का एक विशाल समुद्र-सा लहरा रहा था, वह उसका साक्षात् कर रहा था। इस स्थिति में उसके तर्क कैसे अकाट्य नहीं बनेंगे ? माता-पिता के लिए उसके तर्क अकाट्य बन गए। माता-पिता ने सोचा—क्या करें ? क्या आज्ञा दें ? नहीं ! नहीं !! एक प्रयत्न फिर करना चाहिए। कोई भी आदमी सीधी हार नहीं मानता। कमजोर भी सीधी हार नहीं मानता। छोटे से छोटा आदमी भी हार स्वीकारना नहीं चाहता। वे माता-पिता थे। माता-पिता होने का गर्व भी होता है। जो स्वयं को बड़ा मानता है, वह छोटे को छोटा ही मानेगा, चाहे वह कितना ही होशियार क्यों न हो ?

माता-पिता बोले—पुत्र ! आज काफी चर्चा की है। एक साथ दिमाग पर ज्यादा मार नहीं डालना चाहिए। तुम्हारी भावना और तर्क हमने सुन लिए हैं। पर क्या आज डी निर्णय करना जरूरी है ?

हमें भी थोड़ा सोचने का अवकाश दो और तुम भी जरा अवकाश लो, ठंडे दिमाग से सोचो। कल फिर बात करेंगे, फिर सोचेंगे। निर्णय बहुत सोच समझकर लेना चाहिए ! सहसा जल्दबाजी में कोई निर्णय नहीं लेना चाहिए। 'सहसा विदधीत न क्रियां'-इस सूक्त पर तुम भी मनन करो, हम भी मनन करेंगे। उस मनन से जो नेष्कर्ष निकलेगा, वह विवेकपूर्ण होगा, संपदा की वृष्टि करने वाला होगा।

## पथ और पाथेय

### दीर्घ मार्ग

मृगापुत्र और माता-पिता का संवाद चल रहा था। पिता ने कहा--पुत्र ! तुम मुनि क्यों बनना चाहते हो ? तुम्हारे मुनि बनने का प्रयोजन क्या है ? उद्देश्य क्या है ?

मृगापुत्र बोला--माता-पिता ! मैं बहुत दीर्घ मार्ग को देख रहा हूँ, महान् अध्वा को देख रहा हूँ। उस मार्ग पर चलने के लिए मुझे पाथेय की जरूरत है। उस पाथेय के लिए मैं संयम को स्वीकार करना चाहता हूँ।

कहाँ है लम्बा मार्ग ? तुम्हारे राज्य में तो वाहन और पाथेय की भी कमी नहीं है।

पिता-माता ! यह मार्ग बहुत छोटा है। मैं जिस दीर्घ मार्ग को देख रहा हूँ, उसे पार करने के लिए आपका कोई वाहन काम नहीं कर सकता और वैसा पाथेय दे सके, ऐसा एक भी तत्त्व आपके राज्य में नहीं है।

बात रहस्यपूर्ण बन गई।

### जरूरी है पाथेय

पिता ने कहा--तुम साफ-साफ बताओ।

पिताजी ! मैं आपको व्यवहार की बात बताऊँ। एक व्यक्ति ने जंगल का लम्बा रास्ता ले लिया। वह भयंकर जंगल से गुजर रहा है। साथ में रोटी-पानी नहीं है। वह भूख-प्यास से पीड़ित हो गया। वह कैसे पार कर पाएगा जंगल को। अनेक बार ऐसी स्थिति में व्यक्ति जंगल का पार नहीं पा सकता, बीच में ही रह जाता है। इसी प्रकार मैंने जिस पथ को देखा है, वह बहुत लम्बा है। उस मार्ग पर धर्म का पाथेय लिए बिना जो व्यक्ति जाता है, वह बहुत पीड़ित होता है। कभी रोग, कभी कष्ट--नाना प्रकार की समस्याओं की पीड़ा झेलनी पड़ती है, वह सुख-शान्तिमय जीवन नहीं जी सकता। इसलिए आप कृपा कर अनुमति दें ताकि मैं अपने लिए पाथेय पा सकूँ।

बहुत महत्वपूर्ण प्रश्न है पथ और पाथेय का। जीवन यात्रा में सफलता के लिए सबसे पहली शर्त है पथ को जान लेना। जिसने पथ को नहीं देखा है, वह व्यक्ति

भटक जाता है। पथ को देख लेना और पाथेय को पा लेना महापथ को पार करने के लिए जरूरी है।

**पाथेय क्या है ?**

पिता ने पूछा--पुत्र ! इस महापथ के लिए किस पाथेय की जरूरत है ?

‘पीने को दूध भी चाहिए, खाने को दधि भी चाहिए, घी भी चाहिए। मैं यह सारा लेना चाहता हूँ।’

‘कहां ले जाओगे ?’

‘साथ ले जाऊंगा।’

‘कब ले जाओगे ?’

‘जब यहां से जाऊंगा।’

‘तुम भोले हो, कुछ भी साथ में नहीं चलेगा।’

कैसे नहीं चलेगा ? मैं इन सबको ले जाऊंगा। क्या आप जानते हैं--दूध कौन सा है, दधि और घी कौन सा है ?

‘तुम किस दूध, दधि और घी की बात कर रहे हो ?’

**ज्ञान दुग्धं दधिः श्रद्धा धृतं तच्चरणं स्मृतम्**--ज्ञान मेरा दूध होगा, श्रद्धा दधि होगी और चरित्र मेरा घी होगा।

ज्ञान, दर्शन, चरित्र--तीनों एक ही चीज हैं। ज्ञान को जमाओगे तो गाढ़ी श्रद्धा बन जाती है, उसका सार है--आचरण। व्यवहार में हमें विभाजित प्रतीत होते हैं। निश्चय नय का काम है--एक कर देना, द्वैत में अद्वैत स्थापित करना। यदि गोरस कहें तो दूध, दही और घी--तीनों एक शब्द में आ गए।

**अल्प वेदना : अल्प कर्म**

मृगापुत्र ने कहा--नाना प्रकार के जो भाव हैं, वह मेरा भोज्य होगा। आप मुझे स्वीकृति दें, मैं बहुत बड़ा सम्बल साथ में लेकर जाऊंगा। मुझे कोई कठिनाई नहीं होगी। मैं जहां जाकर पड़ाव करूंगा, वहां कर्म और वेदना न्यूनतम होगी। पाथेय लेकर जाने वाला व्यक्ति भूख-प्यास से पीड़ित नहीं होता। वह आराम से जंगल को काट देता है जैसे ही मैं अगले जन्म में जाकर जहां पड़ाव करूंगा वहां मेरे कर्म भी कम होंगे और वेदना भी कम होगी।

यह जीवन की सफलता का आध्यात्मिक सूत्र है। वह मनुष्य जीवन सफल और आदर्श जीवन माना जा सकता है, जिसमें कर्म अल्प और वेदना अल्प होती है। वह जीवन अच्छा नहीं माना जा सकता, जिसमें कर्म बहुत होते हैं। वे कर्म संस्कार आदमी

को भटकाते हैं। आज के सन्दर्भ में हम विचार करें। बहुत अपराध, हिंसा और तनाव—ये क्यों हैं ? इसका कारण है—अल्प कर्म जीवन नहीं है।

### संबल है धर्म

कर्म का एक मतलब है प्रवृत्ति। कर्म का एक अर्थ है—अपना किया हुआ अर्जित संस्कार, अपने अर्जित कर्म पुद्गल। दोनों दृष्टियों से विचार करें। जिसके कर्म ज्यादा होते हैं, वह बहुत दुःखी होता है और जिस व्यक्ति में प्रवृत्तियां बहुत होती हैं, वह भी दुःखी होता है। वह कभी मानसिक तनाव से मुक्ति नहीं पा सकता। जितना कर्म उतनी ही वेदना। अवेदना का जीवन जीने के लिए आवश्यक है कर्म का अल्पीकरण। वेदना में भी कमी तभी संभव है जब जीवन में कर्म कम होंगे, प्रवृत्ति कम होगी।

मृगापुत्र ने कहा—माता-पिता ! मैं अब धर्म की साधना करना चाहता हूँ। धर्म ही इस दीर्घ यात्रा का एक मात्र संबल है।

आज धर्म को भी एक ऐसे मिश्रण में मिला दिया कि वह भी शुद्ध नहीं है, कोरा घोल बन गया। कभी राजनीति से जोड़ दिया, कभी परलोक से जोड़ दिया, कभी समाज से जोड़ दिया। धर्म को शुद्ध मूल रूप में बहुत कम समझा जाता है।

### दार्शनिक दृष्टि

जैन साहित्य का वर्गीकरण किया गया, उसे चार भागों में बांटा गया--

१. द्रव्यानुयोग
२. चरणकरणानुयोग
३. गणितानुयोग
४. धर्म कथानुयोग

यह एक वैज्ञानिक वर्गीकरण है।

हम द्रव्यानुयोग की दृष्टि से धर्म पर विचार करें। द्रव्यानुयोग हमारा दार्शनिक दृष्टिकोण है, तत्व-विद्या का दृष्टिकोण है। धर्म क्या है ? धर्म मूल द्रव्य नहीं है। मूल द्रव्य है, आत्मा-जीव। धर्म केवल पर्याय है, इसलिए देहधारी अन्नदमी धर्म करता है, जैसे ही वह विदेही बना, धर्म भी समाप्त हो गया। जो मुक्त आत्मा-परमात्मा बन गया, उसके लिए कोई धर्म नहीं है, क्योंकि जो पर्याय था, वह समाप्त हो गया।

### आचार-शास्त्रीय दृष्टि

आचारशास्त्रीय दृष्टि से विचार करें। प्रत्येक व्यक्ति अच्छा जीवन जीना चाहता है। अच्छा जीवन जीने के लिए अपनी मानसिक, वाचिक और कायिक प्रवृत्तियों पर संयम करना, उनका नियमन करना जरूरी होता है। प्रवृत्तियों का नियंता है धर्म। यह है आचारशास्त्रीय स्वरूप।

## गणितीय दृष्टि

गणितानुयोग में धर्म के अनेक रूप बन जाते हैं। धर्म का एक प्रकार है—वीतरागता। आत्मा का जो वीतराग परिणमन है, उसका नाम है धर्म। धर्म के दो प्रकार हैं—श्रुत धर्म और चारित्र धर्म। धर्म के तीन प्रकार हैं—स्वाध्याय, ध्यान और तपस्या। धर्म के चार प्रकार हैं—ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप। संख्या के आधार पर धर्म के असंख्य प्रकार किए जा सकते हैं।

## धर्म-कथा

धर्म कथानुयोग की दृष्टि से विचार करें तो हमारे सामने अर्हन्नक का प्रसंग आएगा। अर्हन्नक व्यापारी था। वह जलपोत में व्यापार करने जाता। एक बार वह बहुत से व्यापारियों के साथ समुद्र में यात्रा कर रहा था। एक आकृति आसमान में उभरी। उसने कहा—अर्हन्नक ! तुम धर्म को छोड़ दो वर्ना मैं तुम्हारा जहाज डुबो दूंगा। सब लोग कांपने लगे। सबने अर्हन्नक को समझाया—तुम कह दो कि मैं धर्म को छोड़ता हूं। अर्हन्नक ने कहा—धर्म मेरी आत्मा है, मेरी चेतना है। मैं अपनी चेतना को छोड़ नहीं सकता। धर्म कोई चोला नहीं है, जिसे गर्मी लगी तो उतार कर रख दिया। यह तो शाश्वत चेतना है, मैं अपनी चेतना को कभी छोड़ नहीं सकता। उस आकृति ने जहाज को अघर में उठा लिया। सब लोग कांपने लगे पर अर्हन्नक शान्त बैठा था। देव ने कहा—अर्हन्नक ! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूं। तुम मेरी यह तुच्छ भेंट—कुण्डल युगल स्वीकार करो।

## महत्त्व है स्वरूप का

धर्म आत्मा का स्वरूप है। जिन्होंने कथाओं के माध्यम से धर्म के स्वरूप को समझा है, वे यह मानते हैं—धर्म कोई बाहरी आरोपण नहीं है, थोपा हुआ नहीं है धर्म कोई कृत नियम नहीं है। धर्म वास्तव में आत्मा का स्वभाव है। एक व्यवस्था होती है और एक धर्म। व्यवस्था का आरोपण होता है पर धर्म का आरोपण नहीं होता। अंगों का आरोपण हो सकता है, आत्मा का आरोपण कभी नहीं हो सकता। शरीर के एक-एक अंग का प्रत्यारोपण किया जा सकता है किन्तु क्या किसी के प्राण का भी प्रत्यारोपण किया जा सकता है ? धर्म कोई प्रत्यारोपण का तत्व नहीं है, वह ध्रुव, नियत और शाश्वत है। वह है आत्मा की पवित्रता, वीतरागता। जैन दर्शन में धर्म पर विचार किया गया। चाहे धर्म का पहला बिन्दु है, चाहे धर्म का अंतिम बिंदु है, दोनों के स्वरूप में कोई अन्तर नहीं है। पहला बिन्दु है—एक बूंदी वीतरागता और अंतिम स्वरूप है पूरा लड्डू वीतरागता। बूंदी का भी वही स्वाद है और लड्डू का भी वही



मिठास है। आकार बड़ा-छोटा है, उसका महत्व नहीं है। महत्व है स्वरूप का। भगवान महावीर ने जो धर्म का स्वरूप बताया, उसका प्रथम बिन्दु है--वीतरागता और उसका अंतिम बिन्दु भी है--वीतरागता। मात्रा का भेद तो हो सकता है, स्वरूप में अन्तर नहीं आ सकता।

### चार दृष्टियाँ

ये चार वर्गीकरण हमारे सामने हैं--

१. द्रव्यानुयोग - दार्शनिक दृष्टि
२. गणितानुयोग - विस्तार दृष्टि
३. चरणकरणानुयोग - आचारशास्त्रीय दृष्टि
४. धर्मकथानुयोग - घटनापरक दृष्टि, जीवन परक दृष्टिकोण।

इन सारी दृष्टियों की मीमांसा से धर्म का जो निखरा हुआ रूप हमारे सामने आएगा, वह बिल्कुल अलौकिक होगा।

### अटल निश्चय

मृगापुत्र ने कहा--माता-पिता ! अब आप क्यों देरी कर रहे हैं ? आपकी कृपा से मुझे जाति स्मृति हो गई है। मैं पूर्व जन्मों को साक्षात् कर रहा हूँ, मेरी दृष्टि पारदर्शी हो गई है। उसका जो निर्णय होगा, उसे आप बदल नहीं सकते। मृगापुत्र का यह स्वर उसके अटल निश्चय को अभिव्यक्त कर रहा था। माता-पिता उसे निश्चय से न रोक पा रहे थे और न ही हटा पा रहे थे। जब व्यक्ति किसी निश्चय पर पहुँच जाता है तब कोई भी शक्ति उसे विचलित नहीं कर सकती। उसका निश्चय स्पष्ट था, पथ स्पष्ट था और पाथेय उसे प्राप्त था। इस स्थिति में माता-पिता के सामने उसको स्वीकृति देने के सिवाय विकल्प ही नहीं था लेकिन वे स्वीकृति देने से पूर्व एक परीक्षण और करना चाहते थे। मृगापुत्र इसके लिए भी प्रस्तुत था। इसका जो परिणाम आएगा, वह प्रेय ही नहीं, श्रेय भी है।

## अचिकित्सा ही चिकित्सा

माता-पिता और मृगापुत्र के बीच संवाद आगे बढ़ा। माता-पिता यह निश्चय कर चुके थे--निषेध नहीं करना है। पिता ने कहा--वत्स ! तुम्हारा छंद है तो तुम मुनि बनो। छंद शब्द मराठी भाषा में बहुत प्रचलित है। आचार्य भिक्षु ने 'छंद' शब्द का बहुत प्रयोग किया है। तुम्हारा छंद है, तुम्हारी इच्छा है, तुम मुनि बनो पर इस बात पर ध्यान दो--यह श्रामण्य में जो निष्प्रतिक्रमता है, वह बहुत दुष्कर है। तुम जानते हो--शरीर में कभी बीमारी हो सकती है। जब शरीर में बीमारी होती है, तब कितनी पीड़ा और कितना दर्द होता है। श्रामण्य का यह नियम है--मुनि चिकित्सा न कराए। एक और तुम इतने सुकुमार, हो दूसरी ओर रोग हो जाएगा तो चिकित्सा नहीं करानी है। इस स्थिति में तुम कैसे सहन कर पाओगे ? इस बात पर तुम गहराई से चिन्तन करो।

माता-पिता ने एक बड़ा भय दिखा दिया। रोग आए और व्यक्ति चिकित्सा न करे, यह कम संभव है।

### प्रश्न चिकित्सा का

मृगापुत्र ने माता-पिता के कथन को अवधानपूर्वक सुना। वह उस स्थिति में पहुंच चुका था, जहां यह बात विभीषिका नहीं बन सकती थी। सामान्य आदमी के लिए रोग भय का कारण बन जाता है पर मृगापुत्र सामान्य भूमिका से परे पहुंच चुका था। मृगापुत्र बोला--आपने ठीक कहा--मुनि को चिकित्सा नहीं करानी है। आप इस बात पर भी सोचें--जंगल में कितने पशु हैं, आकाश में कितने पंछी हैं। वे जब बीमार होते हैं तब उनकी चिकित्सा कौन करता है ? कौन सा डाक्टर उन्हें दवा देता है ? मैं भी इसी प्रकार मृगचर्या करूंगा। मुझे मृगचारिता के लिए प्रस्थान की अनुमति दें। मैं ऐसा ही जीवन जीऊंगा। जब भी कोई बीमारी आएगी, उसे शान्त भाव से सहूंगा। बीमारी ठीक होगी तो भिक्षा के लिए जाऊंगा, भिक्षा ग्रहण करूंगा और भोजन कर लूंगा। अन्यथा कुछ भी नहीं खाऊंगा।

सो बितम्मापियरो! एवमेयं जहाफुडं।  
 पडिकम्मं को कुणई, अरण्णे मियपक्खिणं॥  
 एगभूओ अरण्णे वा, जहा उ चरई मिगो।  
 एवं धम्मं चरिस्सामि, संजमेण तवेण य॥  
 जया मिगस्स आयंको, महारण्णम्मि जायई।  
 अच्छंतं रुक्खमूलम्मि, कोणं ताहे तिगिच्छई॥  
 को वा से ओसहं देई ? को वा से पुच्छई सुहं ?  
 को से भत्तं च पाणं च, आहरित्त पणामए ?

### प्राकृतिक चिकित्सा : बीज मंत्र

मृगापुत्र को प्राकृतिक चिकित्सा का बीज-मंत्र मिल गया। यह अचिकित्सा ही चिकित्सा है। चिकित्सा का सामान्य बोध है—औषध द्वारा चिकित्सा करना, शल्य क्रिया आदि के द्वारा चिकित्सा करना। प्राकृतिक साधनों के द्वारा चिकित्सा करना भी चिकित्सा है, पर वह चिकित्सा होते हुए भी अचिकित्सा है। वह चिकित्सा है पर उसे चिकित्सा नहीं माना जाता है। वह चिकित्सा है प्राकृतिक।

हम यह देखें—प्राकृतिक चिकित्सा शुरू कैसे हुई ? उसका मंत्र कहां से मिला? एक डाक्टर जंगल में गया। उसने देखा—पानी के स्रोत के पास एक हिरणी आई, अपनी टांग को उस स्रोत के जल से सींचने लगी। कुछ देर बाद वह वापस चली गई। डाक्टर ने देखा—हिरणी लंगड़ाती हुई चल रही है, उसके पैर में गहरा जखम है। वह दो दिन तक निरन्तर आती रही, जखमी जिसे पर जल का सिंचन करती रही। दो दिन में वह बिल्कुल स्वस्थ हो गई। डाक्टर को रहस्य उपलब्ध हो गया—उसने पानी से अपनी चिकित्सा की है। डाक्टर ने पानी की चिकित्सा के प्रयोग शुरू किये और प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति का विकास हो गया।

### मूल बिन्दू कहां है

जर्मनी में इस चिकित्सा पद्धति का विकास हुआ और यह इस शताब्दी की बात है। प्राचीन साहित्य में मिट्टी की चिकित्सा, जल चिकित्सा, उपवास चिकित्सा—इन सबका वर्णन मिलता है। जैन साहित्य में उपवास चिकित्सा का बहुत सुन्दर विवेचन है। आज पाश्चात्य विद्वानों ने उपवास चिकित्सा पर बहुत साहित्य लिखा है, उसका बहुत महत्त्व बताया है। गांधीजी ने भी उपवास चिकित्सा पर लिखा। उसके प्रयोग किए और कराए। हमें इसका वैचारिक इतिहास खोजना चाहिए। इस विचार का मूल बिन्दु कहां है ? प्राचीन जैन साहित्य में उपवास चिकित्सा का वर्णन उपलब्ध है। बृहत्कल्प भाष्य में इसका विस्तृत विवेचन है।

## चिकित्सा की पद्धति

प्रश्न है--कोई मुनि बीमार हो जाए तो क्या करें ? इसकी दो पद्धतियां रही हैं। एक यह पद्धति रही--चिकित्सा न करे। दूसरी यह पद्धति रही--चिकित्सा करे। एक मुनि बीमारी को सहन कर लेता है और एक मुनि बीमारी को सहन नहीं कर पाता। जो सहन करता है, वह भी चिकित्सा करे और जो सहन न करे, वह भी चिकित्सा करे। चिकित्सा सबके लिए मान्य है। वह चिकित्सा है उपवास की। हजारों वर्ष पुराना विधान रहा--शरीर का शोषण करो, शरीर को सुखाओ। कहा गया--

*शुष्यतः त्रीणि शुष्यन्ति, चक्षुरोगो ज्वरो व्रणः।*

शरीर का शोषण और विशोषण होता है तो तीन रोग सूख जाते हैं--चक्षु रोग, ज्वर और व्रण।

### संदर्भ ज्वर का

जब ज्वर आ जाए तो क्या करना चाहिए ? इस संदर्भ में यह भी कहा गया--ज्वर आने पर कम से कम अट्ठम तप (तीन दिन का उपवास) करना चाहिए। हो सके तो ज्यादा करे पर कम से कम इतना तो करना ही चाहिए।

प्रश्न हुआ--यदि व्यक्ति तेला करने में असमर्थ है तो क्या किया जाए ? तेला पूरा न कर पाए, एक दिन उपवास करते ही पारणा कर ले तो क्या करें ? उसके लिए विधान किया गया--एक सप्ताह तक थोड़ा गरम पानी और उसमें अन्न मिलाकर पिला दिया जाए। दूसरे सप्ताह तक उस मात्रा को कुछ बढ़ाया जाए। इस प्रकार तीन-चार या पांच सप्ताह तक उसे लंघन कराया जाए। केवल गरम पानी और थोड़ा-सा अनाज। धीरे-धीरे अनाज का हिस्सा बढ़ाया जाए। चार-पांच सप्ताह बाद पर्याप्त भोजन दिया जाए।

यह उपवास चिकित्सा की पद्धति, जो प्राचीन काल से चल रही है, बहुत महत्वपूर्ण है। आज भी इसका बहुत प्रयोग किया जा रहा है। हैदराबाद, बैंगलोर, गोरखपुर आदि नगरों में प्राकृतिक चिकित्सालय चल रहे हैं। विदेशों में भी ऐसे अनेक केंद्र हैं, जहां प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा उपचार किया जाता है। प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति का एक रूप है--उपवास। मृगापुत्र के उत्तर में इसका बीज उपलब्ध होता है।

**बीमारी का कारण**  
मृगापुत्र ने कहा--हरिण आदि पशुओं को रोग आता है। जब तक ठीक नहीं हो जाते, तब तक एक स्थान पर बैठे रहते हैं। मैं रोग आने पर वैसा ही करूंगा। बीमारी अपने आप मिट जाएगी।

बीमार होने का प्रमुख कारण है—पाचन तंत्र की गड़बड़ी। पश्चिमी जगत् में यह कहावत प्रचलित है। बीमारी शुरू होती है पाचन-तंत्र में। बीमारी का पहला बिन्दु है—पाचन तंत्र। यदि पाचन तंत्र ठीक है तो सारी बीमारियाँ अपने आप ठीक हो जाएंगी। उपवास एक उपचार है पाचन तंत्र को सुधारने का। जो आदमी खाता ही चला जाता है, कभी पेट को विश्राम नहीं देता, वह पाचन तंत्र को बीमार बना देता है। जो मोटर निरन्तर चलाई जाती है, पांच-सात घण्टे तक लगातार चलती रहती है, उसका इंजन गर्म हो जाता है, समस्या पैदा हो जाती है। मोटर को विश्राम देना होता है। एक घोड़े को निरन्तर दौड़ाया जाए तो वह भी थक जाए। क्या पेट का इंजन गर्म नहीं होता ? क्या पाचनतंत्र थकता नहीं है ? वह थकता है। कम से कम उसे रिपेयरिंग का अवसर तो मिले, सफाई करने का अवकाश तो मिले। वह मिलता नहीं है तो बीमारी आ टपकती है। लंघन उपवास एक महत्त्वपूर्ण पद्धति है। जो विजातीय तत्व एकत्रित हो गए हैं, वह उनको निकलने का अवसर देती है। विजातीय द्रव्यों के निष्कासन का एक महत्त्वपूर्ण उपाय है उपवास।

### मानसिक चिकित्सा

एक है मानसिक चिकित्सा की पद्धति। आज बड़े बड़े हॉस्पिटलों में मानसिक चिकित्सा का विभाग जुड़ा हुआ है। लेकिन यह उस मानसिक चिकित्सा की बात है, जो बहुत पुरानी है। यदि कोई मानसिक बीमारी हो जाए तो क्या करें ? यह भी प्राकृतिक चिकित्सा का एक अंग है। वह चिकित्सा, जिसमें देवा का प्रयोग न करना पड़े, प्राकृतिक चिकित्सा है। इस दृष्टि से मानसिक चिकित्सा की प्राचीन विधि को देखें। मन की तीन अवस्थाएँ हैं—दृप्त, क्षिप्त और आविष्ट। एक व्यक्ति मन दृप्त हो गया। उसमें उन्माद पैदा हो गया। प्रश्न आया—दृप्त अवस्था की चिकित्सा कैसे की जाए ? कहा गया—दृप्त अवस्था की चिकित्सा अवज्ञा और अपमान से की जाए। जो मानसिक उन्माद से ग्रस्त है, उसकी अवज्ञा की जाए, उसे अपमानित किया जाए तो वह ठीक हो जाएगा। क्षिप्त मानसिक रुग्णता की दूसरी अवस्था है। जो व्यक्ति क्षिप्त है, उसका सम्मान करना चाहिए। सम्मान के द्वारा उसकी चिकित्सा की जा सकती है। एक व्यक्ति आविष्ट है वह चाहे वायु से आविष्ट है या भूत और यक्ष से आविष्ट है। उसकी चिकित्सा अपमान और सम्मान—दोनों से की जाए।

### भाव चिकित्सा

एक है भाव चिकित्सा की पद्धति। बहुत सारी बीमारियाँ भावना के कारण होती हैं। भाव परिवर्तन के द्वारा उसकी चिकित्सा की जा सकती है। मेडिकल साईंस का मत है—निषेधात्मक भाव आते हैं तो हमारी जैविक रासायनिक श्रृंखला गड़बड़ा जाती

है। हमारी जो प्राणशक्ति है, रोग प्रतिरोधक क्षमता है, वह कमजोर हो जाती है। निषेधात्मक भाव से हमारी रोग प्रतिरोधक प्रणाली, जैविक शृंखला गड़बड़ाती है तो वह विधायक भाव से स्वस्थ कैसे नहीं होगी। यह बहुत सीधी सी बात है—यदि क्रोध करने से फोड़ा होता है तो क्षमा करने से वह ठीक कैसे नहीं होगा ? मन में घृणा और ईर्ष्या का भाव आया तो पेटिक अल्सर की बीमारी हो गई। मैत्री की भावना से वह ठीक कैसे नहीं होगी ? मेडिकल साईंस आज इस बिन्दु पर पहुंच गया है—कौन से निषेधात्मक भाव से कौन-सी बीमारी पैदा होती है ? और वह बीमारी कैसे मिटती है ? एक पुस्तक है—‘प्रेक्षाध्यान : अमृत पिटक’ उसमें भावात्मक चिकित्सा के प्रयोग निर्दिष्ट हैं। जापान और अमेरिका में भी इस प्रकार का साहित्य निकल रहा है, जिसमें भाव चिकित्सा के प्रयोगों का विश्लेषण है। यदि अमुक प्रकार के भाव से अमुक प्रकार का रोग उत्पन्न होता है तो अमुक प्रकार के भाव से उस रोग का शमन हो सकता है। यह सुनी सुनाई या किसी धर्म की ही बात नहीं है, आज के चिकित्सा विज्ञान से प्रमाणित तथ्य है।

### आसन चिकित्सा

आसन चिकित्सा भी प्राकृतिक चिकित्सा है। बाहर से कोई दवा लेने की जरूरत नहीं पड़ती। आसन के द्वारा बीमारियों का शमन होता है। जो बीमारियां दवाओं के द्वारा साध्य नहीं मानी जाती, वे आसनों से मिट जाती हैं। एक व्यक्ति ने कहा—सुगर की चिकित्सा नहीं हो सकती। सिवाय इंसुलिन के कोई उपाय नहीं है। पैक्रियाज गड़बड़ा गया तो उसको ठीक करने का कोई साधन नहीं। आज आसन के द्वारा सुगर की बीमारी का इलाज किया जाता है। अनेक स्थानों पर शिविर लगते हैं और उनमें बहुत रोगी स्वस्थ हो जाते हैं। मद्रास में डाक्टरों ने कई प्रकार के रोगों के समाधान के लिए अनेक शिविर लगाए। उन्होंने प्रमाणित किया—अमुक प्रकार की बीमारियां अमुक-अमुक प्रकार के आसनों से बिल्कुल ठीक हो जाती हैं। डाक्टरों ने सर्वांगासन, विपरीतकरणी आसन, हलासन, शशांकासन आदि अनेक आसनों को रोगों के समाधान में महत्वपूर्ण माना है।

### समस्या का हेतु

उपवास चिकित्सा, मानसिक चिकित्सा, भाव चिकित्सा, आसन चिकित्सा—ये ऐसी चिकित्सा विधियां हैं, जिनसे रोगों का इलाज संभव है। प्राणायाम चिकित्सा भी इसी प्रकार की एक चिकित्सा है। सारी प्राकृतिक चिकित्सा की विधियां जिनके पास है, उन्हें किसी डाक्टर या वैद्य के पास जाने की जरूरत नहीं पड़ती। यह प्राथमिक चिकित्सा है। यदि इनसे समाधान न मिले तो डाक्टर या वैद्य का परामर्श लिया जा

सकता है। मृगापुत्र के मन में यह भावना रही होगी इसलिए उसने पिता से कहा—आप चिंता न करें। मेरी चिकित्सा मैं स्वयं कर लूंगा। इस स्वर के पीछे उसका आत्म-विश्वास बोल रहा था। जिस व्यक्ति का आत्म-विश्वास जाग जाता है और यह सूत्र मिल जाता है—मैं अपनी बहुत सारी समस्याओं का समाधान कर सकता हूँ, उस व्यक्ति की समस्याएं सुलझ जाती हैं। समस्याएं वहां उलझती हैं—जहां आत्म-विश्वास सो जाता है। जब आत्म विश्वास की कमी होती है तब व्यक्ति अपने ही प्रतिबिम्बों से लड़ना शुरू कर देता है। आस्था और आत्म-विश्वास की कमी के कारण हम मानसिक प्रतिबिम्ब बनाते हैं और उन प्रतिबिम्बों से ही लड़ना शुरू कर देते हैं। ध्यान और सामायिक का सूत्र यही है—मानसिक प्रतिबिम्ब कम बनाओ या मत बनाओ। मानसिक प्रतिबिम्बों को खड़ा मत करो। मन के खेल मत खेलो। वस्तुतः यथार्थ की समस्याएं हमारे सामने कम होती हैं, अधिकांश समस्याएं मानसिक बिम्बों से उत्पन्न होती हैं।

**जादुई टब**

एक किसान के खेत में एक जादुई टब निकला। बड़ा विचित्र टब था। टब खाली था। किसान ने उसमें एक चीज डाली। फिर उसे निकाला। वही चीज निकलती चली गई। उस एक ही चीज की इक्यासी आकृतियां निकलती चली गई। किसान ने सोचा—बड़ा विचित्र काम है—एक डालो और इक्यासी प्राप्त करो। किसान का लोभ बढ़ा। उसने अनेक वस्तुएं बनानी प्रारंभ कर दी। आसपास चर्चा फैलने लगी। चर्चा फैलते-फैलते जमींदार तक पहुंच गई। जमींदार ने सोचा—वह सब मेरी जमीन में निकला है इसलिए उस पर मेरा अधिकार है। जमींदार ने किसान से वह जादुई टब छीन लिया। जमींदार उस टब से अनेक चीजें बनाने लगा। इस बात का राजा को पता चला। राजा ने टब पर अपना अधिकार जमा लिया। राजा ने अपना भण्डार भरना शुरू कर दिया। उसमें एक मोती डाला, इक्यासी मोती निकल आए। एक हीरा और माणक डाला, इक्यासी हीरे और माणक आ गए। राजा ने सोचा—यह बड़ी गजब की माया है। एक डालो और इक्यासी निकाल लो। आखिर इसमें है क्या ? मुझे इसके भीतर जाकर देखना चाहिए। राजा टब के भीतर घुसा। वह बाहर निकला और उसके साथ एक के बाद एक राजा निकलते चले गए। इक्यासी राजाओं की एक फौज खड़ी हो गई। सिंहासन था एक और राजा हो गए इक्यासी। सिंहासन पर कौन बैठे ? इस बात को लेकर लड़ाई शुरू हो गई। वह लड़ाई इतनी गहरी हुई कि उसमें सब राजा एक-दूसरे के हाथों मारे गये।

एक आवाज आई—जो जादुई टब से खेलता है, जो अपने मन के प्रतिबिम्बों से लड़ता है, उसकी गति है विनाश।

## दो चिकित्सा सूत्र

आदमी भी अपने प्रतिरूपों से लड़ता है। वह अपने प्रतिरूप बनाता है और उनसे लड़ते-लड़ते समाप्त हो जाता है। इसलिए मन से परे जाना आवश्यक होता है। जिसमें अपना विश्वास नहीं जागता, आत्मविश्वास नहीं जागता, वह केवल प्रतिरूपों से लड़ता है। मृगापुत्र का आत्मविश्वास जाग उठा। उसने पिताजी से कहा—तात ! आप चिन्ता न करें। मैं धर्म की साधना करूंगा। मुझे संयम और तप—ये दो साधन मिल गए हैं।

संयम और तप—ये दो चिकित्सा के सूत्र हैं। जो व्यक्ति संयम और तप के द्वारा अपनी चिकित्सा का सूत्र पा लेता है, वह अनेक मानसिक स्थितियों को सुलझा लेता है, शारीरिक दुविधाओं को मिटा लेता है। असंयम और अतप से अनेक समस्याएं पैदा होती हैं। आज अध्यात्म का समाधान मान्य और प्रतिष्ठित होता चला जा रहा है। धर्म के क्षेत्र में केवल यह कहा जाता है—संयम और तप के द्वारा समस्याओं को सुलझाया जा सकता है किन्तु आज विज्ञान भी इसी भाषा में बोल रहा है। विज्ञान का क्षेत्र केवल औषध पर निर्भर नहीं है। प्रश्न आया—इतनी तेज दवाइयां जा रही है, उससे जीवन-शक्ति नष्ट हो रही है। दवा की प्रतिक्रिया हो रही है। इस स्थिति में खोज चली—ऐसा भी कोई उपाय है, जिससे रोग भी मिट जाए और इन भयंकर औषधियों से पिण्ड छुड़ाया जा सके। इस सन्दर्भ में ये सारे विकल्प सुझाए जा रहे हैं। पहले किसी भी हॉस्पिटल में आसन नहीं कराए जाते थे। लेकिन आज आसन, प्राणायाम और ध्यान के प्रयोग भी किये जा रहे हैं। यह सारा विकल्प की खोज का परिणाम है।

## चिकित्सा : विकल्प

हम केवल बाहर ही बाहर न खोजें, अपने भीतर भी खोजें। हमारा कर्म क्या होना चाहिए ? हमारी जीवन शैली क्या होनी चाहिए ? हम किस भाषा में सोचें ? मृगापुत्र की भाषा है—पशु या हरिण की तरह जंगल में रहूंगा और बीमार पड़ने पर चिकित्सा नहीं करूंगा। प्रत्येक व्यक्ति इस भाषा में नहीं सोच सकता। वह इस भाषा में सोचें या चिकित्सा की भाषा में? सबसे पहला विकल्प यही होना चाहिए—चिकित्सा न कराऊं। यदि यह संभव नहीं है तो फिर दूसरा विकल्प यह होना चाहिए—अपनी चिकित्सा में स्वयं करूं। यदि वह आसन, उपवास या लंघन से संभव है तो उसका प्रयोग करूं। यदि बीमारी का कारण भाव है तो भाव चिकित्सा करूं। जप के द्वारा चिकित्सा करूं। जप भी चिकित्सा की एक प्रणाली है। प्राचीन जैन आचार्यों ने



लिखा—अर्हम् का जप करने वाला अग्निमांघ, श्वास आदि अनेक बीमारियों का समाधान कर लेता है। तीसरा विकल्प है—वैद्य या डॉक्टर को दिखाऊं। विधान किया गया—पहले उपवास से चिकित्सा करे। उससे सम्भव न हो तो वैद्य या डॉक्टर को दिखाए, दवा ले। यह भी बताया गया—वैद्य के पास कैसे जाए, कैसे दिखाएं, वैद्यजी जो औषध बताए, उसका सेवन कैसे करे। दवा में भी हम विवेक का सहारा लें। हम यह सोचें—दवा लेना आवश्यक है पर यदि सामान्य औषध से काम हो जाए तो तेज दवा न लूं। यदि आयुर्वेदिक दवा से समाधान होता हो तो तेज डाक्टरी दवा न लूं। यह अंतिम विकल्प है। इस हथियार का उपयोग पहले ही क्षण में न करें। कुशल योद्धा अंतिम हथियार का उपयोग कभी पहले क्षण में नहीं करता। हम अंतिम विकल्प को पहला विकल्प न बनाएं।

### संकल्प मृगचर्या का

मृगापुत्र से अत्यन्त विनम्रता के साथ माता-पिता से निवेदन किया—मैं संयम और तप के द्वारा चिकित्सा करूंगा। इसलिए आप मुझे मृगचारिका की अनुमति दें। माता-पिता ने सोचा—मृगापुत्र ! अपने संकल्प पर दृढ़ है ! इसे अनुमति देना ही श्रेयस्कर है। न यह रुकने वाला है और न इसे रोकना चाहिए। माता-पिता ने सहर्ष अनुमति प्रदान कर दी—वत्स ! तुम्हारी जैसी इच्छा है, वैसा करो।

*मिगचरियं चरिस्सामि, एवं पुत्ताः जहासुहं।*

*अम्मा पिज्जहिं अणुन्नाओ, जहाय उवहिं तओ॥*

माता-पिता ने कितनी स्वतंत्रता दी और मृगापुत्र ने कितनी विनम्रता से स्वीकृति ली। वस्तुतः ये दोनों बातें दिशा दर्शक हैं। मृगापुत्र का यह प्रसंग दीक्षा देने वाले के लिए, दीक्षा लेने वाले के लिए और दीक्षा की प्रेरणा देने वाले के लिए भी मननीय है। यदि इसका सम्यग् मनन किया जाए तो एक स्वस्थ प्रणाली उपज सकती हैं।

### समत्व की साधना

मृगापुत्र ने मुनि धर्म का जो पालन किया है, वह उसके उदात्त चरित्र का प्रमाण है। मृगापुत्र ममत्व रहित, अहंकार रहित, निर्लेप, गौरव को त्यागने वाला और सब स्थितियों में समभाव की साधना करने वाला बन गया। वह लाभ-अलाभ, सुख-दुःख, मान-अपमान या जीवन-मरण—सबमें सम बन गया।

*निम्ममो निरहंकारो, निस्संगो वत्तगारवो।*

*समो य सच्च भूएसु, तसेसु थावरेसु य॥*

*लाभालाभे सुहे दुखे, जीविए मरणे तहा।*

*समोनिंदापसंसासु, तहा माणावमाणओ॥*

बहुत कठिन है इन परिस्थितियों में सम रहना। जिस व्यक्ति की आंतरिक चेतना जाग जाती है, प्रज्ञा जाग जाती है, वही इन स्थितियों में सम रह सकता है। जिसकी प्रज्ञा स्थित हो जाती है, वही इस प्रकार का जीवन जी सकता है।

### अतीत में लौटें

मृगापुत्र समत्व की उत्कृष्ट भूमिका में चला गया। जातिस्मृति से वैराग्य और समता का प्रारंभ हुआ और वह पूर्णता की अनुभूति में बदल गया। इसके बीच अनेक उतार-चढ़ाव आए, बाधाएं आईं, भय और प्रलोभन आए लेकिन मृगापुत्र को ये स्थितियां छू ही नहीं पाईं। इसका कारण था—मृगापुत्र ने भावना योग से अपने आपको भावित कर लिया। कोरा एकाग्रता या ध्यान उतना काम का नहीं होता, जितना वह भावना से जुड़कर बनता है। ध्यान शतक में साधक की बहुत सुन्दर अर्हता दी गई है—जो भावना से प्रभावित है, वह ध्यान का अधिकारी है। ज्ञान-भावना, दर्शन-भावना, चरित्र-भावना, वैराग्य-भावना—ये भावनाएं जिसके पुष्ट बन गईं, वस्तुतः ध्यान करने का अधिकारी वही है। मृगापुत्र ने इन भावनाओं से अपने आपको भावित कर लिया और उसने वह उपलब्ध कर लिया, जिसके लिए संकल्पबद्ध बना था।

*एवं नाणेण चरणेण दंसणेण तवेण य।*

*भावनाहि य सुद्धाहिं, सम्मं भावेतु अप्पयं॥*

मृगापुत्र का यह प्रकरण प्रत्येक व्यक्ति के लिए प्रेरक है। यदि हम अतीत में लौटने का प्रयत्न करें तो हमारा अतीत और भविष्य—दोनों उज्ज्वल हो सकते हैं। हमारे हाथ में वह सूत्र आ सकता है, जो वर्तमान का मार्ग-दीप बन जाए, भविष्य का आलोक-स्तंभ बन जाए।

## संवाद : नाथ और अनाथ के बीच

### संघर्ष-बीज

शिष्य ने जिज्ञासा की--भंते ! इस दुनिया में यह संघर्ष क्यों चलता है। यह आरोप और प्रत्यारोप क्यों चलता है ? एक कहता है--तू अज्ञानी है। एक कहता है--तू अज्ञानी है। एक कहता है--तू झूठा है। एक कहता है--तुम जानते ही नहीं। इस प्रकार का यह व्यवहार क्यों चलता है। इसका कारण क्या है?

आचार्य ने कहा--वत्स ! कारण क्या बताऊँ ! प्रकृति को मान्य यही है।

शिष्य ने कहा--प्रकृति को यही मान्य क्यों है ?

आदमी क्या करे ? प्रकृति में संघर्ष के बीज छिपे हुए हैं। मनुष्य की रचना ही ऐसी हो गई है कि उसमें संघर्ष, आरोप-प्रत्यारोप के बीज छिपे मिलते हैं। कारण यह है--भाव तो अदृश्य है, दिखाई नहीं देता और भाषा दृश्य है, सामने आती है। आधा तो दिखाई देता है और आधा दिखाई नहीं देता। यह है संघर्ष का बीज, जो प्रकृति में चारों तरफ बिखरा पड़ा है। यह भाषा और भाव का संघर्ष, यह दृष्टिकोण और भाषा का संघर्ष शायद मनुष्य जब से था तब से शुरू हुआ है और जब तक मनुष्य रहेगा तब तक चलेगा।

*अदृश्यो वर्तते भावो, भाषा दृश्या ततः स्फुटम्।*

*संघर्षबीजमाकीर्णं, प्रकृतौ किं सृजेज्जनः॥*

तुलसीदासजी ने लिखा--वाणी बोलती है उसके आंख नहीं है। आंख देखती है उसके वाणी नहीं है--गिरा अनयन नयन बिनु वाणी। प्रकृति की रचना में कितना अधूरापन है। जो बोलता है, वही देखता, जो देखता, वही बोलता तो शायद संघर्ष की संभावना बहुत कम हो जाती।

### जटिल प्रक्रिया

कितना जटिल तंत्र है हमारा। हम शब्द को कान से सुनेंगे, कान से सुनने के बाद मन उसको ग्रहण करेगा, पकड़ेगा, उसका संकलन करेगा। सुनने वाला एक है, संकलन करने वाला दूसरा है और निर्णय करने वाला तीसरा है। विवेक या बुद्धि

उसका निर्णय करेगी और फिर बोलने वाला चौथा है मुख। ये चार मिल गये—कान से सुना, मन ने उसको ग्रहण दिया और विवेक मस्तिष्क ने उसको एक अर्थ-बोध दिया, फिर वाणी ने उसे उच्चरित किया। इतना पूरा तंत्र मिलता है, तब एक कार्य निष्पन्न होता है। जहां एक के हाथ में शासन नहीं होता वहां संघर्ष तो होता ही है। कहा गया—अनेक हाथों में शासन होता है तो संघर्ष होना स्वाभाविक है। यह शायद लोकतंत्र के पहले लिखा गया है, आज की बात नहीं है। आज तो अनेक लोगों का शासन होता है। जहां अनेक हाथों में शासन होता है वहां क्या होता है, यह भी स्पष्ट है। यह हमारा सारा तंत्र है, जिसको कहते हैं, संभाग, परस्पर में विनिमय। संभाग होना एक बात है और एक दूसरे तक पहुंचना दूसरी बात है। इसकी इतनी जटिल प्रक्रिया है कि पूरी बात कभी पकड़ में नहीं आती। व्यक्ति क्या कहना चाहता है, हम कभी पकड़ नहीं पाते हैं इसीलिए किसी व्यक्ति के साथ न्याय नहीं होता। भाषा कभी न्याय नहीं कहती। बहुत सुन्दर लिखा गया—

*भाषा क्या है ? भावों का लंगडा सा अनुवाद।*

### भाव और भाषा की दूरी

भाषा भावों का कभी पूरा प्रतिनिधित्व कर नहीं सकती और यही संघर्ष का कारण बनता है। वही भाषा जब पत्र में लिखी जाती है तब और अधिक अनर्थ हो जाता है। भाव और भाषा में दूरी होती है और परस्पर पत्राचार चलता है, इसका अर्थ है—लड़ाई का एक गढ़ बनाना, किला खड़ा कर देना। एक व्यक्ति ने पत्र दिया। दूसरे ने उसका उत्तर दिया। फिर तीसरे ने उत्तर दिया और लड़ाई आगे बढ़ती चली गई। कई बार समस्या सुलझाने के बजाय उलझ जाती है। यदि पत्राचार को छोड़, आमने-सामने बैठकर बात की जाए तो समाधान निकल आए। जब दो व्यक्ति मिलते हैं, एक-दूसरे की भाषा को ही नहीं, भावों को भी पढ़ते हैं। संघर्ष तब मिटता है, जब व्यक्ति भाव से भाव को पढ़ना सीख जाए। जहां भाषा समाप्त हो जाए, मौन बन जाए, वहां समाधान मिलता है। शायद इसीलिए कहा गया—जहां गुरु बोलता है, वहां संशय का छेद नहीं होता। जहां गुरु मौन होता है, वहां संशय छिन्न हो जाता है।

*गुरोस्तु मौनमाख्यानं शिष्यास्तु छिन्नसंशयः* का बीज जुड़ा रहता है।

भाषा के साथ संघर्ष।

### मैं अनाथ हूँ

सम्राट् श्रेणिक उद्यान में क्रीड़ा करने के लिए आया। उसने देखा—एक पेड़ वे नीचे युवा मुनि खड़ा है। उसका सौन्दर्य जैसे बाहर झांक रहा था। श्रेणिक देखकर

आश्चर्य से भर गया। यह क्या? उससे रहा नहीं गया। सम्राट् मुनि की सन्निधि में आया, प्रणाम कर बोला—भते! आप तरुण हैं। अभी आप दीक्षित हो गए? अभी तो भोग भागने की अवस्था है। यह आपने क्या किया?

मुनि ने ध्यान मुद्रा को सम्पन्न किया। मुनि बोले—भैया क्या करूं। मुझे मुनि बनना पड़ा।

क्यों बने ?

अनाथ था इसलिए मुनि बन गया।

श्रेणिक ने देखा—अनाथ जैसा लगता तो नहीं है। सम्राट् ने कहा—भते! ऐसा नहीं लगता कि आप अनाथ हैं। आपका यह यौवन, आपका यह रूप, आपकी यह सम्पदा बतला रही है कि आप बहुत सम्पन्न परिवार के हैं, अनाथ तो नहीं हैं।

नहीं, नहीं मैं अनाथ ही हूँ और इसीलिए मैं मुनि बना हूँ।

**तुम भी अनाथ हो**

राजा ने मुनि की भाषा को सुना पर उसका अर्थ नहीं समझा, भाव नहीं समझा। भाव और भाषा के बीच दूरी रह गई।

सम्राट् ने कहा—भते! कोई बात नहीं। आज मैं आपका नाथ बनता हूँ। आप अनाथ थे इसलिए मुनि बने, लेकिन अब अनाथ नहीं हैं। आप मेरे महलों में चलें, आराम से रहें। मेरे पास सुख-सम्पदा की कोई कमी नहीं है।

राजा की यह भाषा मुनि को मान्य नहीं हुई। मुनि बोले—भाई! तुम भी कैसे आदमी हो? इतनी भी बात नहीं समझते कि तुम तो स्वयं अनाथ हो और मेरे नाथ बनने चले हो। पहले स्वयं को देखो, फिर नाथ बनने की बात सोचना। तुम स्वयं अनाथ हो, मेरे नाथ कैसे बनोगे ?

यही है भाव और भाषा का टकराव। यह संघर्ष बहुत चलता है। इस संदर्भ में भाव प्रेक्षा सबसे महत्वपूर्ण है। हम भाषा की पृष्ठभूमि को जानने के लिए भावों को पढ़ने का अभ्यास करें। उसके बिना यह टकराव शायद कभी मिटने वाला नहीं है।

**राजा का प्रतिवाद**

राजा का अहंकार फुफकार उठा। ढाई हजार वर्ष पहले का जमाना और उस समय का सम्राट् इतने वैभव, इतने बड़े राज्य का स्वामी। इस शब्द को कैसे सहन करता। यदि मुनि के स्थान पर कोई और होता तो उसका आक्रोश न जाने क्या परिणाम लाता? राजा ने सोचा—मुनि का कोई दोष नहीं है। मुझे जानता नहीं है। जब तक परिचय न हो भला कौन क्या करे ? यह अपरिचित है इसलिए अनाथ बता

दिया। अब मुझे परिचय दे देना चाहिए। आज तो अपना परिचय स्वयं देने की पद्धति चल रही है। राजा ने अपना परिचय देना शुरू कर दिया—भते! आप मुनि बन गये पर लगता है आप व्यवहार को नहीं जानते। दुनिया को आपने देखा नहीं है। क्या आपको पता है—मैं कौन हूँ? मेरे पास घोड़े हैं, हाथी हैं, आदमी हैं, यह नगर है। मैं बहुत बड़े राज्य का स्वामी हूँ। बड़े-बड़े प्रासाद हैं, विशाल अन्तःपुर है। इस राज्य का कण-कण मेरी आज्ञा में है। मैं अनाथ कैसे हुआ? भते! कर्म से कम इतना झूठ तो न बोलें? आप एक सम्राट् को अनाथ बता रहे हैं। इससे बड़ा क्या झूठ होगा?

**नाथ की परिभाषा**

अनाथी मुनि ने यह सुना। वे अपने आप में लीन थे। जो व्यक्ति अपने भीतर की आत्मा को, परमात्मा को जगा चुका होता है, वह निःस्पृह होता है। उसके स्पृहा नहीं होती, भय भी नहीं होता। मुनि बोले—सम्राट् श्रेणिक! मैंने तुम्हारा परिचय पा लिया। तुम एक बात ध्यान से सुनो—तुम अभी नाथ का अर्थ ही नहीं जान रहे हो। बड़े अज्ञानी राजा हो।

मुनि ने इतने बड़े राजा को अज्ञानी कह दिया, नहले पर दहला जैसा हो गया। कौन होता है नाथ? सम्राट् श्रेणिक ने जिज्ञासा की।

नाथ का अर्थ है—योगक्षेम विधाता। जो योग और क्षेम करने वाला है, वह नाथ है। तुम नाथ का अर्थ भी नहीं जानते और मेरे नाथ बनना चाहते हो। तुमने यह समझ लिया कि मैं गरीब घर का था। रोटियां खाने को नहीं मिलती थीं। घर में कुछ नहीं था। इसलिए मैं साधु बन गया। पर वस्तुतः ऐसा नहीं है।

आजकल बहुत लोग मिथ्या आरोप लगाते हैं। यह आरोपों की दुनिया है। आरोप से कभी बचा नहीं जा सकता। लोग कह देते हैं—ये बहुत सारी साध्वियां दीक्षित होती हैं। गरीब घरों की होती हैं, इनकी कोई शादी की व्यवस्था नहीं होती। माता-पिता निकाल देते हैं और वे संस्था में भर्ती हो जाती हैं। कैसी विडंबना!

मुनि बोले—इतने बड़े राजा होकर नाथ का अर्थ ही नहीं जानते?

राजा अवाक् रह गया, वह मुनि की तेजस्विता के सामने बोल ही नहीं सका। हाथ जुड़ गये। विनम्र स्वर में प्रार्थना की—महाराज! मैं नहीं जानता, कृपया आप बतला दें। मैं आपकी अनाथता को जानना चाहता हूँ।

### गाथा अनाथता की

मुनि ने अपनी सारी कहानी सुना दी। मैं एक धनी सेठ का बेटा हूँ। माता-पिता का बड़ा प्यार दुलार मिला। मेरी शादी भी हो गई। सुन्दर, सुशील और प्रिय पत्नी

का योग मिला। एक दिन अचानक आंख में पीड़ा हो गई। असह्य पीड़ा से मैं बैचेन हो उठा। इतनी भयंकर वेदना हुई कि मैं सहन नहीं कर सका। उस अवस्था में मेरे पिता ने दूर-दूर से वैद्यों को बुलाया, मेरी चिकित्सा करवाई। बहुत घन लगाया।

पिता ने नोलियों का मुंह खोल दिया। मेरी माता, मेरे छोटे बड़े भाइयों ने, मेरी पत्नी ने जितना करना था, कर लिया। मेरी आंख की पीड़ा समाप्त नहीं हुई। मैं कराहता रहा। वैद्य आए, प्राणाचार्य आए। अनेक प्रकार की चिकित्साएं की। न जाने कितनी दवाइयां कहां कहां से मंगवाई। यदि हनुमान होता तो संजीवनी बूटी भी मंगवा लेते। पर कुछ भी अर्थ नहीं निकला। राजन ! ये मेरी अनाथता थी।

### मुनि का संकल्प

जीवन में कुछ ऐसे क्षण आते हैं, जब आदमी गहराई में चला आता है। जब व्यक्ति गहराई में जाता है, उसे समाधान मिल जाता है। दुनिया में किसी को समाधान मिला है तो वह भीतर गहराई में डुबकी लगाने के बाद ही मिला है। बाहर-बाहर भटकने वाले को कभी समाधान नहीं मिलता।

मैंने एक संकल्प किया--एक बार इस असह्य चक्षु वेदना से मुक्त हो जाऊं तो इस विपुल वैभव को छोड़ कर मुनि बन जाऊं।

सोते समय जो संकल्प किया जाता है, वह ज्यादा फलित होता है। प्रेक्षाध्यान में यह सुझाया जाता है--सोते-सोते निश्चय--संकल्प को दोहराएं और संकल्प को दोहराते-दोहराते नींद में चले जाएं, वह संकल्प अवचेतन मन तक पहुंच जाएगा। जो बात अवचेतन मन के स्तर पर पहुंच जाती है, वह क्रियान्वित हो जाती है।

### रात बीती : दर्द बीत गया

अनाथी मुनि ने कहा--सम्राट् ! मैं इस संकल्प के साथ सो गया। मुझे कभी नींद नहीं आती थी पर उस दिन नींद आ गई। मुझे अनुभव हुआ--जैसे-जैसे रात बीत रही है वैसे-वैसे वेदना बीतती जा रही है। सम्राट् ! सुबह उठा तो ऐसा लगा--वेदना समाप्त हो गई है। मैं एकदम स्वस्थ हो गया हूं।

एक चमत्कार हो गया। मैंने सबको अपना संकल्प बताया--अब मैं नाथ बनूंगा, अनाथ नहीं रहूंगा। राजन ! मैं परिवारजनों की अनुमति लेकर मुनि बन गया। अपना ही नहीं, सारे संसार का नाथ बन गया।

मुनि ने कहा--राजन ! यह मेरी अनाथता थी। दूसरा कोई किसी का नाथ नहीं बन सकता। क्या तुम स्वयं अनाथ नहीं हो ?

सम्राट् क्या बोले, कुछ बोलने को शेष नहीं रहा था।

## क्यों होता है संघर्ष

प्रश्न है—यह शब्दों का संघर्ष क्यों होता है? हम इस पर विचार करें। भगवान महावीर ने दो नयों का प्रतिपादन किया—निश्चय नय और व्यवहार नय। निश्चय नय अपना व्यक्तिगत होता है और हमारा काम चलता है व्यवहार नय से। व्यवहार है एक ही पदार्थ में निमित्त और संयोग से होने वाले भावों का ग्रहण। व्यवहार नय के दो भेद हैं—

सद्भूत व्यवहार—एक ही द्रव्य में भेद करने वाली दृष्टि।

असद्भूत व्यवहार—अनेक भिन्न द्रव्यों में अभेद दृष्टि।

असद्भूत व्यवहार के दो भेद हैं—उपचरित असद्भूत और अनुपचरित असद्भूत।

### अनुपचरित व्यवहार

हम उपचार से चलते हैं। दो वस्तुएं एक साथ रह रही हैं। दूध अलग है, पानी अलग है। आत्मा अलग है, शरीर अलग है। एक क्षेत्र में दोनों रह रहे हैं। शरीर और आत्मा—दोनों साथ-साथ रह रहे हैं। अगर कहा जाए—शरीर को अलग करो और आत्मा को अलग करो तो बचेगा क्या ? इतने मिले हुए हैं ये दो पदार्थ। उनमें यह शरीर मेरा है, इस प्रकार का आरोपण करना, उच्चारण करना असद्भूत अनुपचरित व्यवहार है।

### उपचरित व्यवहार

दूसरा प्रकार है असद्भूत उपचरित व्यवहार का। हम दो पदार्थों में, जो बिल्कुल अलग-अलग रह रहे हैं, उनमें एकत्व का आरोपण कर देते हैं। मेरा घर, मेरा धन, यह आरोपण हो गया। घर अलग है, धन अलग है और मैं अलग हूँ पर आरोपण कर दोनों को एक मान लिया। यह असद्भूत उपचरित व्यवहार है।

### भेद है भूमिका का

अनाथी मुनि जो कह रहे हैं और सम्राट् श्रेणिक जो कह रहे हैं, उन दोनों की हम मीमांसा करें। कहां कौन सा नय बोल रहा था। अगर हम नय की दृष्टि की बात को समझें तो सम्राट् श्रेणिक और अनाथी मुनि अपने-अपने स्थान पर सही बात कह रहे थे। वे एक-दूसरे को नहीं समझ पा रहे थे क्योंकि उनमें सापेक्षता नहीं थी। राजा कह रहा था—मेरी सेना, मेरा नगर, मेरा महल, मैं उसका मालिक, यह उपचार है असद्भूत व्यवहार नय। उसके आधार पर मनुष्य ऐसा कहता है। किन्तु जब सचाई की दिशा में जाएंगे जो यह बात ठीक नहीं होगी। मुनि सच्चाई की भूमिका पर खड़े थे और राजा असद्भूत व्यवहार की सीढ़ी पर खड़ा था। दोनों की बात एक कैसे



होगी ? दोनों की भाषा एक नहीं हो सकती। भाव का भेद तो बहुत गहरी बात है, भाषा भी नहीं मिलती। क्योंकि भाषा और शब्द हमेशा भावों के अनुसार निकलते हैं। जो व्यक्ति जिस अर्थ को जानता है, वह उस भाषा को पकड़ लेगा। वह भाव को जानता नहीं है, इसलिए उसके मन में यह विचार उभरेगा—अमुक व्यक्ति झूठ बोल रहा है, गलत बोल रहा है या अज्ञान पूर्वक बोल रहा है। यह एक जटिल प्रश्न है।  
**वही है नाथ**

हमारे सामने अनेकान्त का व्यापक दृष्टिकोण है। हमने उसे गहराई से समझा नहीं या उसका उपयोग नहीं किया। अगर अनेकान्त का गहरा अध्ययन हो तो शायद संघर्षों को कम करने की स्थिति आ जाए। उपचार की भाषा में जो राजा कह रहा था, वह गलत नहीं था। किन्तु मुनि निश्चय की भाषा बोल रहे थे—सम्राट् ! तुम्हारा कुछ नहीं है। तुम अलग हो, वह अलग है। नाथ तो वह होता है, जो अपने आपको जान लेता है।

जब दोनों ने एक-दूसरे की बात को समझा, एक-दूसरे की अपेक्षा को समझा, अन्तर समाप्त हो गया। दोनों सहमत हो गए।

राजा मुनि के चरणों में सिर झुका कर बोला—भंते ! आपने बहुत कृपा की, बहुत अनुग्रह किया, मुझे एक नया दृष्टिकोण दिया। अनाथ कौन होता है और नाथ कौन होता, मैं यह समझ गया। जो व्यक्ति दूसरे पदार्थों पर अपना प्रभुत्व या अधिकार रखता है, वह सही अर्थ में नाथ नहीं होता। नाथ वह होता है, जो अपने पर अपना अधिकार रखता है। अपना नाथ वही हो सकता है, जिसके जीवन में व्रत आ जाता है। नाथ होता है, रक्षा करने वाला, योगक्षेम करने वाला। व्रत से अधिक शायद दुनिया में कोई बचाने वाली शक्ति और तत्त्व नहीं है। मुनिवर ! मुझे बहुत अच्छा संबोधन दिया

दोनों एक बिन्दु पर आ गये, भाव और भाषा की दूरी मिट गई।

### स्व और स्वामित्व का प्रश्न

एक बहुत बड़े सत्य का उद्घाटन इस अध्ययन में हुआ है। अध्यात्म का महत्त्वपूर्ण सूत्र है—जो व्यक्ति नाथ की भूमिका पर पहुंचता है, वही व्यक्ति वास्तव में आध्यात्मिक बन सकता है। इस भूमिका पर आए बिना अध्यात्म की बात सोची नहीं जा सकती। बहुत जटिल प्रश्न है (मुनि का धन क्या है? वह उसका स्व है अतः वह उसका स्वामी है। तप उसका 'स्व' है इसलिए वह तपस्वी है। योग उसका स्व है इसलिए वह योगी है।

हम अध्यात्म के रहस्य को समझें तो एक भ्रांति का निरसन हो सकता है। जो हमारा स्व नहीं है, वहां हम अपना स्वामित्व बनाए बैठे हैं और इसीलिए छोटे से भूमि के टुकड़े के लिए बड़े-बड़े संघर्ष और युद्ध हो जाते हैं। भूमि के लिए कहा गया—यह ऐसी कुंवारी कन्या है, जिसकी आज तक शादी हुई ही नहीं, जिसे कोई ब्याह ही नहीं सका और इसके लिए भी लड़ाई होती है। धन किसी का स्व नहीं पर इसे स्व मान लिया गया। जो स्व नहीं है, उस पर हमने अपने स्वामित्व का आरोपण कर लिया। ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य जो हमारे स्व हैं, उनको हमने जाना नहीं। यह स्व और स्वामित्व का जो अन्तराल है, वह सारे संघर्षों का हेतु बन रहा है। जब तक व्यक्ति स्व और स्वामित्व, नाथ और अनाथ के इस रहस्य को विमर्श पूर्वक स्वीकार नहीं करता, तब तक वह अध्यात्म के क्षेत्र में अपना उन्नयन नहीं कर सकता।

## मैं थामे हूँ अपने भाग्य की डोर

### श्रेणिक की जिज्ञासा

मुनि अनाथी ध्यान संपन्न कर एक वृक्ष के नीचे खड़े हैं। सम्राट् श्रेणिक उपपात में हाथ जोड़ कर खड़ा है। उसने पूछा-भंते ! आप नाथ हो गए पर आपने पाया क्या ? घर छोड़ दिया, मुनि बन गए, आपको क्या मिला ?

मुनि बोले-मैंने सत्य का साक्षात्कार कर लिया, सत्य को पा लिया। सत्य को केवल सुना-पढ़ा नहीं, स्वयं पा लिया है।

सम्राट ने निवेदन किया-भंते बतलाएं, आपने जो जाया है, वह सत्य क्या है? मुनि ने कहा--

*अप्या णई वेयरणी, अप्या मे कूडसामली।*

*अप्या कामदुहा धेणु अप्या मे नदणवणं॥*

*अप्या कत्ता विकत्ता य दुहाणा य सुहाण य।*

*अप्या मित्तममित्तं च दुपट्ठिय सुपट्ठियो॥*

इन दो श्लोकों में इतने बड़े सत्य का उद्घाटन हुआ है कि उसकी अनेक दार्शनिक परिक्रमाएं हुई हैं।

### तीन निर्णायक सत्य

अनाथी मुनि ने कहा--सम्राट् ! मैंने इस सत्य को पा लिया। मेरे संकल्प की स्वतंत्रता है। हर व्यक्ति अपना संकल्प करने में स्वतंत्र है। संकल्प की शक्ति है इसलिए मुझे अपने नैतिक नियमों के निर्धारण करने का अधिकार है। कर्तव्य और अकर्तव्य का निर्णय करने का मुझे अधिकार है। तीसरी बात है कि मैं अपने कृत का स्वयं उत्तरदायी हूँ। इन तीन सत्यों का साक्षात्कार मैंने किया है--संकल्प की स्वतंत्रता, नैतिक नियमन, और उत्तरदायित्व।

जिस व्यक्ति को ये तीन निर्णायक सत्य मिल जाते हैं, उसके जीवन की दिशा बदल जाती है सबसे बड़ी कठिनाई यह है--हम संकल्प की स्वतंत्रता को स्वीकार नहीं कर रहे हैं। दो धाराओं के बीच हमारा जीवन चल रहा है। कुछ लोग सोच रहे

हैं—हमारा भाग्य ईश्वर के हाथ में है। वह जैसे चलाता है, हम चलते हैं। एक ईश्वर कर्तृत्व की धारा है तो दूसरी परिस्थितिवाद की धारा है। कुछ लोग सोचते हैं—आदमी वही करता है, जैसी परिस्थिति होती है। ईश्वरवाद और परिस्थितिवाद के बीच हमारी संकल्प की स्वतंत्रता खोई हुई है।

### परिचय है पर से

मुनि ने कहा—मैं इन दोनों से हटकर इस निर्णय पर पहुंच गया हूं—मेरा संकल्प—स्वतन्त्र है। मैंने इसका प्रयोग करके देख लिया है। मुझे कोई पीड़ा से नहीं बचा सका। मेरा अपना संकल्प ही मेरे काम आया, मेरी रक्षा करने वाला बना। मैं इस गहराई में चला गया हूं जो स्रोत है, वह अपने भीतर ही है।

हमारी बाहर की खोज बहुत चलती है वह इसलिए चलती है कि हम पर से बहुत परिचित हो गये। हम स्व और पर—दोनों शब्दों को जानते हैं किन्तु हम ज्यादा पर से ही परिचित हैं। हमारे सामने ज्यादा पर ही आता है इसलिए हम स्व की बात समझ नहीं पाते। हमारी साधना के विषय में भी ऐसा ही है। लगता है—हम स्व की दिशा में चल रहे हैं परन्तु वास्तविकता में हम पर की ओर चले जाते हैं।

### कैसा शान्त सहवास ?

भगवान बुद्ध ने कुछ स्थविरों को निर्देश दिया—अमुक गांव में चतुर्मास करके आओ। तीस-चालीस भिक्षु थे। उन्होंने पहले गोष्ठी कर चिंतन किया—ऐसी व्यवस्था बनाएं ताकि हमारा सहवास शांत बने। उन्होंने वर्गानुसार संयोजक बना लिए, सबको अपना काम बांटकर समझा दिया। व्यवस्था हो गई। फिर सोचा—कोई कलह नहीं हो उसके लिए और क्या-क्या करना चाहिए। एक सुझाव आया—हमें मौन करना चाहिए। एक भिक्षु ने तर्क प्रस्तुत किया—मौन करने से क्या होगा ? वह तो एक या दो घंटा किया जाएगा। बाईस घंटे शेष रह जाते हैं। लड़ाई होनी है तो हो ही जाएगी। तीसरे भिक्षु ने सुझाव दिया—हम सब भिक्षु चार महीनों का मौन कर लें। यह सुझाव सबको अच्छा लगा। सब भिक्षुओं ने मान्य कर लिया। शांत सहवास बीता। झगड़ा, आरोप, प्रत्यारोप, कलह कुछ भी नहीं हुआ। चतुर्मास पूरा हो गया। भिक्षुओं ने सोचा—हम बुद्ध के पास जायेंगे, हमें प्रशंसा मिलेगी। भिक्षु बुद्ध के पास आए। भगवान बुद्ध ने कुशलक्षेम पूछा। भिक्षुओं ने पहले सारी व्यवस्थाओं के बारे में बताया। उन्होंने कहा—हम सब चार महीने बिल्कुल मौन रहे, बड़ा शान्त सहवास बीता। बुद्ध बोले—भिक्षुओं ! यह क्या किया ? इससे तो अच्छा रहता कि पशुओं का टोला लाकर खड़ा कर लेते। तुम्हारे खर्च का बोझ तो नहीं बढ़ता। तुम वहां परस्पर बातचीत करते, लोगों को धर्म कथा की बातें बताते, ज्ञान देते, फिर शांत सहवास बिताकर आते तब

कुछ श्रेयस्कर कार्य होता। यह तो ठीक वैसा हुआ, जैसे पुशओं का टोला काम करता है।

### उपादान की भूमिका पर

जब हम केवल निमित्तों पर ही अटक जाते हैं, भीतर के स्रोत तक नहीं जाते, समस्या का समाधान नहीं होता। शायद इसीलिए स्थविरकल्पी को अधिक महत्त्व दिया गया। स्थविरकल्पी सबके साथ रहकर अपना नियंत्रण करता है। उस स्थिति में अनुशासित रहकर शांत सहवास करता है, जितेन्द्रिय रहता है, शायद यह बड़ी साधना है। अकेला जंगल में रहकर साधना करने से भी अधिक महत्वपूर्ण है शहर में रहकर साधना करना। एक साधक ने बीस-पच्चीस वर्ष हिमालय में रहकर साधना की। उसके बाद आश्रम में आकर बैठा तो लड़ाइयां करने लगा। साधना की कसौटी होती है समुदाय में।

अनाथी मुनि ने कहा—मैं वहां पहुंच गया हूँ, जिसे उपादान की भूमिका कहे, निश्चय की भूमिका या आत्मदर्शन की भूमिका कहें। यह वह भूमिका है जहां आनन्द का स्रोत मिलता है, ज्ञान और शक्ति का स्रोत भी मिल जाता है। मुझे क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए, मुझे मुनि क्यों बनना चाहिए ? घर क्यों छोड़ना चाहिए ? पेड़ के नीचे अकेला क्यों खड़ा होना चाहिए ? यह मैंने देख लिया। इस कर्तव्य का निर्णय मैंने स्वयं किया है, मेरे संकल्प की स्वतंत्रता ने किया है, मेरा संकल्प और स्वतंत्रता यह करा रही है और मैं मानता हूँ कि मैं अपने कृत का स्वयं उत्तरदायी हूँ।

### घटना और संवेदन

हम सुख और दुःख का आरोपण भी दूसरों पर कर देते हैं। हमारा सारा ध्यान इसी पर अटका हुआ है। कोई घटना घटती है, तत्काल मन में आता है कि उसने ऐसा कर दिया, उसने ऐसा कह दिया। कोई निमित्त होता ही नहीं है, ऐसी बात नहीं है। अनेकांतवाद को मानने वाला निमित्तों को अस्वीकार नहीं करेगा। निमित्त हो सकते हैं पर निमित्त केवल घटना प्रस्तुत कर सकता है किन्तु सुख-दुःख नहीं दे सकता। सुख-दुःख का संवेदन होना एक बात है और सुख-दुःख की घटना पैदा कर देना बिलकुल दूसरी बात है। मलेरिया के कीटाणु मलेरिया पैदा कर सकते हैं। यक्ष्मा के कीटाणु यक्ष्मा पैदा कर सकते हैं। ये कीटाणु या वायरस एक बाहरी निमित्त पैदा कर सकते हैं। एक प्रशंसा का शब्द अहंकार को जगा सकता है। हम इस सचाई को समझें—बीमारी होना एक घटना है और सुख-दुःख भोगना दूसरी बात है। क्या यह सम्भव है—बीमारी हो पर दुःख न हो ? यही तो अध्यात्म है—बीमारी है पर दुःख

नहीं है, दुःख का संवेदन नहीं है। यह बात समझ में जाए तो महत्वपूर्ण सचाई उपलब्ध हो जाए। हमने दोनों को एक मान रखा है। बीमारी होने का मतलब है, दुःख को होना और दुःख होने का मतलब है—विपरीत परिस्थिति का होना। हमने इनको एक मान लिया, यही मिथ्या दृष्टिकोण है।

### आंतरिक है दुःख का संवेदन

वस्तुतः दुःख का संवेदन नितांत आंतरिक है। इसका संबंध केवल कर्म से है। वेदनीय कर्म से इसका सम्बन्ध है या इससे जुड़े मोहनीय कर्म से इसका संबंध है, किन्तु घटना का किसी से सम्बन्ध नहीं है। उसे कोई भी पैदा कर सकता है। वर्षा बरसती है और ठण्डी हवा चलती है। इसका सबके साथ संबंध है। उससे एक व्यक्ति को सर्दी लगती है। वह एक व्यक्ति को बहुत अच्छी लगती है। घटना तो एक है पर अनुभूति है अलग-अलग। प्रश्न है घटना समान होने पर भी अनुभूति में अन्तर क्यों? शरीर की प्रकृति का अंतर है या अपने संवेदन का अन्तर ? एक घटना होने से एक व्यक्ति तो रोने लग जाता है और इसी घटना से प्रभावित एक व्यक्ति कहता है—कोई बात नहीं, मुझे गहरे में जाना चाहिए। इन बाह्य प्रकोपों से मुक्त रहना चाहिए। एक ही घटना से एक व्यक्ति क्रोधित होता है और एक आदमी अन्तर्मुखी हो जाता है, जागरूक बन जाता है। अगर सारा भार परिस्थितियों और निमित्तों पर डाल दें तो उत्तरदायित्व किसका होगा ? क्या उत्तरदायित्व परिस्थिति वहन करती है ? वह उत्तरदायित्व का भार नहीं ओढ़ती। सारा उत्तरदायित्व व्यक्ति का है, यह अध्यात्म का बहुत बड़ा सत्य है। इसका जितना-जितना साक्षात्कार होता है उतना ही व्यक्ति सुख दुःख से परे होता चला जाता है।

### अध्यात्म का स्वर

मुनि ने जो बात कही है, वह अध्यात्म का स्वर है। एक पहुंचा हुआ व्यक्ति ही ऐसी अनुभूति की बात कह सकता है। यह कोरा दर्शन का सिद्धान्त नहीं है। यह अनुभूति का सिद्धान्त है। जो व्यक्ति इस भूमिका पर पहुंच जाता है, जो इस कर्म-शास्त्रीय गहन गुत्थी का समाधान पा जाता है, वह यही कहेगा कि—अप्या कत्ता विकत्ता य—मेरी आत्मा ही कर्ता और विकर्ता है। कोई भी घटना होने पर हम निमित्तों को खोजते हैं, उन पर आरोपण कर देते हैं, इससे क्या होगा ? क्या हमारा मन अशान्त नहीं बन जाएगा। इससे मन का तनाव बढ़ेगा, बुद्धि कुंठित होगी और जो कुछ प्राप्त है, वह चला जाएगा। इसका परिणाम यह हुआ—निमित्त पैदा करने वाला सफल हो गया। वह चाहता ही है—अमुक व्यक्ति गिरे। उस स्थिति में हम निमित्तों

और परिस्थितियों को सफल न होने दें। हम यह प्रयास करें—ज्ञान जड़ न बने, शक्तियाँ कुठित न बने, आनन्द विलुप्त न हो जाए। यह सूत्र हाथ लगता है तो भगवान महावीर का, अनाथी मुनि का या जैन दर्शन का आत्मकर्तृत्व का सिद्धान्त कोरी दार्शनिक भावना नहीं रहेगी किन्तु हमारा अध्यात्म का सूत्र बनेगा।

आज इस सूत्र की बहुत जरूरत है। हमारी दिशा बदले। हम बाहर ही नहीं, भीतर में भी जाएं। अपनी अपूर्णताओं को देखें बिना, अपनी कमियों और कठिनाइयों को देखें बिना अपनी समस्याओं का गहराई से चिन्तन और अपना आत्मालोचन किए बिना हमारा देखने का कोण दूसरा बनेगा। दृष्टिकोण बदलता है तो सारी घटनाएं बदल जाती है। इसीलिए भगवान ने ज्यादा बल दिया सम्यक् दर्शन और सम्यक् दृष्टिकोण पर। थोड़ी-सी विपरीत घटना होने पर लोग बोलना बंद कर देते हैं, रुठ जाते हैं, भोजन भी बंद कर देते हैं। यह सारा चक्र जो चल रहा है, वह इसीलिए चल रहा है कि हम और निमित्त पर अटके हुए हैं।

### अध्यात्म की भाषा

अनाथी मुनि ने एक सुन्दर दर्शन दिया। यदि हम इन दो श्लोकों को निकाल दें तो अध्यात्म निष्प्राण बन जाएगा। यद्यपि दर्शन में परं बहुत चर्चा हुई है। ईश्वरवाद नैयायिक वैशेषिक ये ईश्वर कर्तृत्ववादी रहे। जैन-बौद्ध साख्य ये आत्मकर्तृत्ववादी रहे। पर यह सूत्र मूलतः अध्यात्म का है और अध्यात्म में भी निश्चय का है यह सूत्र। व्यवहार में परिस्थिति, वातावरण और निमित्तों को दोष दिया जा सकता है परन्तु अध्यात्म और निश्चय की भाषा में यह समझना चाहिए—अभी अध्यात्म का क ख ग भी नहीं समझा गया है। कितना बड़ा रहस्य अनाथी मुनि ने बात बात में प्रस्तुत कर दिया। आज भी हमारे सामने यह श्लोकद्वयी प्रस्तुत है। 'यत् व्यक्तव्यं तत् निशेषम्'—जो कहना था, वह इसमें शेष हो गया। इसके अतिरिक्त अध्यात्म का कोई वक्तव्य नहीं है। सारा अध्यात्म इसमें संपन्न होता है। ये दोनों श्लोक अत्यन्त मननीय हैं। हम इनका मनन करें। गड़राई में जाने पर जो मिलेगा, वह हमारे जीवन के लिए आलोक बन जाएगा। जैसे अनाथी मुनि को इसका साक्षात्कार हुआ वैसे ही हमें भी इसका साक्षात्कार होगा, हमारे जीवन की दिशा भी बदलेगी और कुछ नया दीखेगा, जिसे हम आज तक देख नहीं पाए।

## जब धर्म अफीम बन जाता है

धर्म उत्कृष्ट मंगल है। प्रश्न हुआ—कौनसा धर्म उत्कृष्ट मंगल है ? उत्तर दिया गया—अहिंसा, संयम और तपमय जो धर्म है, वह उत्कृष्ट मंगल है। जहां हिंसा, असंयम और अतप है, वहां धर्म मंगल नहीं है। धर्म मंगल भी है, अमंगल भी है। धर्म के ये दोनों रूप हमारे सामने आते हैं।

### धर्म के प्रति आकर्षण क्यों ?

हम धर्म की समस्याओं पर विचार करें। धर्म के प्रति आकर्षण बहुत हैं। प्रश्न होता है—धर्म के प्रति आकर्षण क्यों है ? इसका कारण क्या है ? प्रत्येक धर्म के साथ एक अविनाशी शाश्वत सत्ता जुड़ी हुई है। कोई भी धर्म ऐसा नहीं है, जिसके साथ परम सत्ता का संबंध न हो। खुदा, महाप्रभु, यीशु, परमेश्वर, ब्रह्मा, परमात्मा, सिद्ध—किसी न किसी रूप में कोई परम सत्ता जुड़ी हुई है। अविनश्वर सत्ता के बिना धर्म के प्रति उतना आकर्षण नहीं हो सकता। अज्ञात या अदृश्य के प्रति, शाश्वत शक्ति के प्रति आकर्षण अधिक होता है। प्रत्येक धर्म ने अपने साथ परम सत्ता का सम्बन्ध स्थापित किया है इसीलिए धर्म के प्रति आकर्षण है। शेष सामयिक और तात्कालिक हो सकते हैं लेकिन स्थायी आकर्षण का केन्द्र धर्म ही है। पैसे के प्रति आकर्षण है पर जितना आकर्षण परम सत्ता के प्रति है, उतना पैसे के प्रति नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति जानता है—पैसा पैसा है पर वह यह भी जानता है—आखिर कुछ नहीं है। वह यह मानता है—परम सत्ता ही सब कुछ है इसीलिए धर्म के प्रति बहुत आकर्षण है। यदि हम इस दृष्टि से चिन्तन करें, परम सत्ता की दृष्टि से देखें तो प्रायः सारे धर्म एक बिन्दु पर आ जाते हैं।

### अंतर है स्वार्थ का

जैन दर्शन ने जो परमात्मा है, वही परम सत्ता है इसीलिए आचार्य हरिभद्र सूरी ने लिखा—कहा जाता है—जैन लोग ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते। इस पर सापेक्ष दृष्टि से सोचें। जैन दर्शन मानता है—आत्मा ही परमात्मा है, आत्मा ही ईश्वर है इसलिए इसमें कोई दोष नहीं आता। इस दृष्टि से जैन दर्शन भी ईश्वर के



अस्तित्व को स्वीकार कर लेता है। निष्कर्ष की भाषा यह है—केंचुली ऊपर चढ़ी हुई है उसे हम हटा दें तो धर्म का शुद्ध रूप मिल जाए। धर्म के केन्द्र में है परम सत्ता। उसकी परिधि में ही सारे धर्म चल रहे हैं। परिधि केन्द्र से जुड़ी हुई है। अन्तर है उपासना का या कुछ सिद्धान्तों की स्वीकृति का। धर्म के उद्देश्य में भी कुछ अन्तर हो सकता है, किन्तु धर्म के मूल रूप में शब्द बहुत निकट आ जाते हैं। उपासना पद्धति, सिद्धान्त या उद्देश्य का जो अन्तर है, उससे भी अधिक अन्तर है स्वार्थ का। धर्म के साथ व्यक्ति का स्वार्थ भी जुड़ जाता है। सब लोग समान नहीं होते। वे धर्म के साथ अपने अपने स्वार्थ का संबंध स्थापित कर देते हैं। धर्म को संस्थागत रूप मिला, यह आवश्यक था किन्तु साथ में स्वार्थ का मुलम्मा और चढ़ा दिया गया।

### धर्म के दो रूप

धर्म के दो रूप हैं—वैयक्तिक धर्म और संस्थागत धर्म। वैयक्तिक धर्म शुद्ध आध्यात्मिक होता है। संस्थागत धर्म सांप्रदायिक धर्म है। मार्क्स ने धर्म का विरोध नहीं किया। बहुत लोग इस सचाई को नहीं जानते—मार्क्स धर्म का विरोधी नहीं था। साम्यवाद भी धर्म का विरोधी नहीं है। अनेक लोगों की यह धारणा रही—साम्यवाद धर्म को उठाने वाला है। वास्तव में ऐसा नहीं है। न मार्क्स धर्म का विरोधी था और न साम्यवाद धर्म का विरोधी रहा। उसने विरोध किया उस संस्थागत धर्म का, जो सत्ता के साथ जुड़ गया। मार्क्स ने राजनीति, सत्ता और पैसे से जुड़े धर्म का ही प्रखर विरोध किया था।

हम भगवान महावीर की भाषा को पढ़ें। महावीर ने भी सत्ता, धन और विषयों से मुक्त धर्म को विनाशकारी कहा है। महावीर की भाषा है—पिया हुआ, कालकूट विष, अविधि से पकड़ा छुआ हुआ शास्त्र और नियंत्रण में नहीं लाया हुआ बैताल जैसे विनाशकारी होता है, वैसे ही विषयों से मुक्त धर्म भी विनाशकारी होता है—

*विसं तु पीयं जह कालकूडं, हणाइ सत्यं जह कुग्गहीयं।*

*एसो व धम्मो विसओवन्नो, हणाइ वेयाल इवविवन्नो।।*

### विरोध क्यों होता है ?

जिस धर्म का महावीर ने विरोध किया, उस धर्म का मार्क्स ने भी विरोध किया और आज का प्रत्येक प्रबुद्ध एवं चिन्तनशील व्यक्ति उस धर्म का विरोध करेगा। वह सत्ता, राजनीति, धन और विषयों से जुड़े धर्म का विरोध किए बिना नहीं रहेगा। धर्म का जो शुद्ध रूप है अहिंसा, संयम और तप, उसका कोई विरोध नहीं कर सकता। जब धर्म के साथ स्वार्थ जुड़ता है, हिंसा जुड़ती है तब तक उसका विरोध होता है।

धर्म के नाम पर अनेक संप्रदायों ने हिंसा की है। जब यह भावना पैदा हो गई—मेरे धर्म-संप्रदाय को सारा संसार माने। यदि सहजता से न माने तो भय और प्रलोभन से मनवाया जाए, तलवार के बल पर जबरदस्ती मनवाया जाए। जब यह भावना प्रबल बनी, तब अहिंसा के माध्यम से विश्व-शान्ति की बात करने वालों ने हिंसा का सहारा लिया और विश्व में अशान्ति का उद्घोष हो गया। जब सत्ता-लोलुप व्यक्ति धर्म के आसन पर आसीन हो जाते हैं, बल पूर्वक सबको अपने धर्म में दीक्षित करना चाहते हैं तब हिंसा और अशान्ति का साम्राज्य प्रसार पाता है। यह जो स्वार्थ है, जबर्दस्ती अपने धर्म के विस्तार का जो प्रयत्न है, उसका संबंध धर्म के साथ नहीं है। जब-जब यह स्वार्थ बढ़ता है, व्यक्ति अनश्वर से हटकर नश्वर के साथ जुड़ जाता है। व्यक्ति के स्वार्थ के आधार पर ही शायद धर्म की अनेक परिभाषाएँ बन गईं।

### स्वार्थ के लिए

एक जमाना राजाओं का रहा। उस समय उनका एक-छत्र साम्राज्य चलता था। एक कवि गया राजदरबार में। उसे राजा से कुछ पाना था। राजा को प्रसन्न किए बिना कुछ मिलता नहीं। अपने स्वार्थ के लिए कवि लोग राजा की विरुदावली करते थे। कभी-कभी उन विरुदावलियों को पढ़कर बहुत आश्चर्य होता है। कवि ने राजा की प्रशंसा में एक श्लोक कहा—

*कल्पद्रुमो न जानाति, न ददाति वृहस्पतिः।*

*अयं तु जगतीजानि, जानाति च ददाति च॥*

राजन्! कल्पवृक्ष बहुत बड़ा है। वह व्यक्ति को बहुत कुछ देता है पर वह ज्ञानी नहीं है। वृहस्पति ज्ञानी है पर वह कुछ देता नहीं है। आप ही इस दुनिया में ऐसे महापुरुष हैं, जो जानते भी हैं और देते भी हैं। आप कल्पवृक्ष से भी बड़े हैं, वृहस्पति से भी बड़े हैं। यह स्वार्थ का परिणाम है—कल्पवृक्ष को भी नीचा दिखा दिया और वृहस्पति को भी नीचा दिखा दिया। सौ-दो सौ या हजार रुपये पाने के लिए व्यक्ति किस स्तर पर चला जाता है !

### व्यापक है स्वार्थ की वृत्ति

यह स्वार्थ की वृत्ति बहुत व्यापक है। धार्मिक लोग भी इससे मुक्त नहीं रहे हैं। जब जब धर्म के साथ स्वार्थ जुड़ा, वह प्रबल बना तब तब सचमुच हिंसा का दारुण रूप सामने आया है। धर्म के नाम पर, ईश्वर के नाम पर हिंसा का दारुण रूप सामने आया है। धर्म के नाम पर, ईश्वर को जो सृष्टि का निर्माता मानते हैं, पालक और संरक्षक मानते हैं, उस ईश्वर के नाम पर हिंसा हो, यह सोचा भी नहीं जा सकता।

लेकिन जब बीच में व्यक्ति का स्वार्थ आड़े आता है तब ये स्थितियां बनती हैं। स्वार्थ की प्रबलता हुई, धर्म की परिभाषाएं बदल गईं। आज धर्म की कितनी परिभाषाएं हैं! इस संसार में सात सौ-आठ सौ धर्म माने जाते हैं। इतने धर्म हैं, पर धर्म की परिभाषाएं दो हजार से कम नहीं हैं। जहां स्वार्थ आता है, परिभाषा बदल जाती है, व्यक्ति का रूप बदल जाता है।

### धर्म का कार्य

एक व्यक्ति से पूछा गया—आपकी उम्र क्या है ? उत्तर मिला—पचास वर्ष। फिर पूछा—आपको नौकरी करते कितने वर्ष हो गये ? उस व्यक्ति ने उत्तर दिया—पचपन वर्ष। व्यक्ति यह सुनकर विस्मित रह गया। उसने कहा—अरे भई ! ये दोनों बातें कैसे होंगी ? व्यक्ति बोला—मैंने बिलकुल ठीक कहा है—मैंने बहुत ओवरटाईम काम किया है।

आदमी परिभाषा बदल देता है। आज धर्म की इतनी परिभाषा बदल गई है, इतने स्वरूप बदल गए कि उसे मूल रूप से पहचानना भी कठिन है। जो धर्म व्यक्तित्व का निर्माण करने वाला था, जिसका सबसे बड़ा कार्य अहिंसा की स्थापना था, यदि वह धर्म अहिंसा की स्थापना नहीं करता है तो न वह ईश्वरीय धर्म हो सकता है, न ईश्वर के दरबार में न्याय दिलाने वाला हो सकता है। व्यक्तिगत जीवन में अहिंसा, समाज के प्रति व्यवहार में अहिंसा बहुत बड़ा धर्म है। यह इतना बड़ा तत्त्व है, जो जीवन की अपूर्णता को पूर्णता में बदलता है, जीवन के धब्बों को एक चित्र में बदल देता है।

### धब्बा चित्र में बदल गया

इंग्लैंड में प्रख्यात साहित्यकार जॉन रस्किन एक समारोह में गए। उनके पास बैठी युवती के हाथ में एक सुन्दर रुमाल था। उसे वह उपहार में मिला था। अकस्मात् उस रुमाल पर कुछ गिरा, रुमाल पर गहरा धब्बा हो गया। रुमाल की यह स्थिति देखकर युवती उदास हो गई। जॉन रस्किन युवती से बोले बहन—उदास क्यों हो गई? उसने कहा—महाशय ! देखो मेरे इतने सुंदर रुमाल पर कैसा धब्बा हो गया है ? जॉन रस्किन ने कहा—यह रुमाल मुझे दो। युवती ने रुमाल जॉन रस्किन को दे दिया। रस्किन जितने बड़े साहित्यकार थे उतने ही बड़े चित्रकार थे। रस्किन कुछ मिनट के लिए एकान्त में गए, उस रुमाल पर एक चित्र बनाया और लौट आए। युवती से कहा—बहन ! यह लो तुम्हारा रुमाल। युवती रुमाल को देखकर बोली—यह रुमाल मेरा नहीं है। मेरे रुमाल में धब्बा था। वह धब्बा कहां है ? आप मुझे मेरा रुमाल दें। यह

किसी ओर को दे दें। जॉन रस्किन ने मुस्कुराते हुए कहा—बहिन ! यह वही धब्बों वाला रुमाल है। यह तुम्हारा ही है। तुम देखो—जिस स्थान पर धब्बा था, उस स्थान पर कितना सुन्दर चित्र है। युवती ने देखा—रुमाल पहले से भी अधिक सुन्दर बन गया था। उसका उदास चेहरा खिल उठा। जॉन रस्किन बोले—धब्बा चित्र में बदल गया है।

### समाधान है अहिंसा

धर्म का काम है—धब्बे को चित्र में बदल देना। यदि धर्म अहिंसा के द्वारा धब्बों को चित्र में नहीं बदलता है तो वह वास्तव में धर्म नहीं रहता। अहिंसा ही एक ऐसा धर्म है, जो दुनिया के धब्बों को चित्र में बदल सकता है। आज विश्व-शांति की समस्या जटिल बनी हुई है। क्या कोई राष्ट्र उसे सुलझा सकेगा ? क्या अमेरिका उसे समाधान देगा ? या दुनिया की तीसरी-चौथी शक्ति प्रकट होगी और इस समस्या को सुलझाएगी? शस्त्र के बल पर विश्व-शान्ति की समस्या कभी नहीं सुलझेगी। शस्त्रों से समस्या सुलझती भी नहीं है, और अधिक उलझ जाती है। शस्त्रों के सहारे विश्व-शांति का सपना न कभी फलित हुआ है, न कभी फलित होगा। विश्वशांति की समस्या का एक मात्र समाधान है—अहिंसा। अहिंसा के सिवाय कोई विकल्प नहीं है। आज विश्व की महान् शक्तियों ने इस सचाई का अनुभव किया है। रूस और अमेरिका ने इस सचाई को स्वीकार किया है। आज शस्त्रों के विस्तार की नहीं, परिसीमन की दिशा में चिन्तन चल रहा है। यह स्वर प्रबल बन रहा है—शस्त्रों का परिसीमन हो। हमें यह मानना चाहिए—जाने-अनजाने दुनिया की महान शक्तियों ने अहिंसा के महत्त्व को स्वीकार किया है।

### अहिंसा का पहला उपन्यास

वस्तुतः हिंसा अपनी मौत मरती है। हिंसा को कोई दूसरा मार नहीं सकता। झूठ अपनी मौत मरता है, कभी चल नहीं सकता। दुनिया में वही जिन्दा रह सकता है, जिसका आधार होता है। अशाश्वत के सहारे चलने वाला कभी ज्यादा चल नहीं पाता। एक दिन ऐसा आता है, अशाश्वत के घुटने टिक जाते हैं। हिंसा, आक्रमण, शस्त्र—ये सारे अनश्वर तंत्र हैं। ये कभी स्थायी नहीं रह सकते। हमें साधुवाद देना चाहिए गोर्बाच्योव को, रीगन और बुश को, जिन्होंने संसार के सामने अहिंसा का प्रथम उपन्यास लिखा। इतना सुंदर उपन्यास कोई लेखक नहीं लिख सका। अहिंसा के इस उपन्यास का लेखन कोई धार्मिक आदमी भी नहीं कर सकता, क्योंकि सारी शक्ति उनके हाथ में है। जिनके हाथ में हिंसा की शक्ति है, वे अहिंसा की बात सोचें

तब कुछ संभव हो सकता है। सारी शक्ति राज्य से जड़ी हुई है। हिंसा की सारी शक्ति, संहारक शस्त्र उसके अधिकार में है। यदि सत्ता पर बैठे लोग इस दिशा में नहीं सोचते तो स्थिति कुछ दूसरी होती।

यह इस युग की विशेषता माननी चाहिए—इस दुनिया में कुछ ऐसे लोग पैदा हुए हैं, जो अहिंसा की दिशा में सोचने लगे हैं। यह सबसे बड़ा आश्चर्य है—जिस राष्ट्र ने यह माना—साध्य की पूर्ति के लिए चाहे जैसा आलंबन लिया जा सकता है, उस राष्ट्र में अहिंसा का स्वर प्रखर हुआ है। साम्यवाद का यह सिद्धांत रहा—यदि साध्य ठीक है तो उसकी पूर्ति के लिए हिंसा पर विचार करना कोई जरूरी नहीं है। साध्य पूरा होना चाहिए, चाहे वह कैसे भी हो, हिंसा का आलंबन लेने में कोई बाधा नहीं है। यह आस्था जिस राष्ट्र में थी, उसका स्वर बदला है, वह अहिंसा की भाषा में सोचने लगा है। यह कम आश्चर्य की बात नहीं है।

### अणुव्रत की भूमिका

आज अहिंसा को बल मिला है। प्रश्न है—उसे बल क्यों मिला? हम इस प्रश्न पर कुछ विचार करें। क्या उसमें अहिंसा के क्षेत्र में काम करने वाले व्यक्तियों का योग है? अहिंसक समाज रचना के लिए संकल्पित आंदोलनों की कोई भूमिका है? हम अणुव्रत आंदोलन का संदर्भ लें। उसकी क्या भूमिका रही है? प्रश्न हो सकता है—अणुव्रत आंदोलन उन तक पहुंचा या नहीं पहुंचा? यदि हम वैचारिक दृष्टि से सोचें तो यह मानने में कोई कठिनाई नहीं होती कि अणुव्रत के विचार ने एक शक्तिशाली वातावरण का निर्माण किया है। हमारा विचार का जगत् बहुत शक्तिशाली होता है। एक आदमी हिमालय की गुफा में बैठा निरंतर एक विचार करता है, अपने विचार की तरंगों को दुनिया में छोड़ता है। वे विचार के प्रकंपन इतने शक्तिशाली बनते हैं और न जाने दुनिया में किन-किन मस्तिष्कों को प्रभावित करते हैं। बहुत विचित्र है विचारों का संक्रमण और चक्राण। विचार अज्ञात रूप में दुनिया के मस्तिष्क को इतना बदल देते हैं, जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। एक व्यक्ति ने दो वर्ष पहले कोई बात सोची और बहुत शक्तिशाली संकल्प के साथ सोची। हो सकता है—दो सौ वर्ष के बाद ये विचार के परमाणु, जो आकाशीय रेकार्ड में विद्यमान हैं, दुनिया में कहीं से कहीं जाकर किसी मस्तिष्क से टकरा जाए और उसके मस्तिष्क को प्रभावित कर दे, उसके विचारों की धुलाई कर दे।

### विचार की शक्ति

अणुव्रत आंदोलन अहिंसा के शक्तिशाली वातावरण के निर्माण का अभियान

है। यह वैचारिक दृष्टि से बहुत फैला। कुछ इस भाषा में सोचते हैं—केवल विचार से क्या होगा ? वे लोग इस सचाई को नहीं जानते—स्थूल कार्य में जो शक्ति नहीं होती, वह शक्ति विचार में होती है। ढाई हजार वर्ष पूर्व भगवान महावीर ने जो विचार दिए, उस समय शायद उनकी उपयोगिता और मूल्य नहीं समझा गया पर वे आज अनायास साकार हो रहे हैं। हम निःशस्त्रीकरण का विचार लें। यह निःशस्त्रीकरण शब्द किसके द्वारा प्रयुक्त है ? महावीर ने सबसे पहले प्रयोग किया शस्त्र परिज्ञा का। मैंने आज से चालीस वर्ष पहले 'विजय यात्रा' लिखी, उसमें शस्त्र परिज्ञा का अनुवाद किया—निःशस्त्रीकरण। समन्वय के विकास का विचार हो या एक मंच पर दो विरोधी राष्ट्रों का या दो विरोधी समाजों के मिलन का विचार, ये सारे विचार महावीर ने दिए पर उस समय इनका मूल्य नहीं आंका गया। यह सचाई है—कोई भी अच्छा विचार कभी निष्फल नहीं होता। हर विचार फलवान् बनता है, पुत्रवान् बनता है। उसकी संतति चलती है। चालीस वर्ष पूर्व अणुव्रत आंदोलन का सूत्रपात हुआ। एक संशय के वातावरण में प्रारंभ यह आंदोलन आज वैचारिक दृष्टि से अत्यन्त शक्तिशाली बन गया है इसलिए वह दूसरों को प्रभावित करने में सक्षम है। जब तक विचार शक्तिशाली नहीं बनता, पकता नहीं है, अपना कवच नहीं बना लेता है तब तक वह प्रभावित नहीं कर पाता। हमें यह मानना चाहिए—अहिंसा का जो विचार चला है, चल रहा है, उसने अज्ञात रूप से दुनिया की महान् शक्तियों को प्रभावित किया है।

### धर्म का मंगल स्वरूप

धर्म एक शक्तिशाली चिन्तन है। दुनिया में जितने चिन्तन हुए हैं, उनमें सबसे शक्तिशाली जो चिन्तन है, वह धर्म का चिन्तन है। धर्म के क्षेत्र में सबसे बड़ा अवदान है अहिंसा का, करुणा, मैत्री और संवेदनशीलता का। हम प्रतिदिन यह मंगल भावना करें—*शिव संकल्पमस्तु मे मनः।* यह चिन्तन जीवन निर्माण के लिए सबसे शक्तिशाली चिन्तन है। जिस व्यक्ति के मन में यह चिन्तन प्रबल बन जाता है—*श्रेष्ठि मे स्व भूएसु*—सब प्राणियों के प्रति मेरी मैत्री है, इससे बड़ा कोई मंगल कार्य हो नहीं सकता। अहिंसा शक्तिशाली बने, धर्म मंगल व कल्याणकारी बने, वह अफीम या नशा न बने। इसके लिए आध्यात्मिकता का विकास जरूरी है। हम अपने जीवन को आध्यात्मिक बनाएं, संस्थागत धर्म को हिंसा से मुक्त रखें तो धर्म कल्याणकारी बन जाएगा। वह कभी अफीम या नशा नहीं होगा। यह दुर्भाग्य की बात है—धर्म के साथ भी हिंसा जुड़ गई। इसमें धर्म का कोई दोष नहीं है, धर्म के प्रवर्तकों का कोई दोष नहीं है। हम महावीर, बुद्ध, ईसा, मुहम्मद, जरथुस्त्र आदि धर्म प्रवर्तकों के जीवन को

पढ़ें। वे कितने साधक व्यक्ति थे। उनमें कितनी सहिष्णुता और करुणा थी। सब कुछ विराट् था पर जैसे-जैसे स्वार्थ की बातें जुड़ती चली गईं, धर्म के साथ हिंसा जुड़ गई। उसे अफीम या नशे के रूप में देखा जाने लगा। हम धर्म के मंगल स्वरूप को समझें, अहिंसा, संयम और तप का जीवन जीएं, हमें अनुभव होगा--धर्म अफीम या नशा नहीं है, वह जीवन की पवित्रता का पथ है।

## चोर से अचौर्य की प्रेरणा

एक पवित्र चेतना ने पवित्र आत्मा की स्तुति की। प्रार्थना के स्वर में कहा—सिद्ध! मुझे आरोग्य दें, बोधि-लाभ दें, समाधि दें।

*आरोग्य बोहिलाभं समाहिवर मुत्तमं दिन्तु।*

एक ओर इस स्वर की स्वीकृति दूसरी ओर सिद्ध के कर्तव्य या अधिकार का प्रश्न। विरोधाभास जैसी बात प्रतीत होती है। वस्तुतः तत्व की गंभीरता इतनी होती है कि बाहरी सतह पर विरोधाभास जैसा प्रतीत होता है, किन्तु आंतरिक स्तर पर पहुंच जाएं तो पूर्ण सामंजस्य प्रतीत होता है।

### उपादान : निमित्त

कारण की मीमांसा में सहकारी कारण का भी महत्वपूर्ण स्थान है। हम इस सचाई को जानते हैं—सिद्ध कुछ करेंगे नहीं किन्तु वे सहकारी कारण तो बनते ही हैं। यह प्रार्थना निमित्त या सहकारी कारण की प्रार्थना है। सिद्ध हमारे लिए सहकारी है, हमारा सहकार करते हैं। सिद्ध भक्ति में जो आत्मा परिणत है, उस आत्मा के लिए सिद्ध भी सहकारी बनते हैं। सिद्ध की स्तुति निमित्त कारण की स्तुति है। हम दोनों कारणों को सार्थक मानकर चलें। उपादान और निमित्त के अनेक विकल्प और अंग बन जाते हैं। ये दोनों विकल्पों के कारण ही जटिल बनते हैं इसलिए इनके लिए कोई एक नियम बनाना मुश्किल है। फिर भी यह निश्चित तथ्य है—जो उपादान में नहीं है, उसके लिए निमित्त कुछ नहीं कर सकता। जो उपादान में है, निमित्त में वह करने की शक्ति नहीं है। यदि निमित्त ऐसा करने लग जाए तो सारी व्यवस्थाएं गड़बड़ा जाएं। उपादान अपना काम करता है, पर कभी-कभी उसे निमित्त की जरूरत होती है, किन्तु निमित्त की कोई अनिवार्यता नहीं है। यह एक सामान्य नियम है। उपादान यदि सापेक्ष है तो निमित्त सहकारी बन सकता है। उपादान यदि निरपेक्ष है तो निमित्त अकिंचित्कर बन जाएगा।

*सापेक्ष सत्युपादाने, निमित्तं सहकारकम्।*

*निरपेक्षे ह्युपादाने, तदकिंचित्करं भवेत्॥*



## उपादान और ज्योतिष

अधिकांश लोग जन्मकुंडली बनवाते हैं। बच्चा जन्म लेता है, उसकी कुंडली बनाई जाती है। बहुत बार पूछा जाता है—क्या आप ज्योतिष में विश्वास करते हैं? ऐसा कौन है, जो जैन धर्म के तत्त्व को जानता है और ज्योतिष में विश्वास नहीं करता। जिसने जैन आगम सूर्य प्रज्ञप्ति को पढ़ा है, वह यह नहीं कह सकता—मेरा ज्योतिष में विश्वास नहीं है। जिसने महावीर को पढ़ा है, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव को पढ़ा है, वह ज्योतिष में अविश्वास नहीं कर सकता। सौरमण्डल के विकिरण हमें प्रभावित करते हैं। उपादान सापेक्ष है इसलिए हम उनसे प्रभावित होते हैं। यदि उपादान निरपेक्ष हो जाए तो ज्योतिष कोई काम नहीं करेगा। हम नियम को अनिवार्य या एकांगी न मानें। नियम सापेक्ष है। ज्योतिष का उपयोग है भी और नहीं भी है।

## शनि और शंकर

शनि ने शिव से कहा—महाराज ! मैं तो सब पर आता हूँ आप पर भी आऊँगा। अब मेरी साढ़े साती आने वाली है, आप सावधान रहें। शंकर बोले—ठीक है, कोई बात नहीं। शनि यह कहकर चला गया। शंकर एक गुफा में ध्यान लगा कर बैठ गए। सोचा—शनि मेरा क्या करेगा ? वे एक दिन नहीं, एक वर्ष नहीं, पूरे साढ़े सात वर्ष तक ध्यान मुद्रा में बैठे रहे। साढ़े सात वर्ष पूरे हुए। शनि शंकर के पास आया। शंकर को प्रणाम करते हुए शनि ने कहा—महाराज ! मैं अब जा रहा हूँ। शंकर ने कहा—अरे! तुम कह रहे थे, मैं आऊँगा। तुमने मेरा क्या बिगाड़ा ? शनि बोला—महाराज ! आप साढ़े सात वर्ष तक पत्थर की मूर्ति बने बैठे रहे और मैं क्या करता?

शंकर ने अपना उपादान ऐसा बना लिया, शनि कुछ नहीं कर सका।

## उपादान को बलवान बनाएं

जैन परंपरा के एक आचार्य बहुत बार कहते हैं—मैं अपने वर्ष भर का जन्म फल दिखा लेता हूँ। जब-जब यह लगता है—मेरा यह समय ठीक नहीं है, तब मैं न बाहर जाता हूँ, न व्याख्यान देता हूँ। उस समय मैं एकांत में रहता हूँ जप, तप, ध्यान आदि करता हूँ। मेरा वह समय ठीक चला जाता है। यह उपादान को बलवान बनाने का उपक्रम है। हम उपादान को बलवान बनाएं। उपादान कमजोर है तो कुछ नहीं होगा।

ज्योतिषी ने एक व्यक्ति को बताया—तुम्हारे शनि की साढ़े साती आने वाली है। व्यक्ति घबरा गया। उसने पूछा—महाराज ! मैं क्या करूँ ?

ज्योतिषी ने उपाय बताया—तुम दान करो।

किसका दान करूँ ?

काली भैंस का।  
 भैंस तो मेरे पास नहीं है।  
 कोई बात नहीं। तुम तिल का दान कर लो।  
 वह भी नहीं है।  
 एक काली कंबल दान में दे दो।  
 कंबल भी मैं नहीं दे सकता।  
 तो तुम एक बोरी कोयले का दान कर दो।  
 मेरा उतना सामर्थ्य भी नहीं है।

ज्योतिषी ने झिड़कते हुए कहा—चले जाओ यहां से। शनि तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ेगा। जो तुम्हारे पीछे निरन्तर लगा हुआ है, वह क्या बिगाड़ेगा ?

**निमित्त मूल नहीं है**

हम ध्यान दें उपादान पर। उपादान कैसा है ? निमित्त लंगड़ाता-सा है, वह बहुत थोड़ा काम करता है। हम निमित्त पर न अटकें। उपादान को शक्तिशाली बनाएं। एक प्रश्न है—साधना का प्रयोजन क्या है ? साधना क्यों की जाती है ? साधना है उपादान को शक्तिशाली बनाने के लिए। हमारा मन, हमारी चेतना और आत्मा शक्तिशाली बने, जिससे निमित्त को ग्रहण ही कम करे। यदि उपादान को शक्तिशाली नहीं बनाया, निमित्त पर ही अटके रहें तो अनंत-काल तक भी समस्याओं के चक्र से छुटकारा नहीं मिलेगा। हम निमित्त की उपेक्षा न करें और न उन्हें सर्वशक्तिमान् मानें। वे सब कुछ नहीं हैं। हमें द्रव्य और क्षेत्र प्रभावित करते हैं, काल और भाव प्रभावित करते हैं। ये सब हमें प्रभावित करते हैं किन्तु सिद्ध आत्मा को ये प्रभावित नहीं करते। जहां मुक्त आत्मा है, वहां क्या हवा नहीं है ? पृथ्वी और पानी के जीव नहीं हैं ? पुद्गल नहीं हैं ? वहां भी ये सब हो सकते हैं। पूरा आकाश-प्रदेश पुद्गलों से भरा पड़ा है। एक भी आकाश-प्रदेश ऐसा नहीं है, जहां पुद्गल न हों। पर मुक्त आत्मा इन सबसे प्रभावित नहीं होती। इसका कारण यही है—उपादान निरपेक्ष बन गया, इसलिए वहां निमित्त अकिंचित् कर बन जाते हैं, निमित्त की शक्ति क्षीण हो जाती है। वस्तुतः निमित्त कोई बनता ही नहीं है। द्रव्य द्रव्य है, क्षेत्र क्षेत्र है, काल काल है और भाव भाव है। जिसमें उपादान की क्षमता जाग गई, उसके लिए ये निमित्त बनते ही नहीं हैं। जहां उपादान प्रबल नहीं होता, वहां निमित्त प्रभावी बन जाते हैं। मूल निमित्त नहीं है, मूल है उपादान।

## मूल है उपादान

आदमी ने देखा—उद्यान में एक ओर वृक्ष हरे-भरे हैं, दूसरी ओर सूखे हैं। उसने माली से पूछा—भाई ! क्या बात है ? एक ओर पेड़-पौधे हरे-भरे हैं, फल-फूल से लदे हुए हैं, दूसरी ओर बिल्कुल शुष्क पड़ा है। क्या तुमने इस ओर ध्यान नहीं दिया ?

माली बोला—महाशय ! मैंने ध्यान तो दिया पर क्या करूं ? एक दुर्घटना घट गई।

क्या दुर्घटना घटी ?

‘मुझे किसी कारणवश बाहर जाना पड़ा। मैंने छोटे लड़के से कहा—तुम बगीचे का पूरा ध्यान रखना। वह उसमें प्रतिदिन पानी सींचने लगा। एक दिन उसके मन में विकल्प उठा—ये पौधे छोटे हैं और ये पौधे बड़े हैं। सब पौधों की ऊंचाई समान नहीं है और मैं सबको बराबर पानी दे रहा हूँ। सबको समान पानी देने का मतलब क्या है ? मुझे यह बेवकूफी नहीं करनी चाहिए। जिसकी जड़ जितनी बड़ी है, उसको उतना ही पानी देना चाहिए। उसने सोचा—पेड़ों की जड़ का पता लगाना होगा। उसने जड़ की खुदाई शुरू कर दी, जड़ को नापना शुरू कर दिया। खुदाई कर उसने सारे पेड़ों को उखाड़ दिया, सबकी जड़ें नाप लीं। एक चार्ट बना लिया—इस पौधे की इतनी बड़ी जड़ है और उस पौधे की इतनी बड़ी है। उसने उस चार्ट के हिसाब से पौधों को पानी देना शुरू किया किन्तु पौधे सूखते ही चले गए। उसकी बुद्धिमता और विवेक से मूल उपादान ही नष्ट हो गया।’

जब तक उपादान है, तब तक पानी और खाद का महत्त्व है। यदि उपादान ही नहीं है तो कोई कार्य बनता ही नहीं है। ये सब निमित्त हैं और उपादान के होने पर ही सहायक बनते हैं।

## समुद्रपाल का निदर्शन

उत्तराध्ययन का इक्कीसवां अध्याय है, ‘समुद्रपालीय’। उसका एक प्रसंग है। वणिक-पुत्र समुद्रपाल अपने प्रासाद के झरोखे में बैठा नगर की सुषमा को देख रहा था। उस समय उसने एक चोर को देखा। चोर को वध के लिए ले जाया जा रहा था। उसे देख उसका मन वैराग्य से भर गया। उसका मन बोल उठा—अहो ! यह अशुभ कर्मों का दुःखद अवसान है—

*तं पासिऊण सविग्गो, समुद्रपालो इण मब्बवी।*

*अहोऽसुभाण कम्माणं, निज्जाणं पावगं इमं।।*

इस घटना ने उसके मन पर गहरा असर किया। वह संसार से विरक्त हो मुनि बन गया। उसे एक चोर से अचौर्य की प्रेरणा मिल गई।

चोर का निमित्त मिला, समुद्रपाल प्रतिबुद्ध हो गया। प्रश्न हो सकता है—पुलिस प्रतिदिन न जाने कितने चोरों को पकड़ती है। उसमें क्या वैराग्य जागता है ? वह चोरों को देखती ही नहीं है, मारती-पीटती भी है। न जाने उनके साथ कैसा-कैसा व्यवहार करती है फिर भी उसमें कभी वैराग्य नहीं आता। न्यायाधीश के सामने चोरों को कितनी बार पेश किया जाता है। एक ही चोर बहुत बार न्यायाधीश के सामने चला जाता है पर न्यायाधीश को वैराग्य नहीं आता।

### उपादान से जुड़ा है निमित्त

न्यायाधीश ने चोर से कहा—मैंने तुम्हें कितनी बार फटकारा है। तुम मेरे सामने क्यों आते हो ? चोर ने जवाब दिया—महाशय ! मैं क्या करूँ ? मैंने पुलिस वालों से कहा—आप मुझे वहाँ मत ले जाइए, न्यायाधीश महोदय ने मनाही की है। फिर भी वे मुझे यहाँ ले आते हैं।

न्यायाधीश चोर को दण्ड देता है, फांसी की सजा सुना देता है। क्या कभी कोई न्यायाधीश वैरागी बना ? चोर को देखकर समुद्रपाल वैरागी क्यों बना ? हम इस बिन्दु पर चिन्तन करें, यथार्थ का पता चलेगा। निमित्त का अपना स्थान होता है। वह तब कारण बनता है, जब उपादान जाग जाता है। यदि उपादान न जागे, तो निमित्त निमित्त बनता ही नहीं है। एक ही घटना, एक ही तथ्य और सत्य किसी के लिए अच्छाई का निमित्त बन जाता है किसी के लिए बुराई का। निमित्त उपादान सापेक्ष है। जिसका जैसा उपादान, उसके लिए वैसा ही निमित्त बन जाता है।

### बदलता है परिणाम

एक व्यक्ति ने कहा—अमुक व्यक्ति की कुण्डली में ये नक्षत्र हैं और उसका यह परिणाम है, किन्तु यदि वह चाहे, अपने आपको बहुत शक्तिशाली बना ले तो यह परिणाम नहीं होगा।

परिणाम को बदला जा सकता है। वह नियति नहीं है, परिवर्तनीय है। वह संभव है उपादान के द्वारा। साधना की सारी पद्धति उपादान को बलवान् बनाने की पद्धति है। शब्द, गंध, रस और स्पर्श—ये सर्वत्र हैं। ये वीतराग को कभी प्रभावित नहीं करते। वे क्यों नहीं प्रभावित कर पाते ? यदि वे निमित्त हैं तो सबके लिए समान होने चाहिए। एक वीतराग भी उनसे प्रभावित होना चाहिए पर वह नहीं होता। उसका उपादान इतना शक्तिशाली बन गया कि उसके लिए वह निमित्त बनता ही नहीं है। वीतराग को कोई गाली दे। क्या वीतराग को क्रोध आएगा ? उसको कभी क्रोध नहीं आएगा। उसके लिए वह गाली निमित्त बनती ही नहीं है। एक साधारण आदमी को गाली दें

तो क्या होगा। वह फुफकारेगा ही नहीं, काटने भी आ जाएगा। क्योंकि उसका उपादान बहुत कमजोर है।

### अपना प्रभु शक्तिशाली बने

यह एक बहुत बड़ा विवेक है। निमित्त को सर्वथा गौण न मानें किन्तु निमित्त को उतना महत्त्व भी न दें, जितना उपादान का है। निमित्त को महत्त्व देते हुए भी उपादान को शक्तिशाली बनाना है। अवीतरागता से वीतरागता की ओर, अप्रमाद से प्रमाद की ओर, मिथ्यात्व से सम्यक्त्व की ओर वही व्यक्ति प्रस्थान कर सकता है, जो उपादान को जानता है। उपादान है आत्मा। जिसने आत्मा को नहीं पकड़ा, परमात्मा को नहीं पकड़ा, अपने प्रभु की शरण नहीं ली, उसे निमित्त जब चाहे तब कमजोर बना देता है। वह निमित्तों से बहुत प्रभावित हो जाता है। जो अपने प्रभु की शरण में चला जाता है, वह बहुत बच जाता है। हमारे भक्त-संतों ने बार-बार शरणागति की बात कही। उसका अर्थ यही है—अपना प्रभु शक्तिशाली बनता चला जाए, बाहर का प्रमाद कम होता चला जाए। मंत्रशास्त्र में कवच निर्माण का सिद्धांत प्रतिपादित है—जो कवच का निर्माण करना नहीं जानता, वह मंत्र की साधना ठीक प्रकार से नहीं कर सकता। कवच में व्यक्ति सुरक्षित हो जाता है। उस कवच को छेदकर कोई दुष्ट शक्ति प्रवेश नहीं कर सकती। बाहर निमित्त प्रस्तुत हैं पर वे कवच को भेद कर भीतर प्रवेश नहीं कर सकते। हम रामायण में पढ़ते हैं—लक्ष्मण ने एक रेखा खींच दी, रावण उसे भेद नहीं सका। अञ्जना ने एक रेखा खींच दी, शेर भीतर प्रवेश नहीं कर पाया। यह एक प्रकार का रक्षाकवच है। साधना करते समय वज्रपंजर का निर्माण भी इसीलिए किया जाता है। साधना का यह मूल सूत्र है—उपादान को शक्तिशाली बनाकर निमित्त की शक्ति को कम कर देना।

### बीमारी का कारण

हम व्यवहार के क्षेत्र में देखें। प्रत्येक व्यक्ति जब चाहे बीमार बन सकता है। एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं है, जिसके शरीर में अनेक बीमारियों के कीटाणु न हों। हमारे शरीर में सैकड़ों-सैकड़ों बीमारियों के कीटाणु भरे पड़े हैं। हमारे शरीर में जितने जर्मस हैं, उनका लेखा-जोखा करना भी मुश्किल है। फिर भी आदमी सहज ही बीमार नहीं बनता। जब उपादान कमजोर हो जाता है, तब वह बीमार बनता है। जिसका नाड़ी तंत्र कमजोर हो गया, रोगनिरोधक क्षमता या शक्ति कमजोर हो गई, वह बीमार बनता है।

समुद्रपाल को वैराग्य हुआ। उसके मन में चोर को देखकर अचौर्य की प्रेरणा

जाग गई। एक आकस्मिक निमित्त बन गया चोर। मूलतः समुद्रपाल का उपादान बहुत शक्तिशाली था, वह फूटना ही चाहता था। चोर का निमित्त मिला और वह प्रगट हो गया। व्यक्ति कुछ होना चाहता है और कोई निमित्त मिल जाता है तो व्यक्ति की चेतना जाग जाती है। कोई गुरु या मार्गदर्शक का योग मिलता है, व्यक्ति के भीतर की चाह आकार ले लेती है।

### छह माह के लिए

आचार्य भिक्षु सिरियारी से कुशलपुर की ओर जा रहे थे। मार्ग में अच्छे शुक्ल नहीं हुए। आचार्य भिक्षु ने कुशलपुर न जाकर नीमली की ओर जाने का निश्चय कर लिया। वे उस मार्ग को छोड़ नीमली की ओर जाने वाले मार्ग पर आ गए। श्रावक हेमराजजी सिरियारी से नीमली की ओर जा रहे थे। वे वैरागी थे। आचार्य भिक्षु ने कहा—हेमड़ा ! हम आ रहे हैं।

हेमराजजी बोले—स्वामीजी ! आपने तो कुशलपुर की ओर विहार किया था। फिर इधर कैसे ?

यही समझ ले कि आज हम तेरे लिए आए हैं।

आपने बड़ी कृपा की।

तू लगभग तीन वर्ष से कह रहा है—मेरी दीक्षा लेने की भावना है, पर यह बता—तू मेरे जीते जी दीक्षा लेगा या मरने के बाद ?

आप ऐसी बात क्यों करते हैं ? यदि आपको शंका हो तो नौ वर्ष बाद अब्रह्मचर्य सेवन का त्याग करा दें।

आचार्य भिक्षु ने त्याग करवा दिए। स्वामीजी ने कहा—लगता है तुमने ये नौ वर्ष विवाह करने की इच्छा से रखे हैं।

हां महाराज !

परन्तु तुम यह तो जानते हो—एक वर्ष विवाह होते-होते लग जाएगा।

हां महाराज ! इतना तो लग ही जाएगा।

यहां की प्रथा के अनुसार विवाह के बाद एक वर्ष तक स्त्री पीहर में रहेगी।

हां महाराज !

इस प्रकार तुम्हारे पास केवल सात वर्ष का समय रहेगा।

हां महाराज !

तुम्हें दिन में अब्रह्मचर्य सेवन का त्याग है इसलिए साढ़े तीन वर्ष ही रहेंगे।

हेमराजजी ने स्वीकृति सूचक सिर हिलाया।

तुम्हें पांच तिथियों में भी अब्रह्मचर्य सेवन का त्याग है।

हां महाराज !

दो वर्ष चार मास का ही समय बचता है। उसमें सारा समय भोग कार्य में नहीं लगता है। प्रतिदिन घड़ी भर का समय गिनो तो लगभग छह माह का समय ही रहता है।

हां महाराज !

तुम सोचो—छह माह के भोग के लिए नौ वर्ष का संयम खो देना कौन-सी बुद्धिमानी है ? तुम यह भी सोचो—यदि एक-दो संतान हो जाए तब फिर व्यक्ति मोह में उलझ जाता है। उस स्थिति में संयम ग्रहण करना कठिन हो जाता है।

आचार्य भिक्षु का यह लेखा-जोखा हेमराजजी के दिल को छू गया। उनकी वैराग्य भावना को आकार मिल गया।

**बाहर में न उलझें**

आचार्य भिक्षु की प्रेरणा और तर्कपूर्ण संबोध मिला, हेमराजजी श्रावकत्व से साधुत्व की भूमिका में पहुंच गए। प्रश्न है—यह प्रेरणा हेमराजजी में ही क्यों जगी? सैकड़ों लोग विवाह करने जाते हैं, आचार्य भिक्षु उन सबको नहीं समझा पाए। जिस व्यक्ति की उपादान चेतना प्रबल होती है, क्षयोपशम शक्तिशाली होता है, वह जाग जाता है। बीज को अंकुर बनना है, उसे मिट्टी, पानी और खाद का योग मिला, वह फूट पड़ा। बीज में उपादान शक्ति है। निमित्त मिला और अंकुरित हो गया।

अनेकांत दृष्टि को मानने वाला किसी एक बात के आधार पर निर्णय नहीं करता। निर्णय करते समय सावधानी बरतने की जरूरत है। हम केवल बाहर में ही न उलझ जाएं। तो व्यक्ति आत्म-निरीक्षण नहीं करता, अपनी अपूर्णताओं को नहीं देखता, अपनी आत्मा पर आए आवरणों पर ध्यान केन्द्रित नहीं करता या अपाय-विचय नहीं करता, वह शुक्ल ध्यान में, साधना की उच्च श्रेणी में जाने का अधिकारी नहीं बनता। शुक्ल ध्यान में वही व्यक्ति जा सकता है, जिसने अपाय विचय और विपाक विचय किया है।

**महामंत्र शांतिपूर्ण जीवन का**

‘पर से हट कर अपने आप को देखें’ इससे बड़ा अध्यात्म का सूत्र नहीं है। किसी पर आरोपण मत करो। ‘उसने मेरा यह कर दिया, मेरा काम बिगाड़ दिया’ यह बुद्धि जब तक रहेगी, मिथ्या दृष्टिकोण बना रहेगा। चाहे हम नव पदार्थ जान लें, आचार के क्षेत्र में सम्यग् दर्शन नहीं आएगा। हमारे भीतर यह चेतना जागे—निमित्त

निमित्त है, वह कुछ भी कर सकता है, पर मैं अपने उपादान पर ध्यान दूँ। मेरा उपादान ठीक है, तो निमित्त मेरा कुछ नहीं कर सकता। यदि मेरा उपादान शक्तिशाली है तो निमित्त मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकता। मेरे अस्तित्व को कुछ भी नुकसान नहीं पहुंचेगा। यह सम्यग् दर्शन जितना स्पष्ट और शक्तिशाली बनेगा, साधना की बात समाज में आएगी, आनंद प्रगटेगा, अखंड सुख और अखंड ज्योति का उद्भव होगा। यदि हम दूसरों के भँवर में उलझे रहे तो सुख, शान्ति और आनन्द की उपलब्धि नहीं होगी। यह ऐसा भँवर और आवर्त है, जिसका न आर है और न पार। समुद्रपाल के निदर्शन का बोध पाठ यही है—हम अपने उपादान को शक्तिशाली बनाएं। यह बोधपाठ सफल और शांतिपूर्ण जीवन के लिए महामंत्र का काम कर सकता है।



## असहयोग का नया प्रयोग

हम प्रातःकाल जैन विश्व भारती परिसर में गमन योग कर रहे थे। एक स्थान पर कुछ देर रुके। मैंने देखा—चिड़िया बहुत तेजी से आ रही है और फुदक फुदक कर वापस जा रही है। ध्यान दिया तो पता चला—मक्खी जैसे जीव वहां घूम रहे थे। चिड़िया उन्हें चट करती जा रही थी। वह उन्हें बहुत फुर्ती के साथ चट कर रही थी। बचाव का कोई विकल्प उन जीवों के सामने नहीं था।

### शक्ति का सिद्धान्त

मन में प्रश्न उभरा—इस दुनिया में शक्ति का सिद्धान्त है। जिसके पास शक्ति है, वह कुछ भी कर लेता है। उन जीवों ने चिड़िया का क्या बिगाड़ा? प्रश्न यह नहीं है कि उन जीवों ने क्या बिगाड़ा नहीं बिगाड़ा? प्रश्न है शक्ति का। शक्ति किसके पास है। इस शक्ति के सिद्धान्त के आधार पर यह स्वर उच्चरित हुआ—जीवो जीवस्य जीवनम्। मत्स्यन्याय का अर्थ यही है—बड़ी मछली छोटी मछली को निगल जाती है। यह सिद्धान्त दुनिया के इस छोर से उस छोर तक व्यापक बना हुआ है। बड़े जीव छोटे जीवों निगलते जा रहे हैं, खाए जा रहे हैं। शायद प्रकृति के इस नियम के साथ ही मांसाहार चलता है। उसको कैसे अस्वाभाविक माना जाए? बेचारे मूक पशु हैं। उनमें सामर्थ्य नहीं है इसीलिए शिकार भी चल रहा है। कितने निरीह प्राणी मारे जा रहे हैं। प्रसाधन सामग्री के लिए न जाने कितने पशुओं का वध किया जा रहा है। मनुष्य के कोरा प्रसाधन होता है और हजारों प्राणी मौत के मुंह में चले जाते हैं। आदमी मुलायम जूते पहनता है, मुलायम बेग रखता है। वे मुलायम कैसे बनते हैं? बछड़ा जन्मता है। थोड़ा बड़ा होते ही उसे पीट पीट कर चमड़ी को मुलायम कर दिया जाता है। उस जीवित बछड़े की चमड़ी से बनते हैं ये मुलायम बैग। यह क्रूरता का निदर्शन है।

### शक्ति और क्रूरता

ऐसा लगता है—शक्ति और क्रूरता जुड़ी हुई है। क्रूरता और शक्ति को अलग अलग नहीं किया जा सकता। दोनों साथ साथ चलते हैं। लोगों को मखमली टोपियां

अच्छी लगती हैं। कैसे बनती हैं ये टोपियां। न जाने कितने प्राणियों को सताया और मारा जाता है तब ये निर्मित होती हैं। बढ़िया जूते, बढ़िया बैग, अमुक अमुक बढ़िया उपकरण—इन सबके लिए हजारों-लाखों प्राणियों को क्रूरता से सताया जाता है, पीटा और मारा जाता है तब इन चीजों का उत्पादन संभव बनता है। आदमी इन प्राणियों की करुण आह से बने पदार्थों को सुख और सुविधा का कारण मानता है। यह कहना चाहिए—शक्ति का सिद्धान्त सार्वभौम है तो क्रूरता का सिद्धान्त भी सार्वभौम है। कुछ पशु मांसाहारी हैं। उनके लिए क्रूरता कहें या न कहें किन्तु शक्ति का सिद्धान्त स्पष्ट है। उनका यह स्वभाव बन गया—दूसरों को मारना और अपना जीवन चलाना। शेर, चीता, बाघ—ये मांसाहारी हैं। प्राणियों को मार कर खाते हैं। इसे हम क्रूरता कहें या प्रकृति का नियम, पर यह सिद्धान्त अवश्य लागू होता है—समर्थ असमर्थ को खाकर अपना जीवन चलाता है।

### लोभ से पैदा होती है क्रूरता

मनुष्य के साथ शक्ति और क्रूरता—ये दोनों बातें जुड़ जाती हैं। मनुष्य में केवल शक्ति की बात भी नहीं है और अनिवार्यता की बात भी नहीं है। वह अपने बड़प्पन के लिए, अपनी सुख-सुविधा या आराम के लिए भी ऐसा करता है इसलिए उसके साथ साथ क्रूरता भी पनप गई। प्राचीनकाल में गायों को इतने क्रूर तरीके से दुहा जाता था, जिससे पूरा दूध निकल जाए। आजकल लोग पूरा दूध निकालने के लिए इंजेक्शन लगाते हैं। आदमी में लोभ होता है। लोभ क्रूरता पैदा करता है। क्रूरता के साथ बहुत सारी बातें आ जाती हैं। शक्ति, क्रूरता और लोभ का ऐसा गठबंधन है, जिसके कारण अनेक निरीह पशु मारे जाते हैं। वह आदमी धन्य होता है, जो इससे बच पाता है। पशुओं में चिन्तन नहीं है। वे पहले जैसे थे, आज भी वैसे ही हैं। मनुष्य में चिन्तन का विकास हुआ है इसलिए उसने शक्ति को सीमित करने का सिद्धान्त भी बनाया।

### दो चिन्तनधाराएं

शक्ति है पर शक्ति का संयम भी करना चाहिए। जिस दिन यह स्वर निकला, उस दिन दुनिया में एक महान् सत्य की उद्घोषणा हुई। जिसने यह अनुभव किया—‘सब जीव समान हैं, प्राणी मात्र मेरे मित्र हैं’, उसने सबसे बड़े विज्ञान और सत्य की खोज की। कितना उदात्त सिद्धान्त है—सबको अपने समान समझ लेना किसी को सताने की बात मन में न आना। जब यह विचार उपजा, मनुष्य समाज में दो प्रकार की चिन्तन धारा चल पड़ी। एक वह चिन्तन धारा, जो शक्ति और क्रूरता में विश्वास

करने वाली है। एक वह चिन्तन धारा, जो करुणा, अहिंसा और मैत्री में विश्वास करने वाली है।

### करुणा का निदर्शन

श्रीमद् राजचन्द्र की घटना को हम जानते हैं। हम इस संदर्भ में देखें—करुणा का कितना विकास हुआ था। राजचंद्र ने सौदा किया, उसमें उसे पचास हजार का लाभ हो रहा था। उस समय पचास हजार की कीमत भी बहुत थी। जिसके साथ सौदा किया, वह बहुत मुसीबत में फंस गया। राजचंद्र ने उस एग्रीमेंट के पत्र को मंगाया और यह कहते हुए फाड़ दिया—राजचंद्र दूध पी सकता है लेकिन किसी का खून नहीं पी सकता।

यह है मनुष्य में करुणा के विकास का निदर्शन। कहां से कहां तक पहुंचा दिया प्रकृति के नियम को। शक्ति के सिद्धान्त को अतिक्रान्त कर श्रीमद् राजचन्द्र ने अहिंसा का जीवंत रूप प्रस्तुत कर दिया।

### मानवीय चेतना

बीदासर के संग्रहात श्रावक हुए हैं श्री उत्तमचंद जी बैंगानी। उनके युवा पुत्र का देहावसान हो गया। पता चला—यह जो हीरे की अंगूठी है, जिसे आपका पुत्र पहनता है, वह अच्छी नहीं है। रत्नों की यह प्रकृति है। यदि वह अच्छा आता है तो निहाल कर देता है और बुरा आता है तो घर को बरबाद कर देता है। मित्रों ने सलाह दी—इस अंगूठी को बेच दें। उत्तमचंद जी ने कहा—मैं इसे बेचूंगा नहीं। इसे कुएं में डाल दो। उस अंगूठी में बहुत कीमती हीरा था। मित्रों ने रोकने की कोशिश की—इतना कीमती हीरा कुएं में क्यों डाल रहे हो। इसे किसी को बेच दो। हीरे खरीदने वाले बहुत मिल जाएंगे। उत्तमचंद जी ने भावपूर्ण शब्दों में कहा—मैं इस हीरे के कारण किसी पिता को पुत्र वियोग से पीड़ित देखना नहीं चाहता। हीरे के कारण मेरा पुत्र चला गया, उसकी पीड़ा मैंने भोगी है। मैं नहीं चाहता, किसी पिता को पुत्र वियोग से पीड़ित होना पड़े। बैंगानीजी ने वह अंगूठी कुएं में डलवा दी।

### अरिष्टनेमि की जिज्ञासा

यह है मानवीय चेतना का विकास। जिसमें करुणा का इतना विकास होता है, वह किसी को दुःख देने की बात सोच ही नहीं सकता। इन सारे संदर्भों में अरिष्टनेमि द्वारा विवाह के अस्वीकार की बात को पढ़ते हैं तो कोई आश्चर्य नहीं होता। वे तीर्थंकर होने वाले थे, उनकी अतीन्द्रिय चेतना जागृत थी, करुणा और अहिंसा विकसित थी। उनके जीवन का वह घटना प्रसंग सचमुच उदात्त करुणा का निदर्शन है।

राजा वसुदेव के पुत्र अरिष्टनेमि का विवाह राजा उग्रसेन की पुत्री राजीमती से होने वाला था। अरिष्टनेमि की वर-यात्रा प्रारंभ हुई। वह विवाह मंडप के पास आई। उस समय अरिष्टनेमि करुण शब्दों को सुनकर द्रवित हो उठे। अरिष्टनेमि ने सारथी से पूछा--माई ! यह क्या है ? सुख की चाह रखने वाले ये निरीह प्राणी इन बाड़ों और पिंजरों में क्यों रोके हुए हैं--

*कस्स अट्ठा इमे पाणा, ए ए सच्चे सुहेसिणो।*

*वाडेहिं पंजरोहिं च, सन्निरुद्धा य अच्छहिं ?*

सारथी ने कहा--श्रीमन् ! ये भद्र प्राणी आपके विवाह में आए हुए बहुत लोगों को खिलाने के लिए यहां रोके हुए हैं।

यह बात सुन अरिष्टनेमि के मन पर गहरी चोट लगी। उनके मन में घोर वेदना हुई। ऐसा लगा, जैसे स्वयं को बांधा गया है। अरिष्टनेमि ने सोचा--यदि मेरे निमित्त से इन निरीह जीवों का वध होता है तो यह मेरे लिए श्रेयष्कर नहीं है।

### हिंसा मनोरंजन के लिए

जब तक सही अर्थ में करुणा या अहिंसा का विकास नहीं होता तब तक दूसरों के साथ तादात्म्य भाव नहीं जुड़ता। दुनिया में ऐसे लोगों की भी कमी नहीं है, जो दूसरों को दुःखी देखकर खुश होते हैं। समाचार पत्रों में पढ़ा-मनोरंजन के लिए खरगोशों को दौड़ाया जाता है, उनके पीछे कुत्तों को छोड़ दिया जाता है। जैसे जैसे वे कुत्ते खरगोशों को खाते हैं, उनको कष्ट होता है और लोग तालियों की गड़गड़ाहट से आकाश को गुंजा देते हैं। छोटे छोटे बच्चे मेंढकों को उछालते हैं, मारते हैं। वे मारते हैं तब बच्चों को बहुत मजा आता है। दूसरों को दुःख देने में, सताने और मारने में शायद बहुत लोगों को खुशी होती है। ऐसे लोग विरल हैं, जिनमें अहिंसा की निर्मल चेतना जाग जाती है। 'सब प्राणी समान है जैसा मैं हूँ वैसे ही दूसरे जीव हैं'--इस चेतना का जागना बहुत कठिन है। धार्मिक लोगों में यह चेतना जाग गई, ऐसा नहीं कहा जा सकता। महावीर के समय में भी धार्मिक लोग हिंसा करते थे इसलिए महावीर को समझाना पड़ा--अंगारा अपनी हथेली पर रखो, हथेली जल जाएगी। तुम सोचो--जिस प्रकार अंगारे से तुम्हारे हाथ जलते हैं, वैसे ही दूसरों के जलते हैं। प्राचीन काल में ऐसी क्रूरताएं चलती थी--व्यक्ति के कान में गर्म गर्म सीसा डाल दिया जाता, अंग भंग कर दिया जाता। महावीर को इन सारे संदर्भों में अहिंसा के लिए बहुत संघर्ष करना पड़ा। उन्होंने अहिंसा के क्षेत्र में कई नई दृष्टियां दीं। कैसे मनुष्य की चेतना उदात्त बने और जो क्रूरता के बीज हैं, वे नष्ट हो जाएं। यह

अभियान महावीर के समय ही नहीं चला, उससे बहुत पहले प्रारंभ हो चुका था। अरिष्टनेमि का प्रसंग इसका स्वयंभू साक्ष्य है।

अरिष्टनेमि ने उस समय जो कार्य किया, उसे आज की भाषा में सविनय अवज्ञा आंदोलन या सविनय असहयोग कहा जा सकता है। अरिष्टनेमि ने कहा—मैं विवाह नहीं करूंगा।

### सत्याग्रह : असहयोग

अरिष्टनेमि विवाह करने के लिए गए थे और विवाह करने से अस्वीकार कर दिया। यह असहयोग आंदोलन का उदात्त रूप था। प्राचीन काल में ऐसी अनेक घटनाएं घटी हैं, जिनमें उद्दण्डता के साथ नहीं किन्तु सविनय असहयोग किया गया। वे उस घटना के साथ नहीं जुड़ते, जिससे सहमत नहीं होते। मैं यह नहीं करूंगा यह निश्चय कर लेते। उनमें अस्वीकार की शक्ति प्रबल थी। जो व्यक्ति अकेला जीना जानता है, अकेला रहना जानता है, स्वयं में आनंद को खोज लेता है, उसे असहयोग करने में कोई कठिनाई नहीं होती। जिसके मन में कोई चाह और आकांक्षा नहीं होती, जो अपने आप में संतुष्ट है, वह असहयोग कर सकता है। अरिष्टनेमि ने सचमुच असहयोग किया। दूसरे शब्दों में इसे सत्याग्रह कहा जा सकता है। सत्याग्रह और असहयोग—ये दो गांधी युग के विशेष शब्द हैं, पर इनका प्रयोग अतीत में भी हो चुका है।

अरिष्टनेमि ने रथ को मोड़ने का आदेश किया। रथ विवाह मण्डप की ओर न जाकर दूसरी दिशा में मुड़ गया। यह देख सब अवाकू रह गए। अनेक लोगों ने अरिष्टनेमि से कहा—आप इस प्रकार न मुड़ें। ऐसा करना ठीक नहीं है। अरिष्टनेमि अपने निश्चय पर अटल रहे। श्रीकृष्ण, वासुदेव आदि के आग्रह को भी अरिष्टनेमि ने अस्वीकार कर दिया। राजीमती की चीख भी उनके निश्चय को नहीं बदल सके। बहुमत का अर्थ

अरिष्टनेमि ने पुनः मुड़कर नहीं देखा। उनके मन में यह भाव जाग गया—मेरे कारण कितने प्राणी पीड़ित और दुःखी हो रहे हैं। मैं किसी को सताना नहीं चाहता, दुःखी और पीड़ित नहीं करना चाहता। मैं यह सब नहीं देख सकता। मुझे अपने आप में रहना है, अकेले में रहना है। वे सचमुच अकेले बन गए। जो व्यक्ति अहिंसा में विश्वास करता है, उसे अकेला रहना या चलना स्वीकार करना होता है। महावीर हो, अरिष्टनेमि या गांधी, अहिंसा की आस्था वाले व्यक्ति को अकेले चलना होता है। जो बहुमत की बात देखेगा, वह कभी ऐसा नहीं कर पाएगा। वह सोचेगा—अमुक व्यक्ति

क्या कर रहा है ? शायद इसीलिए गांधी जी ने कहा था--बहुमत का अर्थ है नास्तिकता। अल्पमत में होना कोई बुरी बात नहीं है। जो सत्य में चलेगा, उसे सदा अल्पमत में चलना पड़ेगा। बहुमत सदा दूसरे प्रकार का होता है। सत्य के साथ कभी बहुमत जुड़ता नहीं है। शायद यही कारण रहा--महावीर के साथ बहुत लोग नहीं जुड़े, दूसरों के साथ बहुत लोग जुड़ गए।

### सत्याग्रह : नया प्रयोग

अरिष्टनेमि ने जो प्रयोग किया, वह सत्याग्रह या असहयोग का नया प्रयोग था। इस प्रयोग की किसी ने किसी रूप में व्याख्या की और किसी ने किसी रूप में। इसकी सामयिक सत्य और शाश्वत सत्य--दोनों संदर्भों में व्याख्या की जा सकती है। वह एक महान् प्रयोग था। विवाह का स्वीकार या अस्वीकार बहुत छोटी बात है। बहुत सारे लोग विवाह नहीं करते। विवाह को टुकराने वाले भी बहुत हैं। कुछ लोग अहंकारी होते हैं। वे अपने अहंकार के कारण विवाह छोड़कर चले जाते हैं। कुछ लोग लोभी होते हैं जो दहेज के कारण विवाह छोड़कर चले जाते हैं। क्या विवाह का अस्वीकार बड़ी बात है? समाचार पत्रों में ऐसी घटनाएं पढ़ने को मिलती रहती है--दहेज पूरा नहीं मिला, विवाह करने से इन्कार कर दिया। यह भी विवाह का अस्वीकार है। अहंकार के कारण आपस में अनबन हो जाती है। वर और वधु पक्ष के बीच इतना तनाव और झगड़ा हो जाता है कि विवाह के लिए आई बारात को बैरंग लौटना पड़ता है। यह विवाह का अस्वीकार है पर कोई बड़ी बात नहीं है। बड़ी बात है वह सिद्धान्त जो अस्वीकार की पृष्ठभूमि में छिपा है।

### नेम-राजुल

वस्तुतः इस घटना से अहिंसा का विराट् सिद्धान्त, सत्याग्रह या सविनय असहयोग का जो सिद्धान्त फलित हो रहा है, वह बहुत महत्त्वपूर्ण है। अरिष्टनेमि चले गए, राजीमती से विवाह नहीं हुआ। राजीमती अरिष्टनेमि की प्रतीक्षा करती रह गई। यह घटना घटित हो गई और इससे उपजा सिद्धान्त शेष रह गया। इस घटना प्रसंग को आधार बनाकर जैन आचार्य ने बहुत कुछ लिखा। नेम-राजुल पर काव्य लिखे गए। गीत, नाटिकाएं, लोच आदि अनेक विधाओं में इस प्रसंग को उकेरा गया। आज के साहित्यकार मानते हैं--जैनों में श्रृंगार का कोई विषय बचा है तो वह नेम-राजुल का प्रसंग बचा है। कालिदास ने मेघदूत लिखा। ऐसा घटना प्रसंग कोई जैन कवि नहीं लिख सका। इसीलिए स्व. राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर कहते थे--जैन मुनि कभी कवि नहीं हो सकता। काव्य के लिए श्रृंगार और रौद्र--ये दो रस चाहिए। जैन दोनों

से नफरत करते हैं। ऐसा काव्य, जैसा मेघदूत है, जैन कवि कभी नहीं रच सकता। यदि जैन मुनि ऐसा काव्य लिख दे तो शायद जैन समाज उसे मानने के लिए तैयार ही न हो। इस स्थिति में जैन कवि क्या करते ? एक कहावत चल पड़ी—यदि शिव पार्वती न होते तो वैष्णव कवि क्या करते और यदि अरिष्टनेमि-राजीमती न होते तो जैन कवि क्या करते। इस विषय पर विशाल साहित्य रचा गया है। उसमें बहुत कुछ अनजाना रहा। कुछ विद्वानों के प्रयत्न से उस साहित्य की सूचियां बन गईं और वह साहित्य प्रकाश में भी आया।

### हृदयस्पर्शी चित्रण

यह बहुत विशिष्ट प्रसंग है—अरिष्टनेमि चले गए, उस समय राजीमती की स्थिति का जो चित्रण किया गया है, वह मेघदूत की अनुकृति सा बन जाता है। यक्ष ने अपना सदेश मेघ के माध्यम से प्रेषित किया और राजीमती ने न जाने किन किन का आश्रय लिया। इस पर एक सुन्दर काव्य लिखा जा सकता है और जिसमें अनेक तत्त्वों का हृदयस्पर्शी चित्रण किया जा सकता है। जैन परंपरा की साहित्य विधा में यह एक अनूठा प्रयोग है। इस सचाई से इन्कार नहीं किया जा सकता—तब तक कोरा सिद्धान्त ग्राह्य नहीं बनता, गले नहीं उतरता, जब तक उसके साथ साहित्यिक सरसता का योग नहीं होता। सरसता बहुत महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। एक प्रकार से अहिंसा और करुणा का व्यावहारिक रूप है सरसता। काव्य को सरस बना दिया जाए, उसमें कठोरता न रहे। कूरता का व्यावहारिक रूप है कठोरता। महाभारत लिखा गया किन्तु लिखने वालों ने इतनी सरसता के साथ लिखा कि पढ़ने में रस आता है, बात सीधी गले उतर जाती है। यदि वही बात धमाके के साथ कही जाए तो ऐसा लगेगा—खीर में मूसल डाल दिया गया है। व्यक्ति बात सुनते ही चमक जाता है, गले उतरने की बात कहीं रह जाती है।

### आदर्श हैं अरिष्टनेमि

उत्तराध्ययन सूत्र की यह विशेषता है कि इसमें तथ्य को सरसता से समझाया गया है। यह कथा—सृजन का भी आधार सूत्र है। इसके आधार पर अनेक काव्यों का सृजन और प्रणयन किया जा सकता है। हिन्दी और संस्कृत में काव्य बनाए जा सकते हैं, उन्हें काफ़ी विकास दिया जा सकता है। दस से अधिक काव्य बनाने की वस्तु-सामग्री उत्तराध्ययन में विद्यमान है। अपेक्षा है कथावस्तु को हृदयगम करने की, उसे काव्यात्मक रूप देने की और सरसता के ढांचे में ढालने की। इस संदर्भ में अरिष्टनेमि का प्रसंग बहुत मार्मिक और हृदयग्राही है। इस कथावस्तु में इतने घुमाव हैं कि उसके आधार पर अनेक तथ्यों की सरस अभिव्यक्ति संभव बन सकती है।

हमारे लिए अरिष्टनेमि एक आदर्श हैं। उनके जीवन प्रसंग से हम अधिक सीख सकें या नहीं, पर कुछ अवश्य सीखें। अस्वीकार की शक्ति, असहयोग की शक्ति प्राणि मात्र के प्रति करुणा और अहिंसा का विकास—ये चार बातें जीवन में आशिक रूप से उतरनी शुरू हो जाए। क्रूरता धुल जाए, प्राणिमात्र के प्रति करुणा जागे। मनसा वाचा कर्मणा मैं किसी को दुःखी बनाने का निमित्त न बनूं, यह भावना बलवती बने, इतना कुछ घटित कर सकें तो अरिष्टनेमि की स्मृति हमारे लिए बहुत कल्याणकारी और वरदायी सिद्ध होगी।



## रूपान्तरण

### मार्मिक उत्तर

एक राजा समर्थ और स्वतंत्र चिन्तन का धनी था। वह विद्वानों, कवियों और साहित्यकारों को बहुत प्रोत्साहन देता, खुले हाथ दान देता। विद्वानों को कभी अपनी गरीबी का अहसास कराने की जरूरत ही नहीं होती। जब इस प्रकार राज्य लक्ष्मी दूसरों के पास जाने लगी तब अधिकारी चिन्तित हो उठे। एक अधिकारी ने राजा से निवेदन किया—राजन्! आपके पुरखों-पूर्वजों ने बहुत धन संचित किया है, खजाना भरा है। आप उसे खुले हाथ लुटा रहे हैं, खजाना खाली हो जाएगा। क्या आपको ऐसा करना चाहिए? कुछ चिन्तन करें?

राजा ने कहा—मैं जो करता हूँ, सोच समझकर करता हूँ। तुम कहते हो—पूर्वजों ने इतना किया लेकिन क्या मैं उसका चौकीदार हूँ।

राजा ने बहुत मार्मिक उत्तर दिया—मैं चौकीदार नहीं हूँ। मैं राजा हूँ। चौकीदार का काम है रखवाली करना। जो खजाना भरा हुआ है, उसकी रखवाली करना। अगर मेरे पिता ने मुझे चौकीदार बनाया होता तो मैं एक पैसा भी खर्च नहीं होने देता, चोरी भी नहीं होने देता पर मैं चौकीदार नहीं हूँ। मैं मालिक हूँ। मैं खजाने को भर भी सकता हूँ और खाली भी कर सकता हूँ

### मुश्किल है मालिक होना

मालिक होना बहुत मुश्किल है। अधिकांश लोग चौकीदारी का काम करते हैं। ईश्वर होना या मालिक होना प्रत्येक व्यक्ति के लिए संभव नहीं है।

जब साध्वी राजीमती ने देखा—रथनेमि अब चौकीदार बन रहा है। उसका ईश्वरपना छूट रहा है। राजीमती ने रथनेमि को संबोधित करते हुए कहा—मुनिवर! एक दिन आप साधुत्व के मालिक बने थे, ईश्वर बने थे। अब ऐसा लगता है—आप ईश्वर को छोड़कर चौकीदार बन रहे हैं। जिस खजाने के आप मालिक हैं, उसका मालिकपन समाप्त हो रहा है।

गोवालो भाण्डवालो वा जहा तद्व्य गिस्सरो।  
एवं अगिस्सरो तं पि, सामण्णस्स भविस्ससि।

### रथनेमि का प्रस्ताव

घटना प्रसंग इस प्रकार बना—अरिष्टनेमि राजीमती को छोड़कर प्रव्रजित हो गए। राजीमती के मन पर गहरा आघात लगा। इस प्रकार छोड़कर चले जाना उसके लिए असह्य बन गया। अरिष्टनेमि के भाई रथनेमि इसे अवसर समझ कर राजीमती के पास आने जाने लगे। रथनेमि राजीमती को आश्वस्त करते हुए कहा—देवी! विषाद मत करो। अरिष्टनेमि वीतराग हैं। वे विषयानुबंध नहीं करते। तुम मुझे स्वीकार करो। मैं जीवन भर तुम्हारी आज्ञा मानूंगा।

### राजीमती का उत्तर

राजीमती का मन काम भोगों से विरक्त हो चुका था। उसे रथनेमि का प्रस्ताव उचित नहीं लगा। एक बार राजीमती ने मधु घृत संयुक्त पेय पीया। जब रथनेमि आए, राजीमती ने मदन फल खा उल्टी की। राजीमती से कहा—आप इसे पीएं।

‘वमन किए गए पेय को कैसे पीऊं?’

‘क्या तुम यह जानते हो?’

‘यह बात तो छोटा बालक भी जानता है।’

‘यदि यह बात है तो मैं भी अरिष्टनेमि द्वारा वान्त हूं। मुझे ग्रहण करना क्यों चाहते हो? धिक्कार है तुम्हें, जो वान्त को पीने की इच्छा करते हो। इससे तुम्हारा मरना श्रेयस्कर है।’

धिरत्थु ते जसोकामी, जो तं जीवियकारणा।

वंत इच्छसि आवेउं, सेयं ते मरणं भवे॥

### फिर फिसल गए

राजीमती के संबोधन से रथनेमि आसक्ति से उपरत हो गए। अरिष्टनेमि केवली बन गए। रथनेमि भी प्रव्रजित हुए। राजीमती भी अनेक राजकन्याओं के साथ प्रव्रजित हो गईं। एक बार अरिष्टनेमि रैवतक पर्वत पर समवसुत थे। साध्वी राजीमती आदि साध्वियां उनकी वंदना के लिए जा रही थीं। अचानक वर्षा प्रारंभ हो गई। सभी साध्वियां इधर-उधर गुफाओं में चली गईं। राजीमती जिस गुफा में गईं, मुनि रथनेमि उसमें पहले से ही साधनारत थे। राजीमती ने अपने कपड़े सुखाने के लिए वस्त्रों को फैलाया। राजीमती को यथाजात (नग्न) देख रथनेमि का मन विचलित हो गया। अचानक राजीमती ने भी रथनेमि को देख लिया। वह शीघ्र ही अपनी बाहों से अपने आपको ढंक्ते हुए बैठ गईं।

उस समय मुनि रथनेमि ने साध्वी राजीमती ने कहा—भद्रे ! मैं रथनेमि हूँ। सुरूपे चारुभाषिणी ! तुम मुझे स्वीकार करो। तुम्हें कोई पीड़ा नहीं होगी। हम भोग भोगें। निश्चित ही मनुष्य जीवन दुर्लभ है। हम भुक्त-भोगी हो फिर जिन मार्ग पर चलेंगे।

रथनेमि अहं भद्रदे ! सुरूपे ! चारुभाषिणी !  
मम भया हि सुययू ! न ते पीला भविस्सई॥  
एहि ता भुजिमो भोए, माणुस्सं सुदुल्लहं।  
भुत्तभोगा तओ पच्छा, जिणमग्गं चरिस्सिमो॥

### बहुश्रुत साध्वी

रथनेमि की इस प्रार्थना पर राजीमती ने जो तर्क पूर्ण संबोधन दिया, उसने रथनेमि के पतन को उत्थान में बदल दिया।

हम केवल कथा को न पढ़ें। साध्वी राजीमती ने जो तर्क दिए हैं, उनका अनुशीलन भी करें। वे बहुत मार्मिक तर्क थे शायद इसीलिए राजीमती को शीलवती के साथ-साथ बहुश्रुत भी कहा गया है। उसने जो तर्क प्रस्तुत किए हैं, उन्हें पढ़कर ऐसा लगता है—सचमुच वह बहुश्रुत साध्वी थी। उसके तर्क इतने बंधक थे, रथनेमि को चिन्तन के लिए बाध्य होना पड़ा। वे चौकीदारी से हटकर पुनः श्रामण्य मार्ग पर प्रस्थित हो गए।

राजीमती ने कहा—मुनिवर ! आप चिन्तन करें। आप ग्वाले को जानते हैं। चरवाहा सैकड़ों गायों का झुण्ड लेकर जंगल में जाता है। वह गायों को चराता है, उनकी रखवाली करता है। शाम का समय होता है, वह गायों को लेकर लौट आता है। गायों को कुएं पर पानी पिला देता है और गाएं अपने अपने घरों की ओर चली जाती हैं। शाम को ग्वाले से पूछा जाए—तुम्हारे पास कितनी गाएं हैं। वह कहेगा—एक भी नहीं है। यदि उसे दूध की जरूरत पड़ जाए जो कहीं से खरीद कर या मांग कर लाना पड़ता है। उसके पास दूध भी नहीं है। वह गोपाल कहलाता है किन्तु उसे गायों की रखवाली करने का अधिकार है। वह उनका मालिक नहीं है।

### ग्वाला : खजांची

राजा के खजांची होता है। उसके पास खजाने की चाबी होती है। वह अरबों-खरबों रुपये के धन और जेवरात की सुरक्षा करता है किन्तु यदि उसे पचास रुपये की जरूरत हो तो कहीं से मांग कर व्यवस्था करता है। खजाना उसके लिए कुछ भी नहीं है। उस पर उसका कोई अधिकार नहीं है। यदि वह चोरी कर ले तो मुसीबत पैदा हो जाए।

ग्वाले का गायों पर अधिकार नहीं है और खजांची का खजाने पर अधिकार नहीं है। मुनिवर ! क्या आपका श्रामण्य पर अधिकार है ? आपने उस पर अपना अधिकार खो दिया है। अब आप ईश्वर नहीं रहे, केवल चौकीदार बन गए हैं।

मुनि रथनेमि के मानस पर चोट लगी। उन्होंने सोचा--कितनी सही बात कही जा रही है--मैं अपना ईश्वर नहीं रहा।

**ईश्वर कौन है ?**

जो व्यक्ति ईश्वर नहीं होता, वह कहीं का नहीं होता, केवल बिचौला होता है। न इधर का रहता है और न उधर का रहता है। हम ग्वाले को देखें। वह सारे दिन जंगल में भटकता है, सर्दी गर्मी को सहता है, भूख-प्यास को सहता है। उसे मिलता क्या है ? गायों के दूध पर भी उसका अधिकार नहीं है। दूध पर अधिकार है गायों के अधिपति का। यही स्थिति तब बनती है, जब व्यक्ति का अपने श्रामण्य पर अधिकार नहीं होता, वह अपने श्रामण्य का ईश्वर नहीं होता।

बहुत महत्वपूर्ण प्रश्न है--ईश्वर कौन हो सकता है ? श्रामण्य का ईश्वर वही हो सकता है, जिसने अपनी स्वतंत्र चेतना से श्रामण्य का स्पर्श किया है। जो दूसरों के द्वारा संचालित बना, उसका ईश्वरत्व समाप्त हो गया। बहुत सारे काम ऐसे होते हैं, जो दूसरों के द्वारा संचालित होते हैं पर अपने द्वारा संचालित हुए बिना उसमें जो ईश्वरत्व प्रकट होना चाहिए, वह नहीं हो पाता।

**किसके कहने पर**

आगम साहित्य के व्याख्या ग्रंथों का एक कथा प्रसंग है। एक राजा ने कोई निर्णय लिया। वह निर्णय प्रजा के अनुकूल नहीं था। राजा ने अपना निर्णय मंत्री को बताया। वह केवल मंत्री ही नहीं था, राजा का मित्र भी था। यदि केवल मंत्री होता तो राजा के निर्णय को स्वीकार कर लेता लेकिन उसकी स्थिति मंत्री से भी महत्वपूर्ण थी।

मंत्री ने कहा--राजन् ! आपने जो निर्णय लिया है, वह प्रजा के हित में नहीं है। आप क्षमा करें--ऐसा लगता है, आपने यह निर्णय महारानी के कहने से लिया है।

राजा को यह बात कैसे मान्य हो सकती थी।

राजा बोला--तुम गलत कहते हो। मैं ऐसा नहीं हूँ, जो पत्नी के कहने से निर्णय लूँ।

‘आप क्या, सारी दुनिया ही स्त्रियों के कहने पर चलती है।’

‘दुनिया क्या करती है, मुझे नहीं पता। पर मैं अपने स्वतंत्र दिमाग से निर्णय लेता हूँ। मुझे जो उचित लगता है, वही काम करता हूँ।’

‘महाराज ! आप विवाद न करें। यह सारी दुनियां का नियम है, आप इसके अपवाद नहीं हो सकते !’

यह बात विवाद का विषय बन गई।

राजा ने कहा—तुम इसे प्रमाणित करो। यदि प्रमाणित हो जाएगी तो मैं मान लूंगा।

‘मैं जल्दी प्रमाणित कर दूंगा इस तथ्य को !’

### प्रमाण मिल गया

राजा ने सोचा—मंत्री इसे सच प्रमाणित नहीं कर पाएगा। मंत्री का विश्वास था—मैं इसे अतिशीघ्र प्रमाणित कर दूंगा। एक सप्ताह बाद मंत्री ने एक राजाज्ञा प्रसारित की—आज नगर के बाहर सब नागरिकों को आना है। वहां पूर्व और पश्चिम में दो खेमें बनाए गए हैं। जो लोग स्त्रियों के कहे अनुसार चलते हैं, उन्हें पूर्व के खेमे में जाना है। जो लोग अपनी इच्छा से चलते हैं, स्त्रियों का कहना नहीं मानते, उन्हें पश्चिम के खेमे में जाना है।

राजाज्ञा की घोषणा हो गई। उस समय राजाज्ञा का उल्लंघन करना असंभव सा कार्य था। शाम के समय सब लोग आने लगे। पूरा नगर पुरुषों से खाली हो गया। राजा और मंत्री भी वहां पहुंच गए। राजा ने देखा—पूर्व का खेमा खचाखच भरता जा रहा है और पश्चिम का खेमा एकदम खाली पड़ा है। राजा का चेहरा उदास हो गया। उसने सोचा—क्या मेरा कथन असत्य होगा ? सब पूर्व के खेमें की ओर ही जा रहे हैं। मंत्री की बात सही होगी ?

राजा गंभीर हो गया। मंत्री मन ही मन मुस्करा रहा था। कुछ क्षण बीते एक व्यक्ति पश्चिम के खेमें में गया। राजा बोला—मंत्री ! तुम सही हो पर एकदम गलत में भी नहीं हूँ। देखो ! एक व्यक्ति पश्चिम के खेमें में भी गया है। वह बहुत समझदार और स्वतंत्र चिन्तन वाला है।

‘महाराज ! आप जरा ठहरें। अभी पता चल जाएगा—वह स्वतंत्र चिन्तन का परिणाम है या नहीं !’

‘क्या इसमें संशय है ?’

‘हां महाराज !’ यह कहकर मंत्री ने कर्मचारियों को आदेश दिया—‘जो व्यक्ति पश्चिम के खेमे में गया है, उसे बुलाओ !’

कर्मचारी उसे बुला लाए। वह राजा के सामने हाथ जोड़े खड़ा था। मंत्री ने पूछा—भई ! सब लोग पूर्व के खेमे में गए, तुम उधर क्यों नहीं गए। उस व्यक्ति ने

जवाब दिया—महाराज ! जब मैं घर से चला तब पत्नी ने कहा था—भीड़भाड़ में मत फंस जाना। पूर्व के खेमे की ओर बहुत भीड़ थी इसलिए मैं वहां नहीं गया।

राजा यह सुनकर अवाक् रह गया।

### संचालित हैं वृत्तियों से

यह कथा बहुत मार्मिक है। कौन व्यक्ति ऐसा है, जो अपनी वृत्तियों और वासनाओं के द्वारा संचालित नहीं है। यह संभव है—बहुत सारे व्यक्ति ऐसे मिल सकते हैं, जो स्त्रियों के द्वारा संचालित न हो किन्तु अपनी वृत्तियों और वासनाओं से संचालित न हो, ऐसे व्यक्ति का मिलना कठिन है। वही व्यक्ति ईश्वर हो सकता है, जो इनके द्वारा संचालित नहीं है।

राजीमती ने कहा—आप इस प्रकार का आचरण करेंगे तो श्रामण्य के ईश्वर नहीं रहेंगे। जब श्रामण्य के ईश्वर नहीं हैं तब श्रामण्य का बोझ ढोने की जरूरत क्या है ?

राजीमती के इस तर्क से रथनेमि की चेतना प्रकटित हो उठी। वे संभल गए। संभले ही नहीं, कैवल्य को उपलब्ध हो गए।

राजीमती के तर्क बहुश्रुतता के परिचायक थे। बहुश्रुतता के साथ राजीमती का जो संकल्प था, वह भी बहुत विलक्षण था।

### राजीमती की दृढ़ता

रथनेमि ने राजीमती से कहा—चलो ! हम फिर राज्य में चलें, गृहस्थी में रहें, मनोरम भोगों को भोगें। कालान्तर में फिर मुनि बन जाएंगे। तुम देखो—कैसा वैभव है ! कैसा ऐश्वर्य है ! पहले उसका उपभोग कर लें।

इस स्थिति में राजीमती ने जिस धृति और दृढ़ता का परिचय दिया, वह सचमुच प्रेरक है। राजीमती ने कहा—मुनिवर ! आप यह क्या कह रहे हैं, क्या आप रूपवान् होने के कारण ऐसा कह रहे हैं ? यदि आप रूप से वैश्रमण्य हैं तो भी आपकी मुझे कोई जरूरत नहीं है। यदि आप वैभव या ऐश्वर्य से नलकुबेर हैं तो भी मुझे आपकी कोई आवश्यकता नहीं है। मैं आपकी स्वप्न में भी इच्छा नहीं कर सकती। यदि आप साक्षात् इन्द्र हैं तब भी आप मेरे लिए कोई काम के नहीं हैं।

*जइ सि रुवेण वेसमणो, ललिएण नलकूबरो।*

*तहा वि ते न इच्छामि, जइ सि सक्खं पुरन्दरो॥*

### क्या नारी दुर्बल है ?

राजीमती के संकल्प और मनोबल का निदर्शन हैं ये वाक्य। कौन कहता है—नारी

कमजोर होती है, दुर्बल और अबला होती है ? वह दुर्बल नहीं है। बल सबमें है, पराक्रम और पुरुषार्थ सबमें है। प्रश्न है जागरण का। स्त्री और पुरुष में कुछ भी अंतर नहीं है। अंतर केवल दिशा का है। हम केवल शरीरशास्त्रीय दृष्टि से ही विचार न करें। योग के प्राचीन आचार्यों ने जो चिन्तन दिया है, अर्द्ध, नारीश्वर की जो कल्पना की है, वह बहुत रहस्यपूर्ण है। दक्षिणांग और वामांग की स्वीकृति बहुत महत्वपूर्ण है। स्त्री और पुरुष में अंतर इतना ही है कि स्त्री की शक्ति का स्रोत है बायां अंग और पुरुष की शक्ति का स्रोत है दक्षिण अंग। अगर स्त्री अपनी वामांग शक्ति को पहचान सके तो वह पुरुष से कम नहीं है। यदि पुरुष अपने दक्षिण अंग की शक्ति को पहचान सके तो वह स्त्री से कम नहीं है। पुरुष भी स्त्री बन जाता है और स्त्री भी पुरुष बन जाती है। सवाल है अपनी-अपनी शक्ति को पहचानने का। प्रकृति की रचना ही ऐसी है कि दक्षिण और वाम-दोनों अंग समान नहीं मिलते। व्यक्ति को अपनी ही दोनों आंखों से समान दिखाई नहीं देता। दोनों एक साथ खुलती हैं तो पता नहीं चलता। यदि एक आंख को बंद कर देखें तो ऐसा लगता है-सामने अंधेरा ही अंधेरा है। कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं, जिन्हें दोनों कानों से बराबर सुनाई नहीं देता। एक कान ठीक काम करता है, दूसरा नहीं। दोनों अंग समान काम करें, यह सबके लिए कठिन है किन्तु एक का काम दूसरा कर देता है।

### शरीरशास्त्र का नियम

शरीरशास्त्र का नियम है-एक अंग जख्मी हो जाए तो दूसरा अंग तत्काल उसकी सहायता में निकल पड़ता है। शरीर की ऐसी व्यवस्था है-एक अंग खराब होता है तो दूसरा उसका पूरा प्रतिनिधित्व करता है। दो गुर्दे काम करते हैं। यदि एक बेकार हो जाता है तो दूसरा उसका पूरा सहयोग करता है। एक आंख दूसरी आंख का, एक कान दूसरे कान का पूरा कार्य संभाल लेता है। दोनों समान नहीं होते। प्रकृति की ऐसी विचित्र रचना है-बायां अंग स्त्री को शक्तिशाली मिला और दायां अंग पुरुष को शक्तिशाली मिला। यदि वह जाग जाए तो व्यक्ति कुछ भी कर सकता है। हम इतिहास को पढ़ें-समय-समय पर स्त्रियों ने अद्भुत कार्य किए हैं। बौद्धिकता के क्षेत्र में, धर्म के क्षेत्र में स्त्रियों ने उल्लेखनीय कार्य किए हैं। जिनका चैतन्य जाग गया, वह विलक्षण बन गई। राजीमती का चैतन्य जाग उठा। जब अरिष्टनेमि का रथ मुड़ा, राजीमती के मन पर गहरी चोट लगी, उसका चैतन्य जागृत हो गया।

### भाग्य खुल गया

दुःख आना बुरी बात नहीं है। कभी-कभी वह दुःख अभ्युदय का कारण बन

जाता है। यदि राजीमती के मन को आघात और चोट नहीं लगती, उसका मन दुःख से नहीं भरता तो राजीमती राजीमती नहीं बन पाती। इतनी प्रबुद्ध और बहुश्रुत साध्वी नहीं बन पाती। चोट लगी और चैतन्य जागृत हो गया। जब अरिष्टनेमि वापस चले गए तब उसकी व्यथा का कोई अंत नहीं था। ऐसा राजकुमार, जो दुनियां में दूढ़ने पर भी न मिले, घर के द्वार तक आकर लौट जाए। चोट में कोई कमी नहीं थी। कभी-कभी वह चोट ऐसी लगती है, अतीन्द्रिय चेतना जाग उठती है। समाचार पत्रों में पढ़ा—एक व्यक्ति गिरा, चोट लगी और उस स्थान पर चोट लगी, अतीन्द्रिय चेतना खुल गई। उस व्यक्ति की भविष्यवाणियों से संसार चकित रह गया। तिब्बत में तीसरा नेत्र खोलने के लिए आपरेशन किया जाता रहा है। अमुक स्थान पर चोट लगती है, भाग्य खुल जाता है।

सचमुच राजीमती का भाग्य खुल गया और ऐसा भाग्य खुला, वह विलक्षण साध्वी बन गई। उसका चरित्र आज भी उदात्त, महान् और विलक्षण बना हुआ है।  
**राजीमती के तर्क**

राजीमती ने उस समय जो तर्क प्रस्तुत किए, वे आज भी मानव-मन के अंधकार को चीरने वाले बने हुए हैं। राजीमती ने कहा—आप कौन है ? आपका वंश क्या है? उसकी ओर भी ध्यान दें। हमारा वह कुल है, जिसमें व्यक्ति संकल्प लेकर चल पड़ता है तो पीछे मुड़कर नहीं देखता। आपके पैर पीछे हट रहे हैं। ऐसे कुल में पैदा होकर आप क्या कर रहे हैं ?

मैं भोजराज की पुत्री हूँ और आप। अंधकवृष्णि के पुत्र। ये दोनों महान वंश हैं, इस दुनिया में, जिनकी शक्ति और प्रभुत्व का दुनिया लोहा मानती है। हमने कभी पीछे हटना नहीं सीखा। इस कुल में पैदा होकर आप पीछे हट रहे हैं ? यह आपके लिए अच्छा नहीं है। हम अपने कुल में गंधन सर्प की तरह न बने। संयम में स्थिर रहना ही हमारे लिए श्रेयस्कर है। यदि आप स्त्रियों को देख इस प्रकार का भाव लाएंगे तो अस्थितात्मा बन जाएंगे।

*अहं च भोयरायस्स त्वं च सि अन्धगवण्हणो।  
मा कुले गंधणा होमो, संजमं निहुओ चर॥  
जइ तं काहिसि भावं, जा जा दच्छसि नारिओ।  
वाया विद्धोव्व हडो। अट्ठिअप्पा भविस्ससि॥*

**गिरे नहीं, संभल गए**

राजीमती का प्रतिबोध बुद्धिमानों से परिपूर्ण था। बुद्धिमान् व्यक्ति समझाता है



तो बात गले उतर जाती है। जो बात हजार बार कहने से समझ में नहीं आती, वह एक बुद्धिमान् द्वारा समझाने पर समझ में आ जाती है।

एक सेठ को शराब का व्यसन था। अनेक लोगों ने इसे छोड़ने की प्रेरणा दी पर सेठ ने आदत नहीं छोड़ी। एक दिन एक व्यक्ति ने नौकरी देने की प्रार्थना की। सेठ ने कहा—नौकर की मुझे जरूरत है पर निकम्मे नौकर की जरूरत नहीं है। तुम अगर पूरा काम कर सको तो तुम्हें नौकरी पर रख सकता हूँ। नौकर ने पूछा—आपका काम क्या करना है ? सेठ ने कहा—मैं जो काम कहूँ, उसे पूरा करना है। कुछ ऐसे नौकर आते हैं, वे काम पूरा नहीं करते। मुझे वह नौकर अच्छा लगता है, जिसे एक काम के लिए कहता हूँ तो वह उससे जुड़े सारे काम एक साथ कर देता है। नौकर बुद्धिमान् था। उसने विनम्रता से कहा—आप मुझे सेवा का अवसर दें। मैं ऐसा प्रयत्न करूँगा। सेठ ने उसे नौकरी पर रख लिया। शाम का समय हुआ। सेठ ने कहा—जाओ, शराब की बोतल ले आओ। वह कुछ देर बाजार में घूमकर वापस आ गया। उसने शराब की बोतल सेठ के सामने रख दी। एक दवाइयों का बक्सा भी रख दिया। साथ-साथ डाक्टर को भी ले आया। कफन लाकर भी रख दिया। एक गाड़ी में चंदन की लकड़ियाँ भी आ गईं। घर के बाहर अनेक लोग एकत्रित हो गए। सेठ यह सब देखकर अवाकू रह गया। उसने कहा—यह क्या धंधा है ? तुमने यह सब क्या किया?

नौकर बोला—सेठजी ! आपने ही ने तो कहा था—अधूरा काम नहीं करना है, पूरा काम करना है। मैंने वही किया है। आपने शराब मंगाई। शराब पीने वाला निश्चित बीमार होता है इसलिए दवा का बक्सा भी ले आया। बीमार को दवा डाक्टर की सलाह से देनी चाहिए इसलिए डाक्टर को भी बुला लाया। शराब पीने वाला जल्दी मरता है इसलिए कफन और लकड़ी भी ले आया। मैंने लोगों को भी कह दिया है सेठ की शव यात्रा में आने के लिए। आस-पास के सारे लोग इधर ही आ रहे हैं।

यह बात सेठ के मन पर तीर जैसे चुभ गई। उसने शराब की बोतल फेंक दी। नौकर से बोला—आज से शराब छोड़ता हूँ। तुम सबको यहां से विदा करो।

जो समझदार और बुद्धिमान् होता है, वह ऐसी बात कहता है कि तत्काल काम हो जाता है। राजीमती ऐसी ही महिला थी। उसके तर्क पूर्ण संबोधन ने रथनेमि की मूर्च्छा को तोड़ दिया। वे गिरे नहीं, संभल गए। उनका रूपान्तरण हो गया। रथनेमि को राजीमती ने उबारा। वे भोगों से विरत हो, उग्र तप तप कर पुरुषोत्तम बन गए और उनका घटनाक्रम प्रत्येक व्यक्ति के लिए प्रेरक इतिहास।





